पंजी संख्या 10846/61
ISSN 0523-1418

BHASHA-BIMONTHLY

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in

भाषा

जनवरी–फरवरी 2022

अंक 300 वर्ष 61

भाषा

जनवरी–फरवरी 2022

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

जनवरी–फरवरी 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर नागेश्वर राव

परामर्श मंडल
प्रो. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन
प्रो. ऋषभ देव शर्मा
प्रो. मंजुला राणा
प्रो. दिलीप कुमार मेधी
श्रीमती पद्मा सचदेव
श्री हितेश शंकर

संपादक
डॉ. किरण झा

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **61** **अंक : 1 (300)**
जनवरी–फरवरी 2022

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	(डाक खर्च सहित)
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा
जनवरी–फरवरी 2022

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

आपने लिखा

संपादकीय

श्रद्धांजलि

आलेख

1.	ब्रिटेन और नारी जागरण	डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय	9
2.	'असाध्य वीणा' में 'महाशून्य की अनुगूँज'	डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति	20
3.	गढ़वाल की अनूठी परंपरा – बेड्वार्त : स्वरूप और महत्व	डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल	26
4.	गणतंत्र की जन्मभूमि बज्जि संघ की जनपदीय भाषा बज्जिका–उद्भव, विकास तथा हिंदी से पारस्परिक संबंध	डॉ. विनोद कुमार सिन्हा	35
5.	आहोम वीरांगना सती जयमती	डॉ. जिनाक्षी चुतीया	48
6.	औपनिवेशिक भारत में कला–इतिहास लेखन : चुनौती और मुद्दे	रिपुंजय कुमार ठाकुर	56
7.	कश्मीर विषयक हिंदी कविता : उद्भव और विकास	उमर बशीर	63
8.	मातृभाषा के द्वारा अध्ययन और अध्यापन का समालोचनात्मक विमर्श	डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार	73
9.	आदिवासी विमर्श में अस्मिता और अपनी भाषा अस्मिता के बचाव	सुरेंद्र कुमार	79
10.	अबकी अगर लौटा तो मनुष्यतर लौटूँगा	कुमार सौरभ एवं डॉ. अनुशब्द	86
11.	उत्तराखंड के पुरातात्विक धरातल पर राहुल सांकृत्यायन	डॉ. अनूप प्रसाद	91
12.	सिनेमा की भाषा और उसका सौंदर्य	डॉ. विजय कुमार मिश्र	96

साक्षात्कार

13.	देश के प्रमुख गीतकार अश्विनी कुमार आलोक से शोधार्थी संजय सिंह यादव का साक्षात्कार	संजय सिंह यादव	102

यात्रा वृत्तांत

14.	ऑस्ट्रेलिया दिवस, डैडिनांग और चेस्टन कैपिटल	प्रो. फूलचंद मानव	106

कहानी

15. पागल पत्नी — देवेंद्र कुमार मिश्रा — 109
16. ऑटो खाली है — मनीष कुमार सिंह — 113

कविता

17. पिता — रमेशचंद्र पंत — 117
18. चाह — हेमंत गुप्ता — 119
19. तो भी क्यूँ — राम जैसवाल — 120

अनूदित खंड

कहानी

20. चाँदनी रात की कहानी, खत्म नहीं हुई (मराठी कहानी) — तरुणकांति मिश्र, अनुवाद : एनी राय — 121
21. ग्वालिन (गुजराती कहानी) — कंचनलाल मेहता, 'मलयानील', अनुवाद : प्रो. (डॉ.) नलिनी पुरोहित — 127

कविता

22. अऋतु ऋतु (ओड़िया/हिंदी) — डॉ. फनी महांति, अनुवाद : डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु — 132
23. विवशता (मराठी/हिंदी) — प्रो. सौ. कांचन थोरात, अनुवाद : प्रो. शौकात आतार — 134

परख

24. संघर्ष के हथौड़ों में टूटती चट्टानें (संघर्ष के लम्हें/काव्य संग्रह/लेखक–शुभदर्शन) — डॉ. वांमती रामचंद्रन — 136
25. जीवन के महत्वपूर्ण सरोकारों से टकराती ग़ज़लें (लोग जिंदा हैं/ग़ज़ल संग्रह/लेखक–विनय मिश्र) — कुसुमलता सिंह — 140
26. आधुनिक नारी का जीवन संघर्ष और जिजीविषा (लरकाई की वह प्रेम पिपासा/उपन्यास/लेखिका–उषा देव) — डॉ. संतोष खन्ना — 145

स्मृतियाँ

27. लता जी का जाना जैसे संगीत के सर से साए का गुजर जाना — विनोद अनुपम — 150
28. बप्पी लहरी : जिनके संगीत में थी सोने सी चमक–दमक — नीति सुधा — 153

संपर्क सूत्र — **156**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

चरैवेति–चरैवेति जीवन का अमोघ मंत्र है। जीवन चक्र अपनी गति से निर्बाध रूप से अग्रसर रहता है। बढ़ते जाना ही वह शाश्वत प्रक्रिया है जिससे जीवन निरंतर गतिशील रहता है। किसी ने भी यह सोचा नहीं होगा कि सदी की त्रासदी, कोरोना (महामारी) अपना पैर इस कदर पसारेगा जो अंतहीन सा लगने लगेगा। नए वर्ष में भी कोरोना का कहर छाया रहा। जीवन के सरोकार, मूल्य, आस्था चरमराने से लगे। परंतु उस विभीषिका में भी जीवन रस और जीवन राग स्वयं अपना मार्ग तलाशता रहा। साहित्य समाज का आईना होता है। समाज में घटने वाले कारकों से साहित्य अछूता नहीं रहता। संवाद की प्रक्रिया विभिन्न विधाओं के माध्यम से चलती रहती है। यही वह माध्यम है जो जीवन की निरंतरता को बनाए रखता है। संघर्षों के आरोह–अवरोह में कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब मन–मस्तिष्क क्लांति से मुक्त होना चाहता है और साहित्य की विभिन्न विधाओं में सिमटा संस्कार, परंपरा और संस्कृति समाज के नवीन पहलुओं से हमें अवगत कराता है और हम समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों और प्रदेशों की रीति–नीति से साक्षात्कार करते हैं। साहित्य का ज्ञान शाश्वत होता है। यह ऐसा संसार है जहाँ मनुष्य ठहराव और चैन का अनुभव करता है। विज्ञान आज नित नूतन ऊँचाई को छू रहा है। नित्यप्रति देश और विश्वभर में नवीन कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं। परंतु विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अन्वेषणकर्ता और आविष्कारक के मन मस्तिष्क को भी जब मानसिक स्फूर्ति की आवश्यकता महसूस होती है तो वह साहित्य पठन और लेखन की तरफ प्रवृत्त होता है। यह ज्ञान की ऐसी शाखा है जो चिरंतन है। हमारे पुरातन सभी ग्रंथ आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पूर्व में थे। साहित्य के इन्हीं शाश्वत, चिरंतन यात्रा की दिशा में भाषा पत्रिका अपने सभी अंकों को समय पर प्रकाशित करने हेतु कृत संकल्प रहती है। भाषा का नवीन अंक विभिन्न विधाओं से सुसज्जित देश काल की अभिव्यक्ति और विचारों को समेटते हुए सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। ताकि विचारों की सशक्त आवाजाही बनी रहे। आपके सुझावों से आगामी अंकों को और भी उपयोगी और बेहतर बनाया जा सकेगा।

नागेश्वर राव

(नागेश्वर राव)

आपने लिखा

भाषा पत्रिका का 'नई शिक्षा नीति 2020' विशेषांक के लिए आपको बहुत बधाई। नई शिक्षा नीति भारत सरकार का एक अभिनव एवं उपयोगी कदम है। बहुत दिनों से यह अनुभव किया जा रहा था कि शिक्षा में गुणात्मक सुधार किया जाए उसका लोक व्यापीकरण हो। शिक्षा का एक अंतरराष्ट्रीय स्वरूप बने। इस दिशा में नई शिक्षा नीति 2020 का यह विशेषांक बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। सभी लेख पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। अच्छा होता कि इसमें नई शिक्षा नीति का पूरा टेक्स्ट (पाठ) भी दे दिया जाता। यदि भविष्य में इसका कोई अन्य पूरक भाग निकाला जाए तो उसमें इसे अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस उपयोगी विशेषांक के लिए पूरे 'भाषा' परिवार को बहुत–बहुत बधाई।

डॉ. सुरुचि मिश्रा

संपादकीय

साहित्य भाषा के विविध रचना संसार का विशाल भंडार होता है। इसमें समाज रूपी वृहत विद्यालय और संसार रूपी विश्वविद्यालय का ज्ञान संचित होता है। किसी भी भाषा के माध्यम से जब किसी समाज और संस्कृति की भावनाएँ उसमें समाहित होती हैं तो परस्पर विचारों का समवेत आदान–प्रदान होता है। संस्कृतियाँ मुखर होती हैं। साहित्य का योगदान समाज निर्माण में कितना महत्वपूर्ण है यह स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में विभिन्न कवियों, रचनाकारों की पत्रकारिता के माध्यम से सक्रिय भूमिका के रूप में देखा जा सकता है। पत्र–पत्रिका में अभिव्यक्त विचार मात्र शब्दों का ढेर नहीं होता बल्कि उसमें वह शक्ति छिपी होती है जो विचारों के माध्यम से जन–जन तक पहुँचती है तथा समाज और व्यक्तित्व निर्माण में मील का पत्थर साबित होती है। लिखित साहित्य जब पत्र–पत्रिका और पुस्तकाकार रूप में पाठक के समक्ष उपलब्ध होता है तब उसकी उपयोगिता सिद्ध होती है। यह उपयोगिता तब और महत्वपूर्ण हो जाती है जब इसका लक्ष्य समाज में उत्कृष्ट और सकारात्मक साहित्य प्रस्तुत करना हो। सही शब्दों और विचारों के माध्यम से सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की अवधारणा को मजबूत करना होता है। शब्द ब्रह्म है इसमें अपार शक्ति निहित होती है। इसका सही और सार्थक प्रयोग समाज में जहाँ क्रांति ला सकता है वहीं भाषा और शब्दों के प्रति सचेत नहीं होने पर समाज की अधोगति भी कर सकता है। आज सूचना क्रांति के दौर में विचारधाराएँ बहुत ही गतिशील हो गई हैं। क्षणभर में कोई भी सूचना या जानकारी विश्व के कोने–कोने में पहुँच जाती है। ऐसे में शब्दों और विचारों के प्रयोग के प्रति सचेतनता अनिवार्य हो जाती है। विचारों और भावों के सजग, सचेत प्रयोग को पाठक तक पहुँचाने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय की द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' निरंतर प्रयासरत रहती है। सहित्य और समाज के उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए भाषा पत्रिका की सामग्री का चयन किया जाता है। जिसमें साहित्य की शास्त्रीय मान्यताओं को समेटते हुए आलेख भी होते हैं वहीं समाज में व्याप्त समस्याओं और कुरीतियों पर कुठाराघात करती कविता और कहानियाँ भी सम्मिलित होती हैं। वहीं रचना संसार को वृहत्तर पाठक वर्ग तब पहुँचाने के निमित्त अनूदित गद्य और पद्य सामग्री को भी पत्रिका में स्थान दिया जाता है। मनुष्य जैसे कल्पनाशील होता है वैसे ही भ्रमणशील भी। कल्पनालोक में विचरण करने वाला मनुष्य पत्रिका में उपलब्ध यात्रा वृत्तांत को पढ़कर स्फूर्ति का अनुभव करता है। वहीं विभिन्न रचनाकारों के साक्षात्कार के माध्यम से साहित्यकार के जीवनानुभवों को पाठक जान पाता है जिससे वह साहित्य–सृजन की उन परिस्थितियाँ को जान पाता है जो तत्कालीन समाज और संस्कृति का दस्तावेज होती हैं। साहित्य और समाज के प्रति सचेत रहते हुए भाषा पत्रिका निरंतर प्रयत्नशील है। विभिन्न साहित्यिक सामग्री को प्रस्तुत करते हुए भाषा का यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी ताकि साहित्य का संवाद जारी रहे।

किरण

(डॉ. किरण झा)

श्रद्धांजलि

लता मंगेशकर

28 सितंबर, 1929 – 06 फरवरी, 2022

बप्पी लहरी

27 नवंबर, 1952 – 15 फरवरी, 2022

भाषा ISSN 0523-1418

ब्रिटेन और नारी जागरण

डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय

रिपोर्ताज में ब्रिटेन में नारी जागरण को रेखांकित किया गया है। ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी में परिवार आमतौर पर बड़े होते थे और बहुत से गरीब घरों में आदमी, औरतें और बच्चे परिवार की आय में योगदान देते थे। फिर भी आदमियों की अपेक्षा औरतों के अधिकार कम थे। सन् 1857 ई. तक एक विवाहित महिला को अपने पति से तलाक लेने का कोई अधिकार प्राप्त न था। सन् 1882 तक जब एक लड़की की शादी हो जाती थी और जब वह पति के घर जाती थी तो स्वतः ही उसकी आय, धन–दौलत और अन्य चीजें पति की हो जाती थीं और पति का ही उन पर अधिकार होता था। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में महिलाओं को वोट देने का अधिकार प्राप्त हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध में महिलाओं की भागीदारी थी और पूर्व की अपेक्षा महिला जागरण हो चुका था। इसलिए जब सन् 1918 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो गया तो 30 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं को वोट देने का अधिकार मिला। साथ ही उन्हें पार्लियामेंट के चुनाव में खड़े होने, उम्मीदवार बनने का सुअवसर भी मिला तथा सन् 1921 ई. में 21 वर्ष की अवस्था वाली महिलाओं को वोट देने का अधिकार मिल गया।

महिलाओं के सामने विवाह की समस्या थी। विवाह होते ही उन्हें नौकरी छोड़ने को मजबूर किया जाता था। बहुत सी नौकरियों में महिलाओं के लिए प्रतिबंध था। महिलाओं को विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना बहुत मुश्किल था। सन् 1960–1970 के दौरान महिलाओं के पुरुषों के समान अधिकार के लिए दबाव बना। पार्लियामेंट ने महिलाओं का समानता के अधिकार हेतु कानून पास किया तथा समान कार्य के लिए समान वेतन देने हेतु इम्प्लायर्स को सचेत किया गया कि स्त्री–पुरुष के आधार पर वेतन में अंतर न किया जाए। समता और समानता का व्यवहार करने पर विशेष बल दिया गया।

इक्कीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में कुल आबादी की 51 प्रतिशत महिलाएँ हैं तथा 45 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ हैं जो सेवारत हैं, नौकरी में हैं। विद्यालय छोड़ने वाली लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की संख्या कम है तथा विश्वविद्यालय स्तर पर भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ ज्यादा हैं। पूर्व की अपेक्षा महिलाओं की स्थिति नौकरी में अधिक सुदृढ़ है। आज सर्वत्र इम्प्लॉयड हैं। यद्पि महिलाएँ स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा विभाग, सचिवालय एवं फुटकर संस्थानों में अधिकांशतः सेवारत हैं लेकिन धीरे–धीरे अनेक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है। पूर्व की अपेक्षा काम करने की उनकी रुचि और क्षमता–दक्षता में भी परिवर्तन देखा जाता है। ब्रिटेन में आज बहुत कम लोग ही महिला को गृहकार्य में संलग्न देखना चाहते हैं। अधिकांश लोग उसका नौकरी पर जाना ही पसंद करते हैं। आज तीन चौथाई अर्थात् 75 प्रतिशत महिलाएँ विद्यालयी उम्र की कार्यशालाओं में सेवारत हैं।

पूर्व में महिलाओं के समक्ष गृहकार्य, बच्चों की देख–रेख आदि कार्य नौकरी के सामने आड़े आते थे क्योंकि महिलाएँ ये सब कार्य स्वयं अपने हाथ में रखती थीं। पुरुष घर के बाहर का कार्य करता था। समय के साथ इस दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो गया। आज पुरुष गृहकार्य तथा बच्चों की देख–रेख में पूरा हिस्सा बँटाते हैं तथा साझेदारी निभाते हैं। परिवार की अभिवृद्धि और समृद्धि के लिए स्त्री–पुरुष दोनों को घर के अंदर और घर के बाहर समान रूप से कार्य करने की आवश्यकता दोनों आज के परिवेश में समझ रहे हैं। इसलिए स्त्री–पुरुष का भेद आज देखने को नहीं मिलता है। आकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि औसत कमाई के महिलाओं के घंटे पुरुषों की अपेक्षा 20 प्रतिशत कम हैं। विश्वविद्यालय छोड़ने के पश्चात् आज भी महिला पुरुष की अपेक्षा कम आमदनी प्राप्त करती है। आम जनता का दृष्टिकोण बदला है। महिलाओं की सुरक्षा, सर्विस की गारंटी तथा सम्मान के प्रति जागरूकता बढ़ी है। पुरुष के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है। आज महिलाएँ सभी विभागों के उच्च पदों पर भी आसीन दिखाई दे रही हैं। सही अर्थों में यह नारी जागरण का प्रतीक है। महिलाएँ आज अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हैं तथा भविष्य के प्रति भी आश्वस्त हैं। पुरुष पर भी उनका विश्वास धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय, मान–सम्मान आदि में महिलाएँ सहभागिता कर रही हैं और यह समन्वयवादी, सामंजस्यवादी दृष्टि ही महिलाओं के लिए स्वर्णिम भविष्य की असल पूँजी होगी। घरों में भी सभी पुरुष स्त्रियों के साथ गृहकार्य करने में संकोच नहीं करते अपितु स्वेच्छा से सहभागिता करते हैं और अपने को गौरवान्वित समझते हैं। गृहकार्य का विभाजन करके भी कार्य संपन्न करने की प्रतियोगितावादी प्रवृत्ति और संस्कृति देखने को मिली है।

विवाह की स्थिति

ब्रिटेन में शादी की उम्र लड़का और लड़की की कम से कम 16 वर्ष होना अनिवार्य है जिसके लिए प्रमाण–पत्र देना आवश्यक होता है। अविवाहित होना दूसरी शर्त है। जो कोई भी शादी करना चाहता है उसके माता–पिता द्वारा लिखित स्वीकृति पत्र देना अनिवार्य है। सगे–संबंधी आपस में शादी नहीं कर सकते लेकिन चचेरी बहन या चेचरे भाई को शादी की स्वीकृति है। परिवार की स्वीकृति बिना शादी संपन्न नहीं हो सकती और न वह संवैधानिक रूप से मान्य ही हो सकती है। शादी के जोड़े आपसी सहमति पर शादी की घोषणा भूतकाल में कर देते थे लेकिन आज यह सम्भव नहीं है। लीविंग टूगेदर के लिए किसी से कोई अनुमति की आवश्यकता नहीं होती। शादी संस्कार रजिस्ट्री कार्यालय या धार्मिक संस्थान जो राज्य सरकार द्वारा मान्य है, पर संपन्न कराया जा सकता है। उसके लिए सूची–पत्र में नामांकन होना अनिवार्य है। जिला निबंधन अधिकारी कार्यालय से प्राप्त कर उसकी औपचारिकताएँ पूरी करनी पड़ती हैं तथा निवास पता एवं आयु प्रमाण–पत्र, माता–पिता द्वारा प्रदत्त प्रमाण–पत्र स्वीकृति आदि के साथ नामांकन होता है। शादी संपन्न होने से पूर्व तीन माह के अंदर सभी प्रमाण–पत्रों को प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है अन्यथा की स्थिति में विषम परिस्थिति के लिए लड़का–लड़की को तैयार होना होगा। शादी के जोड़े को कम से कम तीन रविवार को चर्च जाना होता है तथा रजिस्ट्री दस्तावेज को पढ़कर सुनाना पड़ता है जो पादरी या धार्मिक व्यक्ति पढ़ता है। यूके में बहुत सी महिलाएँ अपने पतियों के उपनाम का उच्चारण करती हैं तथा कुछ महिलाएँ अपने उपनाम का उच्चारण करती हैं यह उनकी पसंद पर निर्भर करता है इसमें वैधानिकता नहीं होती।

लिविंग टूगेदर

संप्रति ब्रिटेन में यह एक फैशन या प्रचलन बन गया है कि बिना शादी के लड़के–लड़कियाँ साथ–साथ पति–पत्नी की तरह रह रहे हैं। शादी से पूर्व ही वे शादी–शुदा जिंदगी जीते हैं। बेरोक–टोक के वे साथ–साथ रहते हैं। उनके सामने अनिश्चित भविष्य रहता है क्योंकि यदि किसी कारण से उनका संबंध विच्छेद होता है तो उनके समक्ष अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं जिसके नाम

मकान और जायदाद होती है और अगर वह अलग हो जाता है तो स्त्री को कुछ भी नहीं मिलता। अगर वह मर जाता है तो भी उसकी संपत्ति उस स्त्री को हस्तांतरित नहीं होती क्योंकि लिविंग टूगेदर संवैधानिक कृत्य नहीं है। अगर शादी किया हुआ व्यक्ति मरता है तो उसकी संपत्ति स्वतः उसकी पत्नी को हस्तांतरित हो जाती है। अगर अविवाहित जोड़े के पास बच्चा है तो दोनों माता–पिता के रूप में उसका पालन पोषण अठारह वर्ष की अवस्था तक करने को संवैधानिक रूप से बाध्य हैं। लेकिन बच्चा होने के पश्चात् यदि कुँआरा पिता अर्थात् अविवाहित पिता संबंध विच्छेद कर कहीं चला जाता है ऐसी स्थिति में कुँवारी माँ को अकेले ही बच्चे का लालन–पालन, भरण–पोषण एवं शिक्षा का प्रबंध करना होता है। सौभाग्यवश मेरे ग्रांडसन का जन्म दिवस 18 जून को था जो नर्सरी में पढ़ता है। उसकी कक्षा के छात्रों को जन्म दिवस के उपलक्ष्य में आमंत्रित किया गया था। समय दिन के 2 बजे से 6 बजे तक का था। परंपरानुमोदन में बच्चों के लिए लंच एवं खिलौनों की व्यवस्था थी। उसी पार्टी में अधिकांश महिलाएँ ही अपने पाल्यों के साथ थीं। परिचय के दौरान स्वभावतः मैंने कुछ बच्चों के पिता और उनके व्यवसाय जानने की कोशिश की। सुनकर विस्मय चकित रह गया कि चार महिलाएँ इक्कीस महिलाओं में ऐसी थीं जो लिविंग टूगेदर की आदी थीं। उनमें सबसे कम उम्र की खूबसूरत महिला का बच्चा पितृविहीन था और कुँआरी माँ के हिस्से में था वही उसका लालन– पालन कर रही थी और शिक्षा का प्रबंध भी कर रही थी। पुनः उनसे स्पोर्ट्स डे जो 21 जून, 2016 को मनाया गया भेंट हुई। उनके चेहरे पर बिल्कुल अफसोस या पश्चाताप की रेखा तक नहीं थी। वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि उसे दूसरे अभ्यर्थी की तलाश है। पिकअप एंड चूज की प्रक्रिया चल रही है। आज के सभ्य समाज में यह फैशन बन गया है, प्रचलन में है। कोई इसे बुरा नहीं मानता।

तलाक की भी प्रथा आजकल के भौतिकवादी युग में अधिक बढ़ गई है। विवाहित महिला या पुरुष स्वेच्छाचारी जीवन चाहता है। वह किसी भी प्रकार का बंधन पसंद नहीं करता। सभी ऐश आराम की जिंदगी जीना चाहते हैं तथा आधुनिकतम सभी सुविधाओं की प्राप्ति भी चाहते हैं। इसलिए 'दूर के ढोल सुहावन लागे' की उक्ति उनके संबंध में चरितार्थ होती है। पर पुरुष और पर स्त्री हमेशा आकर्षक लगते हैं, दिखते हैं। यही कारण है कि छोटी–छोटी बातों को लेकर तलाक हो रहे हैं। कोई एक–दूसरे को क्वापरेट करना नहीं चाहता। आपस में मधुर संबंध नहीं हैं। सामंजस्य और समन्वय का अभाव है– इसलिए तनावपूर्ण वातावरण के कारण तलाक की समस्या दिनोदिन बढ़ती जाती है। तलाक के लिए स्त्री–पुरुष को कोर्ट में प्रस्तुत करना अनिवार्य है कि– वे एक–दूसरे के प्रति विश्वास पात्र नहीं रहे। सह साथी हिंसक प्रवृत्ति का है, अराजक है, बच्चों को रखने से इनकार करता है। दो वर्ष से अधिक समय से संबंध विच्छेद है। दोनों की तलाक हेतु सहमति अनिवार्य है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भौतिकतावादी संस्कृति और स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के कारण यूके में तलाक की संख्या बढ़ती जा रही है। भारत में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है लेकिन वर्ग विशेष में यह प्रवृत्ति अधिक है। ऐसी परिस्थिति में फैमिली डॉक्टर की मध्यस्थता से यह समस्या कुछ सीमा तक हल करने का प्रयास किया गया है। सक्रिय और कारगर संस्था 'Relate' रिलेट है जो इग्लैंड और वेल्स में तलाक की समस्या को गंभीरता से लेती हुई समझौता कराने में सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निर्वहन कर रही है।

समलैंगिक सहभागिता

ब्रिटेन में भी अन्य देशों की तरह समलैंगिकता की समस्या देखने को मिली है। एक हीलिंग के जोड़े को साथ–साथ पति–पत्नी की तरह रहने की छूट है। लड़की–लड़की के साथ तथा लड़का लड़के के साथ रह सकता है उसे अनैतिक नहीं माना जाता।

जून के तीसरे सप्ताह में अमरीका में समलैंगिक सम्मेलन में एक नागरिक ने अपनी बंदूक से उनचास लोगों को मौत के घाट उतार दिया

क्योंकि वे समलैंगिक थे और समलैंगिकता के समर्थक थे। यह भी एक प्रकार की बीमारी है जो संक्रमण द्वारा अन्य देशों में फैल रही है। यह पाश्चात्य संस्कृति की देन है। समलैंगिकता किसी के लिए भी शुभ नहीं है– न स्त्री के लिए, न पुरुष के लिए, न समाज के लिए और न राष्ट्र के लिए। यह नैतिक भी नहीं है।

ब्रिटेन एक बड़ी प्रजातांत्रिक सरकार के द्वारा शासित होता रहा है। जिसमें राजा, पार्लियामेंट– हाउस ऑफ कामन्स और हाउस ऑफ लार्ड्स सम्मिलित हैं, प्रधानमंत्री कार्यालय, मंत्रीमंडल, न्यायपालिका, पुलिस, सिविल सर्विस तथा स्थानीय सरकारी निकाय सम्मिलित हैं। एलिजाबेथ द्वितीय यूके की रानी हैं जो सर्वोपरि हैं। कामनवेल्थ में वे बहुत से देशों की मोनार्क हैं। यूके, डेनमार्क, नीदरलैंड, नार्वे, स्पेन, स्वीडन की तरह इनकी अपनी मोनार्की हैं। इसका आशय यह है कि राजा या रानी देश को शासित नहीं करते बल्कि वे सरकार की नियुक्ति करते हैं जिसे आम जनता ने प्रजातांत्रिक चुनाव में चयनित किया है। रानी या राजा प्रधानमंत्री को सरकार के नीति निर्धारण में सलाह या सुझाव दे सकते हैं। एलिजाबेथ द्वितीय ने अपने पिता की मृत्यु के बाद सन् 1952 ई. में त्यागपत्र दे दिया था। राजकुमार चार्ल्स–दी प्रिंस ऑफ वेल्स, उनका बड़ा पुत्र, वही सिंहासन का उत्तराधिकारी बना। रानी प्रतिवर्ष संसद के आरंभ होने के प्रथम दिन उद्घाटन करती हैं। उस अवसर पर सरकार नीतियों की समीक्षा संक्षेप में की जाने की परंपरा है।

ब्रिटिश सरकार प्रजातांत्रिक संसदीय सरकार है। ब्रिटेन 1646 संसदीय कांसटीट्यूएन्सीज में विभाजित है। सांसद आम जनता से आम चुनाव में जीतकर आते हैं। सभी निर्वाचित सांसद हाउस ऑफ कॉमन को बनाते हैं तथा बहुमत दल की सरकार होती है। प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के सभी सदस्य हाउस ऑफ दी कॉमन्स होते हैं। प्रत्येक पाँच वर्ष बाद आम चुनाव होता है जिसमें सांसद अपने–अपने निर्वाचन क्षेत्र से चुनकर आते हैं और मंत्री बनकर सरकार चलाते हैं तथा कानून बनाते हैं। बहुमत दल के सभी सांसदों में से प्रधानमंत्री चुनाव करता है जो नेता सदन होता है और प्रधानमंत्री अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है।

यूरोपीयन पार्लियामेंटरी एलेक्शन प्रति पाँच वर्ष बाद होता है जिसमें 78 सीटें यूके प्रतिनिधियों की हैं और निर्वाचित सांसद–मेम्बर ऑफ यूरोपियन पार्लियामेंट कहे जाते हैं। हाउस ऑफ लॉर्ड्स– में 1958 से चुने हुए लोग आते हैं– जिसमें वंश परंपरा तथा उपाधिधारक, वरिष्ठ न्यायाधीश या इंग्लैंड के विशप्स चर्च के ये सदस्य सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व रखते हैं तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर रानी के द्वारा नामित होते हैं। दो राजनैतिक दल हैं प्रथम लेबरपार्टी और द्वितीय कंजर्वेटिव पार्टी।

यूरोपीयन यूनियन मुख्यतः रूप से यूरोपीयन आर्थिक संगठन को सुदृढ़ एवं सुनिश्चित करने हेतु छह पश्चिमी देशों द्वारा हस्ताक्षर करके बनाया गया था जिस पर समझौता 25 मार्च, 1957 ई. को रोम में हुआ था। राज्यों और देशों के बीच सहयोग बढ़ाने की भावना को विकसित करना इसका मुख्य उद्देश्य था। यूरोप में युद्ध न होने देने का भी यह संकेत था। मुख्य रूप से यूके ने निश्चय नहीं किया था कि इस यूनियन में सम्मिलित हुआ जाए और इसका एक भाग सन् 1973 ई. में बना। 2004 ई. में दस अन्य देशों ने इसकी सदस्यता ग्रहण की और इसमें अर्थात् यूरोपीयन यूनियन में सम्मिलित हो गए तथा 2006 में और दो देशों ने इसकी सदस्यता ग्रहण कर ली। इस प्रकार आज इसमें कुल 28 देश हैं जो इसके सक्रिय सदस्य हैं।

यूके यूनियन का एक मात्र उद्देश्य आज यह है कि सदस्य देश एक बाजार का उद्देश्य पूरा करें– single market वे सभी देश हिमायती हैं, आग्रही हैं। अधिकांश देशों के पास शेयर करेंसी है जिसे युरो कहा जाता है लेकिन यूके ने अपनी निजी करेंसी चलाने और उसे कायम रखने का निर्णय लिया है जब तक कि ब्रिटिश जनता रेफरेंडम के रूप में इसे चयन करना स्वीकारती है। यूरोपीयन यूनियन के सदस्य को पूरा अधिकार है कि वे किसी भी देश में यात्रा कर सकते हैं या काम कर

सकते हैं यदि उनके पास वैलिड पासपोर्ट है या पहचान पत्र है। यह अधिकार सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक आदेश और सार्वजनिक सुरक्षा के द्वारा ही प्रतिबंधित किया जा सकता है। कार्य करने का अधिकार कभी–कभी उन नागरिकों का प्रतिबंधित किया गया है जो हाल ही में यूरोपीयन यूनियन में सम्मिलित हुए हैं।

यूरोपीयन संसद स्ट्रासबर्ग उत्तरी पूर्वी फ्रांस में तथा ब्रुसेल्स में मिलती है। प्रत्येक देश अपना सदस्य निर्वाचित करता है जिसे यूरोपीयन सांसद कहा जाता है जो पाँच साल के लिए निर्वाचित होता है। यूरोपीयन सभा और यूरोपीयन कमीशन के द्वारा लिए गए निर्णयों की यूरोपीयन संसद जाँच करती है तथा संसद की शक्ति होती है कि यूरोपीयन कमीशन के द्वारा लिए गए निर्णयों को यूरोपीयन कमीशन द्वारा प्रस्तावित कानून को वह मना कर सकती है तथा यूरोपीयन यूनीयन के फंड को रोक सकती है।

1949 में यूरोपीयन कौंसिल बनी थी। यूके इसके संस्थापक संदस्यों में से एक है। यूरोप के अधिकांश देश इसके सदस्य हैं। इसके पास कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं है लेकिन उन Conventions and Charters को वापस करने का अधिकार है जो मानवाधिकार, प्रजातंत्र, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं संस्कृति पर फोकस करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण इनमें मानवाधिकार का मामला है जिसमें सभी राज्यों, देशों के सदस्य बँधे हुए हैं इससे तथा जो कोई भी किसी देश का सदस्य इसकी अवज्ञा करता है उसे यूरोपीयन सभा से निष्काषित कर दिया जाता है।

यूनाइटेड नेशन्स

यूके यूनाइटेड राष्ट्रों का एक सदस्य है जिसमें अंतरराष्ट्रीय संगठन में 190 देशों की भागीदारी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह संगठन बना जिसका उद्देश्य युद्ध रोकना और अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम बनाए रखना यूनाइटेड नेशन्स में पंद्रह सुरक्षा सभा हैं जिसे सिक्योरिटी कौंसिल कहा जाता है। यह यूनाइटेड नेशन्स के द्वारा कार्य करने की सिफारिश करती है जब कभी अंतरराष्ट्रीय शांति को खतरा लगता है या जब शांति भंग होने की आशंका होती है। ब्रिटेन इन स्थायी पाँच सदस्यों में से एक है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि यूनाइटेड नेशन्स में तीन प्रकरणों पर गंभीरता से विचार किया गया है यद्यपि इसके संबंध में कानून नहीं बनाया गया है। सभी राष्ट्र तीन बिंदुओं पर पूर्णरूपेण सहमत हैं; प्रथम कि मानवाधिकार की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए क्योंकि सबको जीने का अधिकार है– सभी मानव हैं और सभी के साथ मानवीय धरातल पर मानवीय व्यवहार होना चाहिए। द्वितीय महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं होना चाहिए। उनको समानता का अधिकार प्राप्त है। उन्हें किसी भी तरह से शोषित, पीड़ित या प्रताड़ित नहीं करना चाहिए। उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान होनी चाहिए। सरकार उनकी सुरक्षा की गारंटी दे। तीसरा, बच्चे की 16 वर्ष की उम्र तक सभी प्रकार की स्वास्थ्य एवं शिक्षा–व्यवस्था राज्य सरकार को करनी है। 3 वर्ष से 16 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा और स्वास्थ्य–व्यवस्था राज्य सरकार के द्वारा सुनिश्चित है। अभिभावकों को, माता–पिता को भी उन्हें ध्यान से पालन–पोषण करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करना है अन्यथा की स्थिति में माता–पिता की जवाबदेही बनती है। नाबालिग बच्चों को अनदेखा करना, उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखना या उन्हें अकेले घर पर छोड़ना दंडनीय अपराध की श्रेणी में आता है। यदि माँ–बाप 16 वर्ष की कम आयु के बच्चों को घर में छोड़कर कहीं बाहर चले जाते हैं और यदि कौंसिल को पता लग जाता है कि माँ–बाप ने अपना दायित्व निर्वहन नहीं किया है तो कारावास का दंड सुनिश्चित है– इससे कोई बचा नहीं सकता और न कोई माफ कर सकता है। 23 जून, 2016 ई. को जनमत संग्रह कराने पर मतदान किया गया जिसमें डेविड कैमरन की कन्जरवेटिव पार्टी को करीब 13 लाख मतों से हार स्वीकार करनी पड़ी। चूँकि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने 'वोट रिमेन' के पक्ष में करने की अपील की थी इसलिए

'लेबर पार्टी' के पक्ष में अधिक मतदान के परिणाम स्वरूप प्रधानमंत्री डेविड कैमरन को नैतिकता के आधार पर अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ा। 12 जुलाई, 2016 ई. में दूसरी महिला उम्मीदार 'लेबर पार्टी' की प्रधानमंत्री टेरीजामे बनी। डेविड कैमरन ही प्रधानमंत्री पद से मुक्त हो गए।

प्रधानमंत्री टेरीजामे प्रधानमंत्री का पद संभालते ही घोषणा कर चुकी हैं कि जो कार्य कैमरन सरकार ने आरंभ किया है उसे प्रत्येक दशा में पूरा किया जाएगा। कन्जरवेटिव पार्टी के होने के कारण उन्हें उन्हीं नीतियों का अनुसरण और अनुकरण करना है जो पूर्व में निर्धारित की गई हैं। ब्रिटेन की यह दूसरी महिला प्रधानमंत्री हैं। वर्तमान में रानी एलिजाबेथ द्वितीय और प्रधानमंत्री टेरीजामे दोनों ही महिलाएँ ब्रिटेन की शासक हैं। उनसे अनेक क्षेत्रों में प्रगति की संभावनाएँ हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि इस रिपोर्ताज में ब्रिटेन की नारियों की स्थिति, उनकी परिस्थिति, समय चक्र, संपूर्ण परिवेश, नारी स्वातंत्र्य की भावना, नारी सशक्तिकरण, नारी की सत्ता में सहभागिता आदि तथ्यों को कथ्य के रूप में वर्ण्य विषय बनाया गया है। एलिजाबेथ द्वितीय 92 वर्ष की अवस्था में भी ब्रिटिश शासन में रानी के रूप में सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रही हैं तथा उन्होंने ही प्रधानमंत्री टेरीजामे को जुलाई, 2016 ई. में नियुक्त किया था।

ब्रिटेन प्रवास के नब्बे दिन वहाँ के निवासियों के रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, जीवन जीने की कला, नारी जागरण, स्वच्छंद–वातावरण एवं समुद्री द्वीप समूह पर भ्रमण करने में व्यतीत हुए। ब्रिटेन प्रवास की समयावधि में प्रत्येक दिन नया दिन के रूप में महसूस किया गया तथा नई–नई घटनाएँ, नए–नए लोग, नया वातावरण, नव्यदृश्य आदि की निराली छटा मनमोहक लगी। वास्तव में रिपोर्ताज विधा में घटना और दृश्य को मार्मिकता के साथ उद्घाटित करना तथा उसे कलात्मक रूप से प्रस्तुत करना ही लेखक का ध्येय होता है। यही कारण था कि ब्रिटिश नारी जागरण को वर्ण्य विषय बनाकर नारी स्वातंत्र्य का मार्मिक चित्रांकन किया गया। ब्रिटेन की नारी पुरुषों की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं सक्षम है। रात को तीन बजे भी लंदन या अन्य शहरों से नारियों को आने–जाने में न कोई भय लगता है और न कोई अवरोध है।

राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उनकी बराबर सहभागिता देखी गई। उनके जीवन में उत्थान–पतन, उत्कर्ष–अपकर्ष, उन्नति–अवनति, प्रसन्नता–खिन्नता, संपन्नता, विपन्नता, अंधकार–प्रकाश समान रूप से आते–जाते देखे गए हैं लेकिन वे विषम और विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होती देखी गई हैं यह उनकी संघर्षशीलता और कर्तव्यपरायणता का ज्वलंत उदाहरण है। इस रिपोर्ताज में नारी मुक्ति, नारी स्वातंत्र्य, नारी जागरण आदि संदर्भों को उभारने की पूरी कोशिश की गई है। ताकि वर्णित घटनाएँ एवं दृश्य पाठकीय संवेदनात्मक धरातल को स्पर्श कर सकें। वस्तुतः ब्रिटेन का सामाजिक वातावरण, कार्यालयी परिवेश, शासन तंत्र एवं जनमानस का सहयोग ऐसे कारक हैं जो ब्रिटिश नारी को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ने और सफल होने में सहायक सिद्ध हैं। लेखक की अनुभूतियों से ही घटनाओं, दृश्यों एवं क्रियाकलापों में सजीवता और मार्मिकता आते देखी गई है। यही कारण है कि नारी जागरण का चित्रांकन वस्तुनिष्ठता के धरातल पर इस रिपोर्ताज में किया गया है। कहीं–कहीं आत्मनिष्ठता की हल्की धाराएँ भी प्रवाहित हुई हैं।

लड़कियों की उम्र शादी के लिए 16 वर्ष अनिवार्य रूप से रखी गई है तथा रजिस्ट्री कार्यालय में पिता–अभिभावक को स्वीकृति पत्र देना होता है। जन्मतिथि का प्रमाण–पत्र भी अनिवार्य रूप से जमा करना होता है। लीविंग टूगेदर में किसी भी प्रकार का बंधन नहीं है– न चर्च का, न रजिस्ट्री कार्यालय का और न माता–पिता का। मात्र आयु 16 वर्ष पूर्ण होनी चाहिए तो लड़की को अपने मन पसंद युवक के साथ दाम्पत्य स्वरूप यदि संतान उत्पन्न होती है तो 18 वर्ष तक दोनों का दायित्व बनता है कि उसका लालन–पालन करे। यदि माँ अलग होना चाहती है तो संतान माँ को ही मिलती है।

नारी जागरण में ब्रिटेन विश्व के अन्य देशों में अग्रणी है। ब्रिटेन की नारियों की मानसिक दशाएँ अनुकूल वातावरण तथा उपयुक्त पर्यावरण के कारण अधिक प्रखर हैं तथा वे स्वच्छंद जीवन जीने के लिए स्वतंत्र हैं। वस्तुतः व्यक्ति की मानसिक दशाएँ परिवेश से बनती हैं। यही कारण है कि पर्याप्त मात्रा में सेवाओं की उपलब्धता है। कोई भी लड़की माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् घर पर बैठना पसंद नहीं करती। होटल, माल, जलपान गृह, कौंसिल, अन्य कार्यालय आदि अनेक स्थान हैं, जहाँ पर पार्ट टाईम सर्विस मिल जाती हैं। एक लड़की दो–दो कार्यालयों या होटलों में सेवारत देखी गई हैं। हाँ, वे अपने कार्य के प्रति इतनी वफादार और ईमानदार होती हैं कि एक मिनट भी नष्ट नहीं करती। तुरंत यूनीफॉर्म पहनकर मनोयोग पूर्वक हँसते हुए कार्य करती है। यह कोई सैद्धातिंक स्वर नहीं ध्वनित किया गया। जनसमुदाय का सहयोग और मनोदशा भी नारी जागरण में सहायक सिद्ध है। जनसहयोग पूरा–पूरा मिलता है। अतएव ब्रिटेन की नारियाँ स्वस्थ हैं, निरोग हैं, क्रियाशील हैं, संवेदनशील हैं एवं अपने दायित्व निर्वहन के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं। सचेत हैं एवं जागरूक हैं। रिपोर्ताज चूँकि यूरोपीय साहित्य की देन मानी जाती रही है– इसलिए ब्रिटिश नारी जागरण, नारी सशक्तिकरण, नारी स्वातंत्र्य एवं नारी विमर्श में भी विश्व में शीर्षस्थ स्थान पर है।

भारतीय सांस्कृतिक चेतना विश्व को भी शांति और मैत्री का संदेश देती रही है। भारतीय संस्कृति उदारवादी संस्कृति है, मानवतावादी दृष्टि से रूपायित संस्कृति है। सहिष्णुतावादी, समन्वयवादी और सामंजस्यवादी संस्कृति है। वैश्विक जीवन दर्शन से संपृक्त संस्कृति है जो जीवों पर दया करना, सर्वजन कल्याणार्थ कार्य करना सिखाती है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि यह विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है– विश्व एक नीड़ की कल्पना को साकार करने में विश्वास रखती है। विश्व के अधिकांश देश संप्रति वैज्ञानिक अनुसंधान करने में लगे हैं वहीं भारतीय संस्कृति पातंजलि योग साधना तथा पंचगव्य जैसी अमोघ औषधि से रोगी को ठीक करने का संदेश विश्व के कोने–कोने में प्रचारित और प्रसारित करती है।

नोबेल पुरस्कार विजेता रसायन शास्त्री लिनस पार्लिंग ने 1963 ई. में कहा था कि विश्व में करीब 32 लाख मेगाटन बम है। स्टैंडर्ड अणु बम 20 मेगाटन के बराबर होता है। रूस और अमरीका तो क्रमशः 600 और 1000 मेगाटन के अणुबम की क्षमता रखते हैं। इनकी मारक क्षमता अकूत है, सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। तीनों की आबादी– रूस, अमरीका और यूरोप की कुल आबादी करीब 150 करोड़ की है। विभिन्न देशों में एकत्रित किए गए परमाणु अस्त्रों का कुल दस प्रतिशत ही इस एक सौ पचास किलोमीटर क्षेत्र में गिराया जाए तो 72 करोड़ लोग तुरंत मर जाएँगे तथा 12 करोड़ बुरी तरह घायल हो जाएँगे तथा शेष लोग एक वर्ष तक रूग्णावस्था में जीवन जीने को विवश हो जाएँगे। रेडियोधर्मी किरणें, धूल एवं विषैली गैस से प्रभावित लोगों को स्वस्थ करने के लिए तथा लिनस पार्लिंग के द्वारा खींचे विनाश के खाके के बाद जॉन आस्ट्रिन ने अपने गहन अध्ययन और अथक परिश्रम के पश्चात् यह प्रमाणित कर दिया था कि इस विकरण से यदि एक करोड़ व्यक्ति बच जाएँ तो उनके लिए गाय का दूध मुफीद रहेगा जिसे पंचगव्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। पंचगव्य भारतीय प्राचीन चिकित्सा में एक औषधि है जिसे गाय का दूध, दही, घी, गोमूत्र एवं गंगा जल से बनाया जाता है। यह त्रिदोष में भी रामबाण सिद्ध है। यह है भारतीय संस्कृति की देन और चिकित्सा जगत के लिए अमोघ औषधि।

कहावत है– 'खाली दिमाग शैतान का घर है'– जिसे अंग्रेजी में 'An Empty mind is devil's workshop' कहा जाता है। पाश्चात्य देशों में और विशेषकर यूके में देखने को मिला कि यहाँ व्यक्ति आत्मनिर्भर रहना चाहता है। इसलिए सेवानिवृत्त होने के पश्चात् भी वह परिवार से अलग रहना पसंद करता है। उसे पेंशन पर्याप्त मात्रा में मिलती

है– इसलिए आर्थिक संकट नहीं होता। अवकाश प्राप्त लोगों के लिए सरकार की ओर से सेवानिवृत्त अपार्टमेंट बनाए गए हैं जिनमें सेवानिवृत्त लोग सुखपूर्वक जीवन यापन करते हैं। अत्यधिक वृद्धावस्था में उन्हें देशाटन करने के लिए छोटी बसें उपलब्ध कराई जाती हैं जिनमें बैठकर सुगमता पूर्वक भ्रमण कर सकते हैं। उन बसों को सेवानिवृत्त स्वस्थ चालक स्वेच्छा से चलाते हैं। सामाजिक सेवा के लिए भी उन्हें छूट रहती है। यदि वे कोई कार्य समाज का करना चाहते हैं तो उन्हें कार्य मिल जाता है और वे अपनी क्षमता, योग्यता एवं दक्षता के अनुसार समाज को अपनी सेवाएँ देते हैं और उसके बदले उनको निर्धारित वेतन के रूप में मानदेय मिलता है। यह एक स्वस्थ परंपरा है। कोई भी व्यक्ति खाली नहीं बैठता। अगर वह कार्य करने योग्य है तो पेंशन के अतिरिक्त उसे काम करने के बदले मानदेय इतना मिल जाता है कि वह बहुत अच्छा शान–शौकत का जीवन यापन कर सकता है– इसीलिए कहा गया है कि कार्य पूजा ही नहीं पारितोषिक भी है। व्यक्ति को कार्य करते रहना चाहिए। समाज के लिए, राष्ट्र के लिए, मानवता के लिए कार्य करना ही सामाजिक और धार्मिक सेवा की श्रेणी में आता है। व्यक्ति की गरिमा, उसकी सार्थकता और उपयोगिता उसके द्वारा की गई समाज सेवा और राष्ट्र सेवा में निहित है। यही सही अर्थों में मानव धर्म है और यही युग धर्म भी है और यही आज के विश्व की महती आवश्यकता भी है जिसका साक्ष्य यूके में देखने को मिला है।

कर्मी जो कम वेतन भोगी हैं वे पार्ट टाईम जॉब करने में भी संकोच नहीं करते। पाश्चात्य के देशों में कोई भी कार्य हेय नहीं समझा जाता। विशेषकर यूके में हर व्यक्ति हर कार्य करने को उद्यत रहता है। कोई काम तुच्छ या गंदा नहीं माना जाता और प्रत्येक व्यक्ति प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखता है और अपने को समान मानता है। ऊँच–नीच का भेद–भाव देखने को नहीं मिलता। जो जिस कार्य के करने के योग्य है वह उस कार्य को स्वेच्छा से अवश्य करेगा। यही कारण है कि इन देशों में सफाई व्यवस्था चुस्त–दुरुस्त है तथा रोगों से बचाव के लिए 'इलाज से रोकथाम– के बचाव बेहतर' की रीति–नीति अपनाते हैं।

बीशॉप्स स्ट्रॉटफोर्ड में सेवारत दो व्यक्तियों ने सामाजिक सेवा द्वारा आम जनता को कार्य करने का पाठ पढ़ाया और अपना आदर्श स्थापित किया जिसका विवरण Summer 2016 की Link पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। कौंसिल अर्थात् नगर निगम में चारागाह सेवक डेनियल एब्बोट अपनी पत्नी होलीड्रेक के साथ सेवारत हैं लेकिन उनके पास धन की कमी के कारण आज भी अपना मकान नहीं है। इसलिए वे किराए के मकान में जीवन यापन करते हैं।

एक अन्य व्यक्ति सेंट एलिजाबेथ के 'मच हैघम' में डिप्टी मैनेजर के रूप में सेवारत है जो एक दूसरे स्थान कालचेस्टर में रोजगार सलाहकार ऐन एम्प्लॉयमेंट एडवाइजर के रूप में लोगों की गाईड के रूप में सेवा कर रहा है जिसके लिए उसे अलग से मानदेय अदा किया जाता है। वह निःस्वार्थ भाव से लोगों की परेशानियों को दूर करता है जिसके लिए उसको भुगतान होता है।

डेनियल एब्बोल मनोयोग पूर्वक सभी कार्यों को संपन्न करते हैं। वे संगीत थियेटर में भी सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करते हैं क्योंकि संगीत उनकी रूचि में रचा–बसा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति की कार्य करने की प्रबल इच्छाशक्ति किस प्रकार सबका प्रिय बना देती है। योजनाबद्ध तरीके से, नियमित और निष्ठापूर्वक कार्य करने से सही ऊर्जा का प्रयोग होता है, अर्थोपार्जन होता है तथा कार्य की संपन्नता से जो आत्म संतुष्टि और आत्म परितोष मिलता है वह व्यक्ति के लिए सर्वोपरि होता है– वह मात्र अनुभूति का विषय है अभिव्यक्ति का नहीं। जीवन अपने आप में एक चुनौती है। व्यक्ति को धैर्यपूर्वक अपने सामाजिक दायित्व का निर्वहन करना चाहिए। यह सद्व्यवहार और सद्उद्देश्य जीवन में प्रगति पथ दिलाने के साथ–साथ दौलत और शोहरत दोनों दिला देता है जिससे व्यक्ति की

कीर्ति और सुयश में वृद्धि और समृद्धि भी होती है अन्यथा की स्थिति में अधोगति। दूसरा उदाहरण कांउसिल में ही सेवारत हौली ड्रेक का है जो डेनियल एब्बोट की पत्नी हैं। हौली ग्रेजुएट हैं लेकिन कॉफी हाऊस में काम करती हैं जहाँ शराब, मिल्क शेक, कॉफी आदि पेय सर्व करने पड़ते हैं और भिन्न–भिन्न प्रकार के उम्र वाले तथा नशाखोर व्यक्तियों से भी सामना पड़ता है फिर भी 18 वर्ष की आयु में इस युवती ने इस चुनौती को स्वीकार किया और जोखिम भरा कदम साहस के साथ उठाया। उनके मानस में अनेक प्रकार के संकल्प –विकल्प उठते रहे लेकिन अपने आत्मबल और आत्मविश्वास के बल पर सेवा कार्य को एक तपश्चर्या के रूप में व्यावहारिक फलक प्रदान किया। स्त्री–पुरूष दोनों समानरूप से सेवारत हैं। समान रूप से दोनों जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आचरण– व्यवहार करते हैं। दोनों गाड़ी के दो पहिए की तरह हैं जो जीवन–रूपी गाड़ी को खींच रहे हैं। ब्रिटेन की नारियाँ जीवन के किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं। हौलीड्रेक युवती होते हुए भी राजनीति में रुचि रखती हैं। लिंक पत्रिका का ग्रीष्म 2016 का अंक उनकी कार्यप्रणाली का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

आज के परिप्रेक्ष्य में भारत में भी इस प्रकार कार्य करने की लगन, धुन एवं रुचि विकसित करने की आवश्यकता है ताकि गरीब से गरीब घर की बच्ची शिक्षित हो सके। शिक्षित होने के साथ–साथ पिता या अभिभावक के वाणिज्य–व्यापार से प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण लेकर अपने को तैयार कर ले ताकि कोई भी कार्य करने में कोई संकोच न रहे। हौलीड्रेक एक विशप स्टार्ड फोर्ड की स्नातक उपाधि धारक सबसे कम उम्र की जनपद काउंसिल हैं जो लड़की होते हुए भी कॉफी हाऊस और अन्य स्थानों पर सेवा करने में आज भी संकोच नहीं करतीं। ग्रीष्मकालीन अंक लिंक पत्रिका का इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। कॉफी हाऊस की संस्कृति में सेवारत–कार्यरत रहने वाली इस युवती ने एक ओर शिक्षित होने, सुसंस्कृत होने, शालीन–विनम्र होने तथा दूसरी ओर कार्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ 'डेडिकेटेड' एवं 'डिवोटेड' होने का भी परिचय देने में वह सक्षम रही हैं। ऐसी पुत्री परिवार का, समाज का, राष्ट्र का एवं स्त्री जाति का सम्मान बढ़ाती है और स्वयं भी आत्मनिर्भर बनाती है जो अन्य लड़कियों के लिए उदाहरण है, प्रेरणा का स्रोत है। संप्रति ऐसी लड़कियों की आवश्यकता भारतीय समाज को भी है। गांधीवादी नीति–रीति की सादगी, शालीनता तथा कर्तव्यपरायणता के साथ–साथ कार्य के प्रति समर्पण, भक्ति एवं निष्ठा के भाव भी यहाँ देखने को मिले हैं जो वंदनीय नहीं तो अनुकरणीय अवश्य हैं।

कॉफी का गिलास ग्राहक को कॉफी हाऊस में प्रसन्न मुद्रा में मुस्कुराते हुए भेंट करना हौली ड्रेक की अन्यान्य विशेषता है। उनके व्यक्तित्व में स्वाभिमान है परंतु दर्प नहीं। वे आज की किशोरियों के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन की अजस्त्र स्त्रोत हैं।

उपर्युक्त उद्धरण से यह तथ्य भली भाँति स्पष्ट है कि यहाँ पर वर्गभेद, घटकवाद, जातिवाद, श्रेणी विभाजन, बड़ा–छोटा कार्य, ऊँच–नीच आदि की भावनाएँ देखने को नहीं मिलती। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में भौतिकतावादी प्रवृत्ति और संस्कृति दोनों का वर्चस्व देखने को मिला है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति सुखमय जीवन व्यतीत करता है। आज का संसार भौतिक संपन्नता में अधिक रुचि लेता है आध्यात्मिक जगत के प्रति उसकी रुचि–रुझान नहीं है फिर भी कर्म की प्रधानता ही स्वीकार की गई है। नारी जागरण का यह एक सुंदरतम उदाहरण है। डेनियल एब्बोट जैसे लाखों पुरुष और हौलीड्रेक जैसी लाखों स्त्रियाँ आज यूके में कार्यरत हैं और सेवाधर्म से उन संस्थानों की तो सेवा कर ही रहे हैं स्वयं भी शान और शौकत का जीवन यापन कर रहे हैं जिनके मूल में उनकी समरस दृष्टि और व्यापक दृष्टिकोण है। भारत में भी डेनियल और डौली जैसे स्त्री–पुरुष की आवश्यकता है ताकि गांधीवादी रीति–नीति के साथ–साथ छोटे–बड़े कार्य के प्रति समरस भाव की जागृति हो सके। वास्तव में कोई भी बड़ा और

छोटा व्यक्ति नहीं है और न कार्य कोई बड़ा सम्मान का या छोटा कार्य असम्मान का ही प्रतीक है। यदि हम मानवतावादी दृष्टि से गंभीरता पूर्वक विचार करें तो यह निष्कर्ष हमें समझ में स्वयं आ जाएगा कि सड़क पर झाड़ू लगाने वाला व्यक्ति भी तो हमारे जैसा है। यदि वह सड़क साफ कर सकता है तो हम भी सड़क साफ कर सकते हैं। इसलिए व्यक्ति–व्यक्ति से विभेद, छोटे–बड़े का अंतर मिट जाएगा और जो व्यक्ति इन भावनाओं से कार्य करेगा वह वास्तव में राष्ट्र प्रेमी होगा, राष्ट्र भक्त और राष्ट्र सेवक होगा तथा सही अर्थों में मानव कहलाने और मानव प्रेमी कहलाने का अधिकारी होगा।

मुझे आशा और पूर्ण विश्वास है कि यह उन पाठकों के लिए रुचिकर, प्रीतिकर एवं उपयोगी होगा जो यूनाइटेड किंगडम की सभ्यता और संस्कृति को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में जानना चाहते हैं ताकि भारत को भी प्रगतिपथ का आधार मिल सके। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में बहुत कुछ ऐसा है जिसको पाश्चात्य देश अंगीकार करना चाहते हैं तथा कुछ पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में भी ऐसा है जिसे आत्मसात् करना भारत के लिए भी श्रेयस्कर होगा। श्रीमद्भगवतगीता कर्म योग की शिक्षा देती है तथा व्यक्तिमानव को कर्मयोगी बनाती है। उपनिषद् ज्ञान मार्ग की शिक्षा देता है और व्यष्टि मानव को समष्टि मानव के रूप में संस्कारित बनाता है जो 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' और 'असतोमा सद्गमय' का स्वर ध्वनित करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कर्म की प्रधानता को स्वीकार किया है तथा दायित्व निर्वहन पर विशेष बल दिया है। इन स्वर्णिम सिद्धांतों ने वैश्विक संस्कृति को भी प्रेरित और प्रभावित किया है। अतएव यह रिपोर्ताज नारी जागरण का भी द्योतन करता है।

भारत की न्यायधीश लीला सेठ के जीवन से जुड़ी भी इसी प्रकार की अद्भुत घटना है जिसको रिपोर्ताज का अंग बनाया गया है। 24 वर्ष की उम्र में उनकी शादी प्रेमनाथ सेठ से हो गई। शादी के बाद दोनों लंदन में जाकर बस गए। वहाँ जाकर उन्होंने कानून की पढ़ाई शुरू की। 1958 ई. में 27 वर्ष की उम्र में उन्होंने 580 छात्रों के बीच लंदन बार परीक्षा में टॉप किया। वहाँ के स्थानीय अखबार ने उन्हें 'मदर–इन–लॉ' नाम दिया क्योंकि उस समय तक वे एक बच्चे की माँ बन चुकी थी। 1959 में उन्होंने बार में प्रैक्टिस शुरू की। इसी वर्ष उन्होंने लोक सेवा आयोग की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। कुछ ही समय में वे पति सहित भारत लौट आईं और पटना में कानून की प्रैक्टिस शुरू की। इसके बाद पटना हाईकोर्ट, दिल्ली हाईकोर्ट और सुप्रीमकोर्ट में कई वर्षों तक प्रैक्टिस की। 15 मई 2017 को 86 वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी इच्छा के अनुसार उनका दाह–संस्कार नहीं किया गया बल्कि उनके पार्थिव शरीर को दिल्ली के आर्मी रिसर्च हॉस्पीटल में शोध के लिए दान कर दिया गया।

तीसरी महत्वपूर्ण अद्भुत घटना है जम्मू–कश्मीर हाईकोर्ट की पहली महिला प्रमुख बनीं गीता मित्तल की। जस्टिस गीता मित्तल को शनिवार 4 अगस्त, 2018 को जम्मू–कश्मीर हाईकोर्ट का जज नियुक्त किया गया। इसी के साथ वह इस राज्य के हाईकोर्ट की पहली महिला प्रमुख बन गई हैं। जस्टिस मित्तल इससे पूर्व दिल्ली हाईकोर्ट में कार्यवाहक चीफ जस्टिस थीं। सुप्रीम कोर्ट में पहली बार तीन महिला जज एक साथ कार्यरत हैं– यह अद्भुत संयोग नारी सम्मान और नारी सशक्तिकरण का अनोखा उदाहरण है। मद्रास हाईकोर्ट की मुख्य न्यायाधीश इंदिरा बनर्जी को सुप्रीमकोर्ट में नियुक्त किए जाने के बाद शीर्ष अदालत में पहली बार महिला जजों की संख्या तीन हो गई है। इंदिरा बनर्जी से पहले आर भानुमति और इंदु मलहोत्रा शीर्ष अदलत में बतौर जज कार्यरत हैं। जस्टिस बनर्जी सुप्रीम कोर्ट के इतिहास में आठवीं महिला जज हैं।

विश्व जूनियर एथलेटिक्स चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक जीतने वाली देश की पहली महिला धावक हिमादास ने 20 एथलेटिक्स में 400 मीटर स्पर्धा में स्वर्ण पदक जीत कर इतिहास रचा था। इस प्रकार भारत की रक्षामंत्री, विदेश मंत्री श्रीमती

सीतारमण और श्रीमती सुषमा स्वराज अपने–अपने क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित कर चुकी हैं। रिपोर्ताज में इन महिलाओं की सेवाओं को सम्मिलित करना ही नारी सम्मान का घोतक सिद्ध होगा।

नारी सशक्तिकरण 5 अगस्त को संपूर्ण विश्व में मनाया जाता है। 5 अगस्त को विश्व में दो महत्वूपर्ण घटनाएँ घटित हुई हैं। भारत में 5 अगस्त, 1991 ई. के दिन दिल्ली हाईकोर्ट की पहली महिला न्यायधीश लीला सेठ ने हिमाचल प्रदेश हाईकोर्ट के 8 वें चीफ जस्टिस का पद संभाला। किसी भी राज्य के हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस पद पर आसीन होने वाली लीलासेठ पहली महिला बनीं। यह नारी सशक्तिकरण का अद्भुत उदाहरण है जिससे महिला समाज को गौरवान्वित होना चाहिए। दूसरी घटना जर्मनी की है जिसे रिपोर्ताज में स्थान दिया गया है। 1888 ई. में जर्मनी में पहली बार किसी महिला ने अकेले कार चलाकर लंबी दूरी तय की।

बर्थाबेंज ने 5 अगस्त, 1888 ई. को जर्मनी में मोटर कार का आविष्कार करने वाले कार्लबेंज की पत्नी बर्थाबेंज ने अपने पति की बनाई कार में लंबी दूरी की यात्रा की। वे मोटरकार में अपने दो बच्चों के साथ बैठी और मेनहीय से 180 किलोमीटर फोरज्हीम तक कार चलाई। उस समय वह 39 वर्ष की थी। यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी। ऐसा करने वाली न सिर्फ वह दुनिया की पहली महिला थी, बल्कि पहली शख्स भी थी। उनसे पूर्व किसी ने भी इतनी लंबी दूरी तक कार नहीं चलाई थी। नारी सशक्तिकरण का यह दूसरा उदाहरण है।

बर्थाबेंज के जीवन की इस अद्भुत घटना से जुड़ी एक रोचक घटना और है जो उनकी अदम्य साहस की परिचायिका सिद्ध हुई है। कार चलाकर जाने से पूर्व न तो उन्होंने अपने पति को बताया और न ही प्रशासन से अनुमति ली। यात्रा के दौरान उन्होंने अपने गजब–अदभुत तकनीकी ज्ञान का परिचय दिया। गाड़ी में कोई फ्यूज टैंक नहीं था और कार्बरेटर में मात्र 4.5 लीटर पेट्रोल था। ऐसे में उन्होंने रास्ते में एक केमिस्ट की दुकान से पेट्रोलियम का सॉल्वेट लिग्रोइन खरीदा और इसे ईंधन की जगह पर प्रयोग किया। जब ईंधन के पाईप में रुकावट आई तो उन्होंने अपने हैट से पिन निकालकर पाईप का ब्लॉकेज साफ किया। एक लुहार से कार की चेन ठीक कराई और जब लकड़ी के ब्रेक खराब होने लगे तो जूता गाँठने वाले के पास जाकर उन पर चमड़ा चढ़वाया। कार के दो गियर काम नहीं कर रहे थे, ऐसे में चढ़ाई के दौरान दोनों बच्चों ने कार को धक्का लगाया था। सुबह से निकलकर शाम को वह अपनी मंजिल पर पहुँच गई।

– 8/29 ए, शिवपुरी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश–202001

❑❑❑

'असाध्य वीणा' में 'महाशून्य की अनुगूँज'

डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का समाज और साहित्य से गहरा सरोकार रहा है। व्यक्ति और समाज के मिलन की निर्मिती एक श्रेष्ठ समाज अथवा रचना का निर्माण है। श्रेष्ठ और चेतनशील समाज में ही किसी व्यक्ति अथवा रचनाकार का अस्तित्व निर्भर होता है। 'अज्ञेय' चेनतशील समाज के श्रेष्ठ साहित्यकारों में एक हैं, जिन्होंने समाज से 'व्यक्ति' और व्यक्ति से 'समाज' के संबंध को स्वतंत्र रूप से देखा और व्यक्ति को स्वतंत्रता के उपभोग के लिए समाज का वरण करने को कहा। चिंतनशील अज्ञेय में बौद्धिक योग्यता के साथ–साथ अनुभूतिजन्य संवेदना भरपूर है।

अज्ञेय की अनुभूति का क्षेत्र समाज की अतल गहराई तक विस्तृत है। वे समाज और व्यक्ति को देखना–समझना चाहते हैं। संभवतः यही कारण रहा है कि उनके जीवन का अधिकांश समय आत्मान्वेषी पथिक बनकर ही बीता। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के बाद यदि यायावरी में किसी हिंदी साहित्यकार का नाम समाज में लिया जाता है, तो वह हैं– अज्ञेय जी। अज्ञेय ऐसे रचनाकार हैं जो सर्वोदय लक्ष्य को केंद्र में रख कर सर्वमान्य बिंदु की खोज में चल पड़े हैं। यह सर्वस्वीकार है कि अज्ञेय अपने साहित्य के माध्यम से लोगों को आकृष्ट करने में कामयाब रहे हैं। उन्होंने अतीत और वर्तमान परिवेश का जितना गहन चिंतन किया है वह उनके जुझारूपन, समर्पण और सत्य की खोज में निमग्न किंतु तटस्थ व्यक्तित्व का ही परिणाम है। अज्ञेय का गंभीर चिंतन उनके साहित्य में मौजूद है– 'भग्नदूत' (1933), 'चिंता' (1942), इत्यलम् (1946), 'हरी घास पर क्षण भर' (1949), 'बावरा अहेरी' (1954), 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' (1957), 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959), 'आँगन के पार द्वार' (1961), 'सुनहले शैवाल' (छायाचित्र तथा कविता) (1965), 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967), 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' (1969), 'सागर मुद्रा' (1970), 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1974), 'महावृक्ष के नीचे' (1977), 'नदी की बाँक पर छाया' (1982), 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' (1986) एवं 'निधनोपरांत प्रकाशित मरुस्थल' (1995) जैसे सोलह काव्य संग्रहों और चार सप्तक– प्रथम तार सप्तक (1943), दूसरा तार सप्तक (1951), तीसरा तार सप्तक (1956), चौथा तार सप्तक (1979) में संगृहित कविताओं में काल सापेक्ष निरंतर प्रखर होता गया है। अज्ञेय द्वारा सृजित साहित्य पाठकों से समकालीन युगबोध और इसके आगे अंतर्संवेदना में झाँकने, महसूस करने और उसकी तह तक जाने की अपेक्षा रखता है।

हमें याद है, वैश्विक पटल पर 1917 की 'रूस क्रांति' जिससे रूसी जार शासन का अंत हुआ, द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) जिसे हिटलर की अति महत्वाकांक्षा का परिणाम कहा जाता है। इसने भारत और भारत के लोगों को भी प्रभावित किया था। इस दौर में भारत को स्वाधीन

करने और ब्रिटिश हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए आम–अवाम एकजुट हो गया था। अज्ञेय इसी समयावधि में पल्लवित हुए रचनाकार हैं। अज्ञेय के किशोरवय मन को चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, सुखदेव इत्यादि के क्रांतिकारी विचारों ने काफी हद तक प्रभावित किया था। वे जीवन और रचनाक्षेत्र में प्रयोगशील तो थे ही, लेकिन किसी भी विषय को एक नए दृष्टिकोण से देखने की उनकी कला अद्‌भुत थी। देश के लेखकों, बुद्‌धिजीवियों, क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश उपनिवेश के विरुद्‌ध लोगों से शांति और क्रांति दोनों का आह्‌वान किया गया था। गांधीजी शांति के अक्षत दूत बन कर नंगे पाँव पदयात्रा पर निकल पड़े थे, तो वहीं सुभाषचंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, मंगल पांडेय जैसे अनेक क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश हुकुमत के खिलाफ क्रांति का बिगुल फूंका, अपनी कुर्बानियाँ दीं। अज्ञेय जी ने क्रांतिकारी पथ अख्तियार किया था। 'वे लाहौर में क्रांतिकारियों के संपर्क में आए और 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट आर्मी' के सदस्य हो गए। 'दिल्ली कॉन्सपिरेसी केस' के अभियुक्त हुए और आर्म्स ऐक्ट के तहत 'अमृतसर कांड' में शामिल होने के मुख्य गुनहगार भी थे। (अज्ञेय चिंतन एवं सृजन, पृ. 18) वे 15 नवंबर, 1930 को ब्रिटिश हुकुमत द्‌वारा गिरफ्तार कर लिए गए। 1930–1936 तक वे विभिन्न जेलों (लाहौर, अमृतसर, दिल्ली की जेलों) में सजा काटते रहे साथ ही रचनाकर्म में तल्लीन रहे। जब भी मौका मिला पांडुलिपियाँ जेल से बाहर भेजीं। जेल में लिखी अधिकांश रचनाओं में लेखक के नाम का उल्लेख नहीं है। यह तो श्री जैनेंद्र कुमार और मुंशी प्रेमचंद के बीच हुए संवाद से उनका नाम 'अज्ञेय' हो गया। अज्ञेय ने भी रहस्य से उपजे अपने नाम को यथावत स्वीकार कर लिया, तथा औरों ने भी।

वस्तुस्थिति यह कि वह जेल में बंद थे, लेकिन स्वतंत्र। स्वतंत्र इसलिए कि वह अपना लेखन–कार्य जारी रखे हुए थे। इसी स्वतंत्रता की उपज कविता– 'आतंक' (दिसंबर, 1930) की पंक्तियाँ–

'मैं बंदी हूँ, किंतु मेरे बंधनों की झंकार मानों कह रही है, तू स्वतंत्र है, यह बंधन तेरी स्वतंत्रता की साक्षी है और कविता (आशा) (दिसंबर, 1930), की पंक्तियाँ–

मैं बंदी हूँ, एक मात्र आशा मृत्यु की आशा है। इन दोनों कविताओं की पंक्तियाँ उनके जिस मनोभाव की ओर इशारा करती हैं, वह है– स्वतंत्र होना। स्वतंत्रता किसी के लिए भी श्वास–उच्छवास का सवाल है। किसी भी व्यक्ति के लिए स्वतंत्र होना क्या मायने रखता है? उसकी तड़प अज्ञेय के साहित्य में दर्शित मनोभावों से समझी जा सकती है।

अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं में अभिव्यक्त विचार हम सबके जेहन में गुम्फित सैकड़ों प्रश्न के उत्तर हैं। उनका प्रथम काव्य संग्रह 'भग्नदूत' सन् 1933 में प्रकाशित हुआ, जिसमें चौहत्तर कविताएँ संगृहित हैं। इस कविता संग्रह में विषयवैविध्य तो है ही, लेकिन इसके साथ ही क्रांति, प्रणय, अध्यात्म जैसे विषय भी मिल जाएँगे। दिल्ली जेल में लिखी गईं कविता– 'पराजय गान' (16 फरवरी, 1932), 'क्रांति पथ' (18 फरवरी, 1932), 'प्रस्थान' (23 अप्रैल, 1932), 'असाफल्य' (12 दिसंबर, 1931), 'प्रेम–रहस्य' (दिसंबर, 1930) तथा 'रहस्य' (फरवरी, 1932) भी इसी संग्रह में संगृहित हैं। इन रचनाओं में अज्ञेय के आत्मान्वेषण का बीज मौजूद है, बीजाकुरण, पल्लवन तथा पुष्पन उनके बाद के साहित्य में हमें देखने को मिल जाता है।

कविता 'प्रेम–रहस्य' की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

तुम्हारे हृदय में अंधकार क्यों है?

तुम दीपक के पुजारी हो, दीपशिखा के लिए तुम्हारे हृदय में आदर का स्थान नहीं है, इसीलिए वहाँ अंधकार है। (भग्नदूत, पृ. 106)

इन पंक्तियों में व्यक्त 'तथ्य से सत्य' के फासले का आकलन अज्ञेय ने अपने प्रारंभिक काल में ही कर लिया था। प्रणयानुभूति, प्रकृति, ईश्वर का यह आलंबन रूप उनके साहित्य में आध्यात्मिक–बोध का प्रस्थान बिंदु है। लिखते तो वे पहले से थे, लगभग 1927 से। लेकिन, आगे

अज्ञेय ने एक प्रौढ़ लेखक के रूप में एक लंबा समय अंतराल साहित्य को दिया है। अज्ञेय ने अपने साहित्य में व्यक्ति के अंतर्वाह्य रूप को इतिहास और समकालीन युगबोध के बारीक तंतुओं के साथ जोड़कर एक आध्यात्मिक पर्दे पर अभिव्यक्त किया है।

'भग्नदूत' में जो प्रणयानुभूति थी, वह 'चिंता' में आकर प्रेम का रूप धारण कर लेती है। यही वह समय था जब अज्ञेय 1943 में ब्रिटिश सेना में कैप्टन पद पर रहते हुए 'कोहिता फ्रंट' पर सेवा दे रहे थे, जहाँ वे 1946 तक रहे। 'इत्यलम्' की कविताएँ इसी समय की हैं। इत्यलम् के चार खंड–बंदी स्वप्त, हिय हारिल, वंचना के दुर्ग, तथा मिट्टी की ईहा हैं। जिनमें विद्रोह, राष्ट्रभावना, तथा स्वाधीनता की आकांक्षा केंद्रीभूत है।

'हरी घास पर क्षणभर' प्रारंभिक रचनाओं से प्रौढ़ है। 'बावरा अहेरी' अंतर्मन के तमस को हटाने तथा प्रेम और अनुराग पर केंद्रित है। 'इंद्रधनु को रौंदते हुए' अज्ञेय के चिंतन की प्रौढ़ता को भलीभाँति बताती है। इसमें सृष्टि की श्रेष्ठतम अनुकृति 'मानव' है, जो 'मम' एवं 'ममेतर' के बीच की दूरी को पाटता है या कहें जो 'मम' एवं 'ममेतर' के बीच सामंजस्य स्थापित कर लेता है– वही 'मानव' है। लेखक यहाँ 'सत्य' बताने के लिए तथ्यों का प्रतीक रूप में सहारा लेता है– वही 'मानव' है। यथा–आकाश, पर्वत, सागर, सरिता, इत्यादि। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' के चार खंड हैं– रोपयित्री, रूप–केकी, एक चीड़ का खाका, तथा द्वारहीन द्वार। 'एक चीड़ का खाका' की कुछ कविताओं में मुक्तकों का अद्भुत प्रयोग अज्ञेय ने किया है। इसकी कविता– 'जापानी चित्र', 'अरी हवा, अब', 'झिलमिल', 'डरौने पर कौआ' 'हाईकू' से प्रभावित हैं। जापान में ऐसे मुक्तक जिसमें पहली पंक्ति में 5, दूसरी में 7 तथा तीसरी में 9 वर्ण होते हैं उन्हें 'हाईकू' कहा जाता है। ऐसे मुक्तकों के लिए जापानी कवि मात्सुओ बासो प्रसिद्ध हैं। हमारे यहाँ कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी ऐसे मुक्तकों का प्रयोग किया है।

अज्ञेय की कविता 'अरी हवा, अब' की पंक्तियाँ देखिए, जो 'हाईकू' से प्रभावित हैं–

झीना चाँद/डाल पर कोपल/अरी हवा,
अब तू वसंत को/साथ झुलाती कब लाएगी?
(अरि ओ करुणा प्रभामय, पृ. 101)

'आँगन के पार द्वार' तीन खंड में है– अंतः सलिला, चंद्रक्रांत सिला, तथा असाध्य वीणा। 'असाध्य वीणा' इस संग्रह की श्रेष्ठ कविता मानी जाती है। यह सबसे ज्यादा पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने वाली कविता भी है।

'असाध्य वीणा' रचना काव्य संग्रह 'आँगन के पार द्वार' की अंतिम काव्य–रचना है। यह चौदह पृष्ठों और लगभग 316 पंक्तियों की अज्ञेय द्वारा रचित सबसे लंबी काव्य–सर्जना है। यह कविता चीन व जापान में प्रचलित लोककथा को आधार मानकर भारतीय रूप में लिखी गई है या कहें अज्ञेय ने भारतीय प्राचीन परंपरा एवं संस्कृति के अनुरूप इस कथा को जीवंत बना दिया है। 'असाध्य वीणा' को जिस जापानी–चीनी लोककथा पर आधारित कहा जाता है, वह है– ओकाकुरा काकुजू की पुस्तक 'द बुक ऑफ टी' में संगृहित कहानी 'टेमिंग ऑफ द हार्प' यह पुस्तक जी. पी. पुतनाम्स सन्स, लंदन और न्यूयार्क से 1906 में प्रकाशित हुई थी। जिसमें 'कीरी वृक्ष' को जंगल का राजा कहा गया है। इस कीरी वृक्ष से बनी वीणा को कोई नहीं साध पाता। अंत में बीनकारों का राजकुमार पीवोह (Perwoh) उस वीणा को साध लेता है। वीणा में स्वर–लहरियाँ फूट पड़ती हैं, वीणा और राजकुमार पीवोह वीणा का स्वर– लहरियों में एकाकार हो जाते हैं और कुछ क्षण तक एक–दूसरे के लिए अभेद।

अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' में यही एकाकार होना इस रूप में वर्णित है–

सहसा वीणा झनझना उठी–/संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला–सी झलक गई–/रोमांच एक बिजली–सा सब के तन में दौड़ गया।/अवतरित हुआ संगीत/स्वयम्भू/जिस में सोता है अखंड/ब्रह्मा का मौन/अशेष प्रभामय/डूब गए सब एक साथ।/सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।
(आँगन के पार द्वार, पृ. 84)

'टेमिंग ऑफ द हार्प' का कथाक्रम इस तरह है– कीरी वृक्ष का परिचय, कीरी वृक्ष से वीणा का निर्माण, वीणा को साधकों द्वारा न साध पाना, बीनकारों के राजा पीवोह का आगमन, पीवोह द्वारा वीणा को साधने का प्रयास और कीरी वृक्ष की स्मृतियों को जागृत करना, वीणा का झनझना उठना, वीणा से विभिन्न स्वर–लहरियाँ सुनाई देना, राजा और पीवोह के बीच प्रश्नोत्तरी, अंत में कथा का रहस्य उद्घाटन।

अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' का कथाक्रम– प्रियंवद का आगमन, राजा द्वारा उसका स्वागत तथा बुलाने का आशय बताना, गणों द्वारा असाध्य वीणा को प्रियंवद के समक्ष रखना, वीणा का वर्णन–कि प्राचीर किरीट तरु से वज्रकीर्ति द्वारा बनाई गई है, किरीट तरु का परिचय, वीणा को अब तक किसी के द्वारा न साध पाने का वर्णन, सिद्ध स्वर–साधक की अपेक्षा, साधक द्वारा वीणा को साधने का प्रयास, वीणा से मनोहारी स्वर–लहरियों की अनुगूँज सुनाई देना, उपस्थित जनों के समक्ष रानी द्वारा पुष्पहार से प्रियंवद का स्वागत, प्रियंवद द्वारा श्रेय न लेना और झुक कर सभाजनों का अभिवादन, वन गमन, तथा सभा विसर्जन।

दोनों कथा एक जैसी लगती हैं, कथा–विन्यास आगे–पीछे अवश्य है, यथा–'टेमिंग ऑफ द हार्प' में कीरी वृक्ष का परिचय पहले है और पीवोह का आगमन बाद में। जबकि 'असाध्य वीणा' में प्रियंवद का आगमन पहले है और किरीट तरु का परिचय बाद में। इसी तरह 'टेमिंग ऑफ द हार्प' में कथा के अंत में रहस्य का उद्घाटन किया जाता है, जबकि 'असाध्य वीणा'– में अंत में सभा विसर्जन और कवि का मौन हो जाना है। राजा दोनों कथा में है– 'असाध्य वीणा' में 'राजा' और 'टेमिंग ऑफ द हार्प' में Emperor of China.

अज्ञेय सन् 1958 में जापान से लौटे थे, और जब 1960 में यूरोप प्रवास (कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और शास्त्र के अध्यापक के रूप में, बर्कले, अमरीका) में थे, तब उनका काव्य संग्रह 'आँगन के पार द्वार' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् 1961 में प्रकाशित हुआ था। प्रकाशक–मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकंड रोड, वाराणसी हैं। इसी काव्य संग्रह को सन् 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। साम्यता की ओर सोचने का एक और कारण भी है कि कविता संग्रह 'चिंता' की कुछ कविताएँ भावानुवाद हैं। यह अज्ञेय ने स्वयं स्वीकारा है– 'विश्वप्रिया की प्रियतमे, निकोलस रोयरिक की रचना का, मैं तुम्हारी समाधि पर प्रज्वलित एक मात्र द्वीप हूँ, डी. एच. लारेंस की रचना का, तथा एकायन की कुछ पंक्तियाँ ब्राउनिंग की रचनाओं का भावानुवाद है।'(चिंता, विज्ञप्ति, पृ. 147)

खैर! 'असाध्य वीणा' में अज्ञेय ने व्यक्ति के अंदर स्वतंत्र होने के दर्द को उपलब्धि के रूप में रूपायित किया है। इसमें अनुभूति की सूक्ष्मता का आग्रह लेखक को 'सत्य की खोज' की प्रक्रिया से गुजारता। यह व्यक्ति के अंदर अव्यक्त को व्यक्त रूप में अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया कही जा सकती है। इस प्रक्रिया में अज्ञेय ने प्रियंवद के माध्यम से व्यक्ति की साधना, समर्पण, और आत्मावलोकन द्वारा व्यक्ति के अहम को नष्ट करते हुए 'सत्य' को प्राप्त किया है। अज्ञेय यह मानते हैं कि– 'सत्य' सहसा मूर्त नहीं होते, मूर्ति का उद्घाटन ही सहसा होता है और हम उद्घाटन के क्षण को निर्माण का क्षण मान लेते हैं, यद्यपि वह न जाने कितने लंबे? संचय–उपचय, क्षण–निरूपण का परिणाम होता है।' (आत्मनेपद, पृ. 137–38) अहम के नष्ट होते ही वह सत्यान्वेषी (व्यक्ति/लेखक/साधक, इत्यादि) शक्ति और दक्षता प्राप्त कर लेता है, 'मम' और 'ममेतर' का भेद मिट जाता है, जिसे अज्ञेय 'महाशून्य' कहते हैं।

जो स्थूल नहीं है, अज्ञात, अनंत, अपार है वह 'महाशून्य' है। यह बौद्ध धर्म के महायान शाखा का सिद्धांत है जिसमें संसार को 'शून्य' और संसार के सभी पदार्थों को सत्ताहीन माना जाता है। कबीर पंथी भी 'निरंजन' को पाने के लिए 'शून्य' पर ध्यान लगाने को कहते हैं।

रमई पंडित के 'शून्य पुराण' में धर्म को शून्य रूप मान निंरजन का ध्यान लगाया गया है–

शून्यरूपं निराकारं सहस्रविघ्नविनाशानम।/ सर्वपरः परदेवः तस्मात्वं वरदो भव।

(हजारी प्रसाद ग्रंथावली–4, पृ. 493–494)

'असाध्य वीणा' में अज्ञेय का चिंतन भौतिकता से इतर इसी 'महाशून्य की ओर निरंतर अग्रसर है। बहिर्मुखी से अंतर्मुखी होने की तैयारी और प्रक्रिया अज्ञेय असाध्य वीणा में संवाद के माध्यम से इस प्रकार शुरू करते हैं–

आ गए प्रियंवद! केशकम्बली! गुफा–गेह!/ राजा ने आसन दिया। कहा : /कृतकृत्य हुआ मैं तात! पधारे आप।/भरोसा है अब मुझ को/साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी।

(आँगन के पार द्वार, पृ. 75)

यह 'साध' बेचैनी से मुक्ति और अपने को 'परमसत्ता' से जोड़ने की अभिलाषा भी कही जा सकती है। यह अभिलाषा व्यक्ति के जीवन और कर्मक्षेत्र दोनों में दिखाई देती है। यह अज्ञेय में रही होगी। उनके जीवन में उनका कोई एक निश्चित पड़ाव नहीं रहा, 'सत्य' की खोज में वे यायावर रहे। इसी तरह साहित्य में विधाओं की नावों पर तैरते (सवार) रहे–कविता, कहानी, उपन्यास, समीक्षा, अनुवाद, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण इत्यादि।

इस सब के बीच भी अज्ञेय ने असाध्य वीणा में मानव को केंद्र में रख गहन अध्यात्म–बोध रचा, यह बड़ी बात है। हम यह माने कि यह अध्यात्म–बोध मानव अस्तित्व को बताने और गरिमा प्रदान करने के उद्देश्य से ही रचा गया है। इसके लिए लेखक वज्रकीर्ति द्वारा मंत्रपूत 'किरीट तरु' से बनी वीणा का वर्णन करते हैं। वस्तुतः भारतीय आदि ऋषि साधना–स्थली और ज्ञान परंपरा का विकास गिरी प्रांतर हिमालय ही है। जिसे अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' में 'किरीट तरु' के रूप में वर्णन इस प्रकार किया है–

यह वीणा उत्तराखंड के गिर–प्रांतर से–/घन वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी–/बहुत समय पहले आई थी।/पूरा इतिहास तो न जान सके हम :/किंतु सुना है/वज्रकीर्ति ने मंत्रपूत जिस/अति प्राचीन किरीट तरु से इसे गढ़ा था।/उनके कानों में हिम–शिखर रहस्य कहा करते थे अपने। (वहीं, पृ. 75)

अज्ञेय ने भारती वाङ्मय, वेद, वेदांतों, उपनिषदों के 'अहं ब्रह्मास्मि' से 'असाध्य वीणा' को बड़े घनिष्ठता से जोड़ा है। जिसमें हमारे आदि पुरुष सृष्टि के निर्माण में किसी परमसत्ता के विद्यमान होने की बात कहते हैं। कालांतर में यही परमसत्ता अद्वैत रूप में प्रत्येक के अंदर ही समाहित है, ऐसा माना जाता है, और 'अहं ब्रह्मामि' अर्थात् 'मै। ब्रह्म हूँ कहा जाता है। प्रत्येक जीव ब्रह्म है, ब्रह्म का अंश है। अज्ञेय स्वयं में भी (इसी परिप्रेक्ष्य में पाठक, श्रोता, साधक में भी) 'ब्रह्म' की मौजूदगी स्वीकारते हैं। जैसा कि अज्ञेय 'इत्यलम्' में लिखते हैं–

मैं भी एक प्रवाह हूँ/लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है/ मैं उस असीम शांति से संबंध जोड़ना चाहता हूँ/अभिभूत होना चाहता हूँ/जो मेरे भीतर है।

(इत्यलम्, हिय हारिल, पृ. 93)

अपने आप को वाह्य से अंदर की ओर जोड़ने की प्रक्रिया अज्ञेय ने 'असाध्य वीणा' के माध्यम से ही सही अपनी अंत–प्रज्ञा से अपने आप को जोड़ा है। जिसका संबंध जीवन के निर्विकल्प उद्देश्य से है–

और–सुना है–जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल–लोक,/उस की ग्रंथ–प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।/उसी किरीट–तरु से वज्रकीर्ति ने/सारा जीवन इसे गढ़ा :/हठ–साधना यही थी उस साधक की– /वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन लीला।

(वही, पृ. 76)

वस्तुतः अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' उस अंतः–प्रज्ञा से प्रेरित हुई जान पड़ती है, जिसमें साधक अपने में ज्ञान और आत्म–चेतना जाग्रत और स्पंदित कर लेता है। कबीर के 'हरि', 'राम', 'निरंजन', तुलसी के 'राम', प्रसाद के 'मनु', निराला के 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा' के 'राम', मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' का 'वह', इत्यादि इसी अंतःप्रज्ञा से

उपजे विशेषण हैं। अज्ञेय इसे 'असाध्य वीणा' में इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं–

सभा चकित थी/प्रियंवद क्या सोता है... /पर उस स्पंदित सन्नाटे में/मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा–/नहीं, स्वयं अपने को सोध रहा था।/सघन निविड़ में वह अपने को सौंप रहा था उसी किरीट–तरू को। (वही, पृ. 77–78)

वीणा के समक्ष 'साधक' और साधक के समक्ष 'वीणा', 'तथ्य और सत्य' एक–दूसरे के आमने–सामने, स्वयं के अहम को त्यागने की मौन–यंत्रणा। यहाँ साधक के सामने बैठी सभा की चेतना, सामान्य वीणा से तिरोहित हो किसी गूढ़ रहस्य में तब्दील हो जाती है। मौन होने के लिए मतिभ्रम या चेतना शून्यता चिंतन किरीट तरु का जिसका इतिहास वर्णन अभी–अभी राजा ने किया, दूसरी किरीट तरु से निर्मित और अभिमंत्रित असाध्य वीणा, तथा तीसरा साधक का मौन। 'मौन', 'मुक्ति' हो जाने को कह रहा है। यही बात मुक्तिबोध कहते हैं– "अपनी मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते।' परंतु दोनों के लिए व्यक्ति की मुक्ति में अर्थ–भेद है। मुक्तिबोध के लिए 'सामूहिक मुक्ति' है और अज्ञेय के लिए 'समूह में मुक्ति' परंतु इसका कोई विरोध समूह की मुक्ति से नहीं है और दरअसल, मुक्त समूह ही व्यक्ति को मुक्त कर सकता है। (कवि परंपरा तुलसी से त्रिलोचन, पृ. 143)

इसी निर्वैयक्तिकता को प्रसाद ने 'कामायनी' में इस प्रकार व्यक्त किया है–

सुना यह मनु ने मधुर गुंजार/मधुकारी का–सा जब सानन्द।/किए मुख नीचा कमल समान/प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद।।/एक झिटका–सा लगा सहर्ष,/निखरने लगे लुटे से कौन,/गा रहा यह सुंदर संगीत, कुतूहल रह न सका फिर मौन।।

(कामायनी, पृ. 28)

'असाध्य वीणा' में संगीत स्फुरण की अनुभूति सभाजन करते हैं। हरदयाल लिखते हैं– "अनुभव की इस संपूर्णता और अनिर्वचनीयता की स्थिति बहुत समय से विद्यमान रही है। असाध्य वीणा से निकलने वाला संगीत तो एक ही है, किंतु उसको अलग–अलग व्यक्ति अलग–अलग रूप में ग्रहण करते हैं। यह व्यक्ति की स्थिति और प्रवृत्ति का प्रतिफल है।"

(अज्ञेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 54)

अज्ञेय इस व्यक्ति आत्मशोधन की सर्वकालिक प्रवृत्ति जागृत करने का श्रेय खुद नहीं लेते, न वीणा को देते हैं, अपितु वीणा को माध्यम स्वीकारते हैं–

श्रेय नहीं कुछ मेरा :/मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में/वीणा के माध्यम से अपने को मैंने/सब कुछ को सौंप दिया था– /सुना आपने जो वह मेरा नहीं/न वीणा का था :/वह तो सब कुछ ही तथता थी महाशून्य।

(आँगन के पार द्वार, पृ. 87)

अस्तु, 'असाध्य वीणा' की पूरी कथा में साधक 'महाशून्य' तक पहुँचने के लिए वीणा की स्वर–लहरियों में तल्लीन हो जाता है। वह भौतिक, सामाजिक, नैतिक–अनैतिक, वैयक्तिक दायरे से दूर अपने अंदर झाँकता है, अपने अंदर की संवेदना को जाग्रत और झंकृत करता है, द्वैत से अद्वैत की ओर गमन करता है और जब अंतः संवेदना अंतर्वाह्य से अभेद हो जाती है तो वह आत्मविभोर हो उठता है। आचार्य शुक्ल इसे 'साधारणीकरण' और टी. एस. इलियट 'निर्वैयक्तिकता' कहते हैं। वस्तुतः साधक में कोई नैराश्यभाव नहीं, यह उसका बहसीपन भी नहीं, और न ही अचेतनता। साधक चेतन और तटस्थ, तल्लीन है, असाध्य वीणा की साधना उसकी उपलब्धि है, यही उसका लक्ष्य है– 'महाशून्य' की प्राप्ति। 'महाशून्य' अभिभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय, शब्दहीन है, जिसकी अनुगूँज सबको सुनाई देती है, इसलिए यह संसार 'महाशून्य का शिविर' है।

– विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

❑❑❑

गढ़वाल की अनूठी परंपरा–बेड्वार्त : स्वरूप और महत्व

डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल

भारत में गढ़वाल क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के कारण देश–दुनिया में यहाँ की अलग पहचान है। गढ़वाल के लोकसाहित्य और लोकसंगीत में यहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि का प्रतिबिंबन है। उत्तराखंड के एक भाग गढ़वाल संस्कृति की एक अनोखी अविरल धारा प्रवाहमान है। धर्म, अध्यात्म, आस्था और श्रद्धा की जड़ें यहाँ अत्यंत गहरी हैं।

पुराणों में गढ़वाल को केदारखंड के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। हिमालय में स्थित यह क्षेत्र उत्तराखंड का एक भाग है, जबकि दूसरा भाग कुमाऊँ। भारतीय भूगोल विद्या के विद्वानों– ऋषि मुनियों ने संपूर्ण हिमालय क्षेत्र (कश्मीर से नेपाल तक) को पाँच खंडों में इस प्रकार विभाजित किया था– नेपाल, कूर्मांचल (कुमाऊँ), केदारखंड (गढ़वाल), जालंधर(पंजाब का पर्वतीय भाग अर्थात् हिमाचल प्रदेश) और कश्मीर।[1]

हिंदुओं के चार प्रमुख तीर्थों–गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, बदरीनाथ एवं केदारनाथ के यहाँ स्थित होने के कारण गढ़वाल को धार्मिक–आध्यात्मिक क्षेत्र में संपूर्ण विश्व में ख्याति प्राप्त हुई है। पवित्र गंगा नदी का उद्गम भी यहीं है। इसी भूमि में श्रीकृष्ण और पांडवों के श्रीचरण पड़े हैं। यह धरा शंकर भगवान की क्रीड़ास्थली एवं पार्वती का मातृगृह (मायका) रही है। महाकवि कालिदास का जन्म भी यहाँ हुआ बताया जाता है। अनेक ऋषि–मुनियों ने यहाँ कठिन तप कर ईश्वर और ज्ञान की प्राप्ति की।

गढ़वाल शब्द की व्युत्पत्ति 'गढ़' के कारण हुई मानी जाती है। 'गढ़' अर्थात् छोटे–छोटे राज्य, जो बहुत समय पहले यहाँ अनेक संख्या में थे। पंवार वंश के राजा अजयपाल को इनके एकीकरण का श्रेय जाता है।

'गढ़वाल' शब्द योगरूढ़ि है। 'गढ़' में 'वाल' प्रत्यय जुड़ने के कारण यह शब्द योगिक हुआ है। 'गढ़' शब्द उन पहाड़ी किलों का बोधक है, जो यहाँ अधिकता में पाए जाते थे। प्राचीन समय में इन पर छोटे–छोटे ठाकुरी राजाओं, सरदारों और थोकदारों का अधिकार था। जब पंवार वंशज महाराज अजयपाल ने इन ठाकुरी राजाओं और सरदारों पर विजय प्राप्त कर उनके किलों को एक साथ मिलाकर एक सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया, तब से इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा। गढ़वाल का नामांकन सन् 1500 से 1515 ई. के बीच होना पाया जाता है। तभी से यह क्षेत्र गढ़वाल के नाम से विख्यात हुआ।[2]

प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' के अनुसार 'गढ़वाल' शब्द 'गाड' से निर्मित हुआ है। उनके अनुसार गढ़वाल में छोटी नदियों को 'गाड' कहा जाता है। अतः 'गाडवाल' शब्द से 'गढ़वाल' शब्द की व्युत्पत्ति हुई।[3]

वैसे विद्वानों में 'गढ़वाल' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर यद्यपि मतभेद हों, किंतु इतना तो

निश्चित है कि केदारखंड का नाम 'गढ़वाल' 15वीं शताब्दी के लगभग ही पड़ा। गढ़वाल नाम इस देश का संवत् 1557 और संवत् 1572 विक्रमी के बीच अर्थात् सन् 1500 से 1515 ई. के बीच रखा जाना पाया जाता है।[4] मानशाह (1591 से 1611 ई.) के सभा कवि भरत ने 'मानोदय काव्य' में 'गढ़देश' नामक शब्द का प्रयोग किया है। अभिलेखों में हाट गाँव से प्राप्त सन् 1640 ई. के फतेहशाह के ताम्रपत्र में 'गढ़वाल संतान' शब्द मिलता है।[5]

महाकवि भूषण, जिनका काल 1613 से 1713 ई. के बीच माना जाता है, फतेहशाह की प्रशंसा में लिखी एक कविता में 'गढ़वाल राज्य' का उल्लेख किया है।[6]

आर्यों के साथ ही गढ़वाल में समय–समय पर अनेक जातियों का आगमन हुआ है। इसका प्रभाव यहाँ की भाषा–संस्कृति पर पड़ना स्वाभाविक था। अर्थात् गढ़वाल की भाषा और संस्कृति के वैशिष्ट्य का एक बड़ा कारण यहाँ विभिन्न जातियों का आगमन होना है।

गढ़वाल प्राचीन काल में अनेक जातियों का कर्मक्षेत्र रहा है। कोल, किरात, पुलिंद, तंगण तथा खस यहाँ की प्रमुख जातियाँ रही हैं। खस मंडल से पहले केदार मंडल किरात मंडल था।[7] किरात से पहले भी यहाँ कोल जाति मानी जाती है। किरात जाति ने पूर्व की ओर लघु हिमालय के ढालों पर पशुचारण करते हुए इस हिमालय प्रदेश में प्रवेश किया था। बाद में यह कोल जाति को बीहड़ क्षेत्रों की ओर धकेलकर असम से नेपाल, कुमाऊँ, गढ़वाल, कांगड़ा होते हुए लाहौल और लद्दाख तक फैल गई।[8]

उत्तराखंड में बसने वाली प्राचीन जातियों में किरात जाति उल्लेखनीय है। इस जाति ने हिमालय के पूर्व अंचल (किरीत) से पश्चिमी अंचल की ओर बढ़कर नेपाल, कुमाऊँ, गढ़वाल, कांगड़ा तथा कश्मीर तक को अपना निवास स्थल बना लिया था।[9]

गढ़वाल में बौद्ध धर्म का भी पर्याप्त रूप से अस्तित्व रहा है। बताते हैं कि शंकराचार्य ने गढ़वाल में बौद्ध धर्म के प्रभाव को रोकने के लिए ही बदरीनाथ में केदारनाथ धामों की स्थापना की थी। यहाँ बौद्ध धर्म का आगमन छठी और सातवीं शताब्दी के बीच होना पाया जाता है।

अशोक के पश्चात् सन् 40 ई. में बौद्ध धर्म का प्रतापी राजा कनिष्क हुआ, जिसका राज्य पश्चिमोत्तर देश में था। इसी के समय में कश्मीर से बौद्ध धर्म चीन में गया था। चीन से 372 ई. में कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। वहीं से 552 ई. में जापान में बौद्ध धर्म का डंका बजा। नेपाल राज्य ईसा की छठी शताब्दी में बौद्ध हुआ और 632 ई. में तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार आरंभ हुआ। उसी छठी और सातवीं शताब्दी के दर्मियान जबकि बौद्ध धर्म प्रचारक बौद्ध संन्यासी कश्मीर से नेपाल तक इस हिमालय के सिलसिले में हिमालय के अनेक दर्रों को पार करके तिब्बत में प्रचार करने के लिए आते–जाते रहे, इस देश में भी कुछ धर्म का प्रचार हो चला। खसिया जाति, जो इस देश में प्रभुत्व प्राप्त थी तथा जिसने लगभग कई अपने छोटे–छोटे ठाकुरी राज्य स्थापित कर लिए थे, अधिकतर बौद्ध हो गई।[10] आठवीं–नवीं शताब्दी तक संपूर्ण उत्तराखंड में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हो चुका था।[11]

उत्तर में बौद्ध धर्म के प्रभाव और विस्तार को देख आदि शंकराचार्य ने बदरी और केदारधाम की स्थापना कर सनातन धर्म की मजबूत नींव रखी। यहाँ शंकराचार्य का आगमन आठवीं शताब्दी के लगभग माना गया है। बलदेव उपाध्याय ने केदारनाथ में शंकराचार्य का पदार्पण 820 ई. में माना है। उनके अनुसार–शंकराचार्य 820 ई. के लगभग केदारनाथ पहुँचे। बदरीनाथ मंदिर में उन्होंने विष्णु भगवान की मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया। केदारनाथ में ही उन्होंने देह त्याग किया।[12]

डॉ. कठोच ने एक ग्रंथ के हवाले से बतलाया है कि शंकराचार्य 11 वर्ष की अवस्था में बदरीकाश्रम चले आए थे। पाँच वर्ष उन्होंने बदरीवन में निवास किया। वहाँ 16 भाष्य वेदों पर लिखा और ज्योतिर्मठ की स्थापना की। वे 8 वर्ष चतुर्वेदी तथा 12 वर्ष की अवस्था में सर्वशास्त्र संपन्न हो चुके थे। 32 वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हुआ था।[13]

गढ़वाल की संस्कृति में नाथ पंथ का प्रतिबिंबन बताता है कि किसी समय इस संप्रदाय का यहाँ बड़ा बोलबाला रहा होगा। यहाँ का धर्म–अध्यात्म का मार्ग कुछ सीमा तक नाथ पंथ की ओर मुड़ा है।

गढ़वाल में नाथ संप्रदाय ने गहराई तक प्रभाव छोड़ा है। विशेष रूप से तंत्र–मंत्र में इस पंथ की गहरी छाप है। आज भी गढ़वाल में किसी न किसी रूप में नाथ संप्रदाय के चिह्न अवश्य हैं। किसी अनिष्ट, बीमारी अथवा भूत–पिशाच जैसी आसुरी शक्तियों के प्रभाव में आने पर इस संप्रदाय के तंत्र–मंत्रों का सहारा लिया जाता है। इनमें गोरखनाथ, मच्छेंद्रनाथ, सत्यनाथ के साथ ही राजा अजयपाल की आंणें (कसमें) पड़ती हैं। कई स्थानों पर ऐसे स्थल हैं, जो इस पंथ के गढ़वाल में प्रभाव को प्रमाणित करते हैं– माणिकनाथ का डांडा और नागनाथ पोखरी इन स्थलों में प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त गढ़वाल में कई मंदिरों पर आज भी नाथ पंथियों का अधिकार चला आ रहा है। केदारखंड की इस भूमि पर नाथ पंथ किसी सीमा तक छाया रहा, इसका अनुमान इससे स्पष्ट हो जाता है कि गढ़वाल के मंत्र सहित्य में गुरु गोरखनाथ, तत्स्येंद्रनाथ आदि गुरुओं का पूर्ण प्रवाह है। श्रीनगर में विद्यमान गोरख गुफा यहाँ नाथ पंथ की लोकप्रियता को इंगित करती है, जबकि बदलपुर क्षेत्र के गोरखपुर में प्रतिवर्ष गोरखनाथ की पूजा होती है और गोरखनाथ को गढ़वाल के अन्य देवताओं की तरह नचाया जाता है।[14]

गढ़वाल में नरसिंह/नरसिंग (नृसिंह) के जागर (नृत्यमयी उपासना) में नाथ पंथ का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस देवता का पस्वा (जिसपर देवता अवतरित होता है) का 'गुरु को ओदस' आदि शब्दों का संबोधन यह पुष्ट करता है कि वह नरसिंह नाथपंथी है। नृसिंह की विरुदावली में 'टिमरू को सोट्टा जाग', 'खरुवा की झोली जाग', 'उर्ध्वमुखी नाद जाग', 'बाघंबरी आसण जाग' जैसे शब्द इंगित करते हैं कि यह नृसिंह नाथपंथी योगी ही है।

गढ़वाल जो आज उत्तराखंउ का लगभग आधा भाग है, वह कभी रियासत था। भारत को स्वतंत्रता मिलने के लगभग दो साल बाद इसे उत्तर प्रदेश में मिलाया गया। पंवार वंश के राजाओं ने सदियों तक इस राज्य पर राज किया।

गढ़वाल का धार्मिक–आध्यात्मिक स्वरूप बड़ा विचित्र है। कई मतों–पंथों के सूत्र अथवा जड़ें आपस में उलझी हुई प्रतीत होती हैं। यहाँ शैव, शाक्त, वैष्णव मतावलंबियों के अतिरिक्त नाथ और कबीरपंथी भी हैं। शिव की उपासना गढ़वाल में ताड़केश्वर, तुंगनाथ, लोदेश्वर, किलकिलेश्वर, नीलचामेश्वर, कमलेश्वर आदि रूपों में होती आ रही है। शिव की यहाँ नृत्यमयी उपासना की अनोखी परंपरा है। भैरों और बिनसर शिव के ऐसे रूप हैं, जिन्हें नृत्यमयी उपासना के अंतर्गत नचाया जाता है।

शाक्त मतावलंबी चंद्रबदनी, कुंजापुरी, सुरकंडा, धारी देवी, नंदा आदि की शक्ति के रूप में उपासना करते हैं। वहीं, बदरीनाथ की उपासना विष्णु रूप में होती है, जबकि नागराजा (नागर्जा) को कृष्ण अवतार के रूप में जागर पद्धति से नचाया (पूजा) जाता है।

गढ़वाल में कबीर पंथ भी अस्तित्व में है। इस पंथ को मानने वाले प्रायः हरिजन ही हैं। संभवतः गढ़वाल में अस्पृश्यता (छुआछूत) के कारण हरिजनों में यह मत प्रचलित हुआ हो। आज भी क्षत्रिय और ब्राह्मणों के पूजा स्थलों पर हरिजनों का प्रवेश वर्जित है। यहाँ तक कि हरिजन इन सवर्णों के घरों में भी प्रवेश नहीं कर सकते हैं और उनके विवाह आदि कार्यों में सम्मिलित नहीं हो सकते हैं। यह परंपरा सदियों से यहाँ चली आ रही है।

गढ़वाल में कबीर पंथ के मत अनोखे हैं। यह पंथ वैष्णव, शैव और नाथ पंथ से प्रभावित प्रतीत होता है। इन पंथियों का देवता निरंकार कहलाता है। इनका देवता 'गुसाईं' भी कहलाता है। इस शब्द से इस पर नाथ संप्रदाय का प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर पंथियों की उपासना में बलि प्रथा का भी प्रचलन है। सवर्ण बकरे और हरिजन सुअर की बलि चढ़ाते हैं। निरंकार पूजन में अत्यधिक स्वच्छता का ध्यान दिया जाता है। जिस व्यक्ति पर निरंकार अवतरित होता है, वह वर्षभर स्वयं भोजन बनाता है। पूजन तक केश नहीं कटवाता।[15]

गढ़वाल में वर्ण व्यवस्था के सूत्र झीने हैं। ब्राह्मणों द्वारा पंडिताई का कार्य किए जाने के अलावा व्यापक स्तर तक यह व्यवस्था दिखाई नहीं देती है। यहाँ ब्राह्मण लगभग 30 प्रतिशत, क्षत्रिय 55 प्रतिशत तथा शूद्रों की संख्या लगभग 5 प्रतिशत है। शेष अन्य हैं। डोभाल, नौटियाल, रतूड़ी, उनियाल, बहुगुणा, गोदियाल, भट्ट, सकलानी, जोशी आदि ब्राह्मण और भंडारी, रावत, नेगी, राणा, बर्त्वाल, पुंडीर, कैंतुरा, गुसाईं, पंवार आदि राजपूत जातियाँ हैं। लोहार, ओड, रुड़िया (सरकंडे के पात्र बनाने वाले), औजी (ढोल वादक) तथा बाद्दी (पवाड़े गायक/आशुकवि) अनुसूचित जाति के अंतर्गत आते हैं। इन वर्णों के लोगों के मध्य आपसी संबंध प्रगाढ़ स्नेह वाले होते हैं।

गढ़वाल के लोकसाहित्य की अंग–लोकगाथाएँ, लोकगीत, लोककथाएँ और मुहावरे–लोकोक्तियाँ यहाँ के जनजीवन और अतीत का सुंदर और प्रभावी चित्रांकन करते आ रहे हैं।

लोकगाथाओं को डॉ. गोविंद चातक ने चार वर्गों में विभाजित किया हैं।[16] जागर गाथाएँ धार्मिक गाथाएँ होती हैं, वीर गाथाएँ मध्यकाल की रचनाएँ हैं, इनमें योद्धाओं और भड़ों (वीरों) के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है, प्रणय गाथाओं का विषय स्त्री–पुरुष का प्रेम है तथा चैती गाथाएँ ढोलवादकों द्वारा चैत के महीने में सवर्णों के गृहद्वारों पर अन्न माँगते हुए गाई जाती हैं।

गढ़वाल के लोकगीतों में थड़िया, झुमैलो, चौंफला, बाजूबंद, मांगल और ऋतुओं से संबंधित आदि गीत आते हैं। इनमें गढ़वाल के सुख–दुःख, हास–परिहास, उत्सव–उल्लास की प्रभावी अभिव्यक्ति होती आई है।

गढ़वाली लोकसाहित्य यूँ तो बहुत पहले से ही अनवरत रूप से अनेक लोगों के कंठों के माध्यम से व्यक्त हुआ आ रहा है, किंतु इसकी शृंखलाबद्ध रचना 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में मानी जाती है। इस युग में गढ़वाल के प्रसिद्ध कवि मौलाराम हुए हैं। मौलाराम ने गढ़वाल राजवंश का इतिहास लिखा है। मौलाराम (1740–1833) के समय अनेक घटनाएँ घटीं, जिनके वे प्रत्यक्षदर्शी थे। जब गढ़वाल अंग्रेजों के अधीन हो गया और टिहरी अलग राज्य बन गया, उस समय की घटनाएँ उन्होंने देखी थीं। मई, 1658 में जब दाराशिकोह औरंगजेब के कोपभाजन हुए तो उन्होंने गढ़वाल में शरण ली। उन्हीं के साथ दिल्ली निवासी बनारसी दास के पुत्र शामदास और उनका पौत्र हरदास श्रीनगर आए थे।[17] हरदास का पोता मौलाराम था, जो महान कवि, चित्रकार और काली भक्त हुआ।[18] मौलाराम के बाद गढ़वाली लोकसाहित्य पर्याप्त मात्रा में रचा जाने लगा। विशेष रूप से अंग्रेजी शासन के बाद यहाँ साहित्य सृजन में विशेष क्रांति आई।

गढ़वाल क्षेत्र का संपूर्ण विश्व में अलग ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है। यहाँ श्रीकृष्ण, शिव और पांडवों के आने के प्रमाण उपलब्ध हैं। शंकराचार्य द्वारा बदरीनाथ और केदारनाथ धामों की स्थापना किए जाने के बाद से भारी संख्या में सनातन धर्मावलंबी यहाँ की यात्राएँ करते आ रहे हैं। गंगा–यमुना का मातृगृह तथा हरिद्वार के यहाँ अवस्थित होने से इस क्षेत्र का बड़ा धार्मिक महत्व है। प्राचीन काल में आर्यों के साथ ही अनेक जातियों ने इसे अपना अधिवास बनाया।

अतः कालांतर में यहाँ पर एक विशिष्ट संस्कृति की अभिसृष्टि हो गई। गढ़वाल में अनेक लोग गुजरात, महाराष्ट्र आदि स्थानों से आए, इसलिए यहाँ की भाषा पर वहाँ की भाषाओं का प्रभाव पड़ा। आज गढ़वाली भाषा स्वयं में स्वावलंबी और सक्षम भाषा है। इसे मध्य पहाड़ी नाम दिया गया है, जिसमें गुजराती, पंजाबी और संस्कृत भाषाओं का समावेश है। सारांशतः कभी एक राज्य रहे गढ़वाल का इतिहास धर्म–अध्यात्म तथा वीर पुरुषों के शौर्य–पराक्रम से संपृक्त है। यहाँ की संस्कृति में भारतीय संस्कृति के तत्वों का समावेश तो है, किंतु उसका आवरण विचित्र प्रकार का है।

उत्तराखंड के पहाड़ों की संस्कृति अनूठी है। यहाँ प्राचीन काल में अनेक जातियों का आगमन होता रहा और वे अपने चिह्न यहाँ छोड़ती गईं। अतः कालांतर में यहाँ एक मिश्रित संस्कृति अस्तित्व में आ गई। यहाँ के पहाड़ी समाज में विभिन्न

जातियों के आपसी प्रेम के सूत्र बहुत मजबूती से गुँथे हुए हैं। हर जाति युगों–युगों से एक–दूसरी जाति के लिए धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। उत्तराखंडी समाज दो प्रमुख जातियों के आधार पर सवर्ण और असवर्ण दो भागों में विभाजित है, लेकिन यह विभाजन केवल और केवल छुआछूत तक ही सीमित है। अन्य संबंधों में इसकी आँच नहीं आती है। उत्तराखंड के गढ़वाल में एक असवर्ण जाति है– बेडा। इन्हें बाद्दी और ढाकी भी कहा जाता है। शायद इस जाति का 'बाद्दी' नामकरण वाद्य के आधार पर हुआ हो, क्योंकि इनका मुख्य कार्य गायन–वादन कर लोगों का मनोरंजन करना रहा है। इसके अतिरिक्त ये लोग बेड्वार्त (बर्त और लांग) जैसे सवर्णों के सामूहिक अनुष्ठान के केंद्र में भी रहे हैं।

बेडा लोग अपना संबंध शिव से जोड़ते हैं। पहले इस जाति के पुरुष लोग प्रायः लंबे केश रखते थे। संभवतः यह शिव की जटाओं का अनुसरण रहा हो। अनेक बेडाओं के नाम शिवजनी, शिवचरण आदि रहे हैं, जो शिव शंकर के प्रति उनकी गहन श्रद्धा का द्योतक है। बेडा समाज में एक मिथक था कि शिव ने ही उन्हें बाबला घास के बर्त पर फिसलने और गीत गाकर जीविका चलाने की प्रेरणा दी थी। इनके बीच मिथक था कि जब दुनिया के लोगों का भाग्य बँट रहा था तब बेडा लोग गायन और नृत्य में व्यस्त थे। वे काफी विलंब से शिव के पास पहुँचे। शिव ने उन्हें देखकर कहा कि अब तो भाग्य के नाम पर कुछ बचा ही नहीं है, इसलिए आप लोग बर्त और लांग पर फिसलने का कर्म करना। इसी से तुम्हारी आजीविका चलेगी। शिव ने यह भी कहा कि मेरी उपासना भी करना। यद्यपि यह एक निराधार मिथक हो सकता है, लेकिन यह बात बेडा लोगों की शिव के प्रति बद्ध आस्था का प्रतीक अवश्य है। उनके गीतों में भी शिव तत्व यत्र–तत्र झलकता रहा है। इनके द्वारा प्रस्तुत राधाखंडी में खासकर यह शिवतत्व दृष्टिपथ में आता है। शिव पर आधारित लगभग पाँच राधाखंडी हैं।

गढ़वाल की शैव–परंपरा आज भी वहाँ की बेडा (वाद्यी) तथा कुछ अन्य हरिजन जातियों में सुरक्षित है। बेडा जाति के गायक–नर्तक लोग शिव को अपना कला–गुरु मानते हैं और उन्हीं की भाँति जटा धारण करते हैं।[19]

बाद्दियों का एक नाम ढाक्की भी है। इस नामकरण के पीछे यह संभव है कि इस परंपरा के कुछ लोग ढाक नामक वाद्य यंत्र का वादन करते हैं। यह चमड़े का बना एक ढोलकनुमा यंत्र होता है। उस पर घुँघरू बँधे होते हैं। जब ढाक को बजाया जाता है तो साथ में घुँघरू भी बजने लगते हैं। प्राचीन समय में गढ़वाल में आज की तुलना में मनोरंजन के साधन और सुविधाएँ नहीं के बराबर थीं। अनुसूचित जाति के अंतर्गत आने वाली बेडा जाति के लोग मनोरंजन के मुख्य साधन थे, जबकि ढोलवादक आवजी (औजी) अनुष्ठानों और शादी–विवाह जैसे उत्सवी कार्यों में ढोलवादन करते रहे हैं।

बाद्दी जाति का पुरुष विवाह आदि अवसरों पर ढोलक बजाते हुए गीत गायन करता था और स्त्री नृत्य करती थी। स्त्री नाचते हुए ढोलक वादक के साथ गायन भी करती थी। ये एक प्रकार से चारण थे, जो कि किसी की प्रशंसा अथवा समसामयिक घटना पर गीत बनाकर उसका गायन करते थे। लोकसाहित्य में गीतों की रचना में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ये किसी घटना पर गीतों की रचना करते थे, लेकिन उसका श्रेय किसी एक रचनाकार को नहीं मिलता था। ये गीत कालांतर में पूरे समाज के मनोरंजन का माध्यम बन जाते थे। गढ़वाल में एक समय में प्रसिद्ध और लोकप्रिय रही गीत रचनाएँ– 'साबासे भुला बैपारी ग्वाणु कुखड़ी ल्ह्योंदो मोल', 'म्यरा बाजू रंगारंग बिचारी रंग ल्ह्योंदो मोल', 'राणा सत्ये सिंगा' तथा 'दिनेस की गोरि मुखुड़ी मा लायी पौडर' बेडा लोगों के श्रेष्ठ रचनाकर्म के उदाहरण हो सकते हैं। आज से 35–40 साल पहले तक बारातों में बेडा–बेडीण भी जाते थे। वे औसर, राधाखंडी और चैती जैसी गायन कलाओं के संवाहक और प्रसारकर्ता थे।

गढ़वाल में होने वाली बेड्वार्त के अंतर्गत बर्त और लांग नामक सामूहिक आयोजनों में बाद्दियों का बड़ा महत्व रहा। यानी ये लोग इस आयोजन

के केंद्र में ही होते थे। ये आयोजन प्रकृति के प्रकोप अथवा आपदा से बचने तथा सुख–समृद्धि की प्राप्ति के लिए किए जाते थे। लोगों का विश्वास था कि इससे ईश्वर और प्रकृति प्रसन्न होकर उन्हें सुख–समृद्धि देगी। बताया जाता है कि बेडा के बर्त से फिसलकर घायल होने अथवा मृत्यु को प्राप्त होने के दृष्टिगत टिहरी के महाराजा ने 1925 में इस आयोजन पर प्रतिबंध लगा दिया था, लेकिन पौड़ी गढ़वाल के खिर्सू में अभी भी बर्त का आयोजन होता है। यद्यपि इसमें बेडा मनुष्य नहीं, बल्कि लकड़ी का बनाया होता है। साथ ही नैटवाड़ के दोणी–मितली में अभी भी लांग का आयोजन होता है।

जब कभी फसल नष्ट हो जाती है, खेतों में साँप दिखाई देने लगते हैं या गौओं के थन से दूध के बजाय खून निकलने लगता है तो इस प्रकार के विलक्षण विकारों का कारण शिव का रोष माना जाता है। तब उनके कोप से बचने के लिए एक समारोह का आयोजन किया जाता है, जिसे बेड्वार्त कहा जाता है। इसमें दो पर्वत–शिखरों के बीच एक मोटा रस्सा बाँध दिया जाता है, बेडा चौकी पर बैठकर उसे पार करता है।[20]

देखा जाए तो बर्त बेडा जीवन की दृष्टि से एक जोखिम भरा आयोजन था। इसमें बेडा की जान खतरे में रहती थी। दरअसल, बेड्वार्त एक प्रकार का यज्ञ होता था, जिसका उद्देश्य क्षेत्र की सुख–समृद्धि के साथ ही मनोरंजन भी था। इसकी तैयारियाँ बहुत पहले से शुरू हो जाती थीं। इस आयोजन में अनेक गाँवों के लोग शामिल होते थे। बाद्दी को पर्वत की ऊँची चोटी से एक मोटी बाबला घास की रस्सी पर बैठकर घाटी की ओर फिसलकर आना होता था। उस रस्सी पर तेल लगाया जाता था, ताकि बेडा को फिसलने में अड़चन न आए। रस्सी के ऊपर लकड़ी की काठी रखी जाती थी। रस्सी निर्माण के लिए घास काटने का मुहूर्त निकाला जाता था। उस रस्सी के निर्माण में अनेक लोगों का सहयोग रहता था। उसे 'बर्त' कहा जाता था। बर्त के प्रति लोगों का पवित्रता का भाव रहता था। बर्त पर फिसलते हुए प्रायः गिर जाने से बेडा की मृत्यु हो जाती थी। इसलिए इस आयोजन से पहले उसके परिवार को एक निश्चित धनराशि दी जाती थी। ताकि उसकी मृत्यु के पश्चात् उस परिवार की आर्थिक और वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। यहाँ तक कि उसकी पत्नी को सोने की नथ तक भेंट की जाती थी। बर्त वाले आयोजन के दिन बेडा को स्नान करवाकर, सफेद वस्त्र पहनाकर उत्साह के साथ आयोजन स्थल के एक छोर (पहाड़ की चोटी) पर ले जाया जाता था। उसके माथे पर चावल थापे जाते थे और सिर पर मुकुट पहनाया जाता था। सावधानी से उसे रस्सी के ऊपर रखी काठी पर बैठाया जाता था। काठी पर बैठते ही वह फसल के रूप में समृद्धि की कामना अथवा क्षेत्र को महामारी से मुक्त करने तथा सुख–समृद्धि की कामना–प्रार्थना करता था। इसके बाद उसे नीचे की ओर धकेला जाता था।

काठी पर बैठते ही बेडा 'भूमिपाल' देवता को संबोधित कर, चिल्लाकर प्रार्थना करता था कि 'हे देव अन्नकाल दूर कर, अच्छी फसल पैदा कर'। यदि क्षेत्र में फैली हुई महामारी के निवारण हेतु बेड्वार्त का आयोजन होता था, तो भगवान् महादेव शिव से बेडा प्रार्थना करता है कि 'हे देव, महामारी के प्रकोप का अंत कर तथा क्षेत्र में सुख शांति प्रदान कर'। बेडा जैसे ही काठी पर बैठता था, उसकी पीठ पर इस प्रकार जोर से धक्का दिया जाता था कि वह रस्सी पर तेजी से फिसलते हुए नीचे सही सलामत पहुँच जाता।[21]

कई बार वह आधे रास्ते में ही गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता था अथवा घायल हो जाता था, अथवा घायल होकर उसकी मृत्यु हो जाती थी, परंतु जो बेडा सकुशल रस्सी के अंतिम छोर तक पहुँच जाता था, उसे सौभाग्यशाली समझा जाता था। रस्सी के किनारे पर पहुँचते ही उसे सुरक्षा घेरे में ले लिया जाता था। लोग उसके माथे पर लगे चावलों को अपने पास रखते थे। इनके प्रति लोगों का पवित्र भाव होता था। बेडा प्रायः लंबी–लंबी जटाएँ रखते थे। रस्सी के किनारे पर पहुँचते ही लोग उसके केशों को उखाड़ने का प्रयास करते थे, ताकि उन्हें अपने पास 'माथम' (आशीर्वाद के रूप में पवित्र प्रतीक) के रूप में प्राप्त कर सकें।

उसके बालों को खींचते समय अनेक बार उसके सिर से खून आ जाता था और छीना–झपटी में वह घायल भी हो जाता था। उसकी सुरक्षा के लिए कुछ स्वयंसेवी कंबल लेकर तैयार रहते थे। बेडा के रस्सी के अंतिम छोर पर खेत में पहुँचते ही स्वयंसेवक उसे कंबलों से ढककर उसकी रक्षा करते थे। इस दौरान लोग कैंची से बेडा के बाल काटकर लोगों में 'माथम' के रूप में वितरित करते थे।

उत्सव में आए हुए लोग उसके (बेडा के) बाल नोच कर पवित्र–चिह्न के रूप में झार ले जाते हैं। वे बाल महादेव के प्रवर्ग्य–प्रतीक माने जाते हैं इसलिए अनिष्ट के निवारण के लिए उन्हें संभालकर रखा जाता है। बेड्वार्त का यह गौरव बेडा अथवा वाद्यी जाति को ही प्राप्त है जो अपनी नृत्य और गायन विद्या को नटराज शिव से संबद्ध करते हैं।[22]

वहीं, दोणी–भितली में अभी भी बर्त का आयोजन होता है। उसे बेडा नहीं देवाल जाति का पुरुष संपन्न कराता है। पौड़ी के खिर्सू में भी कठबाद्दी का बर्त आयोजित होता है। यह भी एक प्रकार से पुराने आयोजन का प्रतीकात्मक रूप है। यहाँ पर बर्त के आयोजन के लिए लकड़ी का बेडा बनाकर उसे उसी प्रकार नहलाया–धुलाया जाता है, जैसे कभी बेडा को नहलाया–धुलाया जाता था।

लांग के आयोजन के लिए बाँस की बहुत लंबी बल्ली को एक स्थान पर गाड़ा जाता है। देवाल जाति का पुरुष इस पर चढ़ता है। लांग के शिखर पर चढ़ने के बाद वह 'खंड बाजे' (जैसे टिहरी महाराजा का खंड बाजे, गाँव के सयाणा को खंड बाजे आदि) का घोष करता है। इसका अर्थ इन लोगों को सम्मान देना और उनकी कीर्ति के विस्तार और समृद्धि में वृद्धि की कामना है। फिर बाजा बजने के बाद वह गोल–गोल घूमता है और इसके बाद नीचे फिसलता है। बर्त की तरह ही फिसलने से पहले देवाल क्षेत्र के कष्टों को दूर करने और सुख–समृद्धि देने की प्रार्थना भगवान शिव से करता है।

बेडा 'लांग' के लगभग 30 फीट ऊँचे, मजबूत लठ पर आरूढ़ होकर उसके ऊपरी सिरे पर अनेक प्रकार की शारीरिक नाटकबाजी का प्रदर्शन करते हुए जनता के साथ हँसी मजाक–भंड्याणा भी करता रहता है। अंत में वह भगवान शिव से प्रार्थना करता है कि "हे देवाधिदेव महादेव सुख शांति प्रदान कर और इस क्षेत्र की जनता के दुःखों का निवारण कर।' यह प्रार्थना 'श्वेतश्वतार' उपनिषद में वर्णित भगवान शिव के दयालु स्वरूप के आह्वान पर आधारित है।[23]

कुल मिलाकर इन दोनों आयोजनों का ध्येय कष्टों से मुक्ति और समृद्धि प्राप्त करना है। भले ही बर्त और लांग जैसे प्राचीन आयोजन अब विलुप्ति के कगार पर हैं, लेकिन इनकी कुछ स्मृतियाँ अभी भी जीवित हैं। टिहरी में गडोलिया के निकट और रणकंड्याळ में दो स्थानों के नाम बर्तखुंट्या है, जिनका संबंध बर्त के आयोजन से है। टिहरी गढ़वाल की लोस्तु पट्टी में भी कभी बेड्वार्त (बर्त) का आयोजन होता रहा है।

कुछ बेडा समस्त उत्तराखंड में अथवा अपने क्षेत्र में बेड्वार्त करने में विशेषज्ञ प्रसिद्ध हुए हैं। उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध ब्रिटिश यात्री विलियम मूरक्राफ्ट ने अपने यात्रा वर्णन में एक प्रसिद्ध बेड्वार्त–विशेषज्ञ का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। इस बेडा का नाम बंचु था। श्री विलियम मूरक्राफ्ट ने माह फरवरी, 1820 ई. के पहले सप्ताह में टिहरी गढ़वाल पहुँचकर इस प्रसिद्ध विशेषज्ञ बंचु से साक्षात्कार किया था। अपने संस्करण में वह लिखते हैं कि यह बेडा अपनी कला में इतना प्रवीण है कि सोलह बार इसने बिना किसी दुर्घटना के सफलतापूर्वक बेड्वार्त की थी।[24]

सारांश यह कि आज के दौर में बेडा लोगों ने गीत गायन, नृत्य का अपना यह पुश्तैनी धंधा छोड़ दिया है। बेडाओं की गायन और नृत्य संस्कृति के विलुप्त होने के लिए पहाड़ के समाज को ही जिम्मेदार माना जा सकता है। दरअसल, बेडा लोगों की कला को कभी भी हम लोगों ने बहुत गंभीरता से नहीं लिया है। उन्हें उनकी कला का न तो अपेक्षित सम्मान मिल पाया और न ही

पारितोषिक। इसके अलावा पढ़–लिख जाने और सूचना–मनोरंजन के साधनों की क्रांति ने भी बेडा लोगों को इसके लिए विवश किया है। पहले बेडा शादी समारोहों या अन्य अवसरों पर गीत गायन करते थे और उनकी स्त्रियाँ नृत्य करती थीं तो सवर्ण लोग उन पर अनेक प्रकार के मजाकिया तंज कसते थे। स्वाभाविक बात है कि अपने से ऊँची जाति के लोगों की बात का प्रतिकार करना उनके वश में नहीं था, परंतु ये बातें मन को ठेस तो पहुँचाती ही रही होंगी। इसे चुपचाप सहन करना बेडा लोगों की नियति थी, परंतु अब यह कोई मजबूरी नहीं है। शिक्षा, अधिकार और सामाजिक जागरूकता के कारण बेडा लोगों ने इस परंपरा को लगभग तिलांजलि दे दी है। पलायन की मार इस जाति पर भी पड़ी है।

गढ़वाल के अखोड़ी, मयाली, डांगचौंरा, कांडा (बडियारगढ़) बेडाओं के गाँव रहे हैं। इन लोगों ने अपना पुश्तैनी गायन–वादन और नृत्य का यह कर्म प्रायः त्याग ही दिया है। दरअसल, इस कला की विलुप्ति के लिए गढ़वाल के स्रोता अथवा दर्शक भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। हम लोगों ने इस विधा को केवल हल्के मनोरंजन के रूप में ही लिया। उसको कहीं रिकॉर्ड में नहीं रखा और न ही समय रहते उसका डॉक्युमेंटेशन किया। बेडा लोग पहले अपनी इस कला के लिए बहुत दूर–दूर तक प्रसिद्ध रहते थे, लेकिन अब उनकी प्रसिद्धि उनकी कला के साथ ही विलुप्त हो गई है। अब गढ़वाल में केवल उँगलियों में गिने जाने वाले ही कुछ जाने–पहचाने नाम रह गए हैं। इनमें रुद्रप्रयाग के चाका के मूली, पौड़ी का रामभक्ति, रुद्रपयाग के लाउड़ी के मोहनलाल की पत्नी दर्शनी देवी, दोणी के डॉ. प्रकाश शामिल हैं। बेडाओं की कला के शोधार्थियों और इस कला में जिज्ञासा रखने वाले लोगों को उपरोक्त कुछ लोगों से ही उस संबंध में कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है।

उत्तराखंड की संस्कृति पर वर्षों से कार्य कर रहे प्रो. दाताराम पुरोहित का मानना है कि बेडा संस्कृति का विलुप्त होना गढ़वाल की संस्कृति के बहुत क्षतिकारक है। उनके अनुसार समय के साथ लिए बहुत सारे परिवर्तन स्वाभाविक हैं, लेकिन मैं उस परिवर्तन का विरोधी हूँ, जो सांस्कृतिक पक्षों को निगल जाता है। प्रो. पुरोहित के अनुसार एक समय गढ़वाली गायन कला में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले बेडा लोगों ने यहाँ की मनोरंजन जैसी अहम आवश्यकता की पूर्ति करने में अहम भूमिका निभाई, लेकिन वे धीरे–धीरे हाशिये पर चले गए। प्रो. पुरोहित ने बेडा लोगों की राधाखंडी कला के संरक्षण और प्रचार–प्रसार के लिए अपने स्तर से भगीरथ प्रयास किए हैं। उन्होंने बेडा जाति से संबंध और राधाखंडी की कलाकार बचनदेई समेत अनेक बेडाओं को मंच प्रदान कर उन्हें समाज में प्रतिष्ठा दिलाने का कार्य किया है। इसलिए अनेक बेडा कलाकार प्रो. पुरोहित को अपना मसीहा और मार्गदर्शक मानते रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. खंडा पंच हिमालस्य कथिताःनेपालकूर्मांचलौ। केदारोडऽथ जलंधरोऽथ रुचिर कश्मीर संज्ञोऽन्तिमः।।

पं. हरिकृष्ण रतूडीः गढ़वाल का इतिहास, पृ. 1 (संपादक–डॉ. यशवंत सिंह कठोच)

2. पं. हरिकृष्ण रतूड़ीः गढ़वाल का इतिहास, पृ. 1

3. गढ़सुधा(84–85), चंडीगढ, पृ. 31

4. पं. हरिकृष्ण रतूडीः गढ़वाल का इतिहास, पृ. 3.1–2 (संपादक–डॉ., यशवंत सिंह कठोच)

5. डॉ. रणवीर सिंह चौहानः उत्तराखंड के वीर भड़ पृ. 3

6. सुष ते भलोमुख भूषण भनैगो वाड़ि। गढ़वाल राज्य पर राज जो वखानैगो।। (डॉ. रणवीर सिंह चौहानः उत्तराखंड के वीर भड़, पृ. 3)

7. राहुल सांकृत्यायनः हिमालय परिचय, पृ. 51

8. डबरालः उत्तराखंड का इतिहास, पृ. 95

9. मैक्डोनेल तथा कीथः वैदिक इंडेक्स भाग–1, पृ. 174

10. पं. हरिकृष्ण रतूडीः गढ़वाल का इतिहास, पृ.–140–141 (संपादक–डॉ. यशवंत सिंह कठोच)

11. पं. हरिकृष्ण रतूडीः गढ़वाल का इतिहास, पृ.–140–142 (संपादक–डॉ. यशवंत सिंह कठोच)

12. बलदेव उपाध्याय : श्री शंकराचार्य, पृ. 34

13. पं. हरिकृष्ण रतूडी : गढ़वाल का इतिहास, पृ–146–147 (संपादक–डॉ. यशवंत सिंह कठोच)

14. डॉ. शिवानंद नौटियाल : गढ़वाल के लोकनृत्य गीत, पृ. 36 (भूमिका)

15. डॉ. सरला चंदोला : उत्तराखंड का लोक साहित्य और जनजीवन, पृ. 60

16. डॉ. गोविंद चातक : भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भः मध्य हिमालय, पृ. 243–45, 267–70, 289–301, 304–6

17. राहुल सांकृत्यायनः हिमालय परिचय, पृ. 133

18. डॉ. शिवानंद नौटियाल : गढ़वाल के लोकनृत्य गीत, पृ. 28 (भूमिका भाग)

19. डॉ. गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ. 112

20. डॉ. गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ. 112

21. शूरवीर सिंह पंवार, गढ़वाल और गढ़वाल (प्राचीन, लोक कल्याणकारक यज्ञ 'बेड्वार्त'), संपादक–चंद्रपाल सिंह रावत, पृ. 285

22. डॉ. गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भः मध्य हिमालय, पृ. 112

23. शूरवीर सिंह पंवार, गढ़वाल और गढ़वाल (प्राचीन, लोक कल्याणकारक यज्ञ बेड्वार्त), संपादक–चंद्रपाल सिंह रावत, पृ. 287

24. शूरवीर सिंह पंवार, गढ़वाल और गढ़वाल (प्राचीन, लोक कल्याणकारक यज्ञ 'बेड्वार्त'), संपादक–चंद्रपाल सिंह रावत, पृ. 286

– प्रीति भवन, संस्कृति विहार (निकट मैक्स इंटरनेशनल स्कूल), टी एस्टेट बंजारावाला, देहरादून, उत्तराखंड–248001

❑❑❑

गणतंत्र की जन्मभूमि बज्जि संघ की जनपदीय भाषा बज्जिका–उद्‌भव, विकास तथा हिंदी से पारस्परिक संबंध

डॉ. विनोद कुमार सिन्हा

भाषा, मातृभाषा और हिंदी की उपभाषाएँ दूसरों को समझाने के लिए अपने हृदय के भावों का समन्वित रूप में लौकिक शब्दों द्‌वारा अभिव्यक्त किए गए समूह को भाषा कहते हैं। फिर पारिवारिक सदस्यों के बीच बोली जाने वाली स्वाभाविक भाषा को मातृभाषा कहा गया है।

प्राचीन काल से हम भारतवासी सुन रहे हैं–

चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर वानी।

बीस कोस पर पगड़ी बदले, तीस कोस पर छानी।।

भारत में हजारों वाणी एवं भाषाएँ हैं। ये सभी भाषाएँ भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में स्वीकृत नहीं हुईं हैं। स्वीकृत भाषाएँ पहले मात्र 14 थी। बाद में 22 हुईं। संविधान में हिंदी का राजभाषा तथा क्षेत्रीय भाषा के रूप में अलग–अलग उल्लेख करना ही कुछ भ्रामक हो गया। ये क्षेत्रीय भाषाएँ हिंदी की सहेलियाँ हैं– सौत नहीं।

हिंदी को समृद्‌ध करने के उद्‌देश्य से संविधान के 351 वें अनुच्छेद में उल्लेख किया गया है– "हिंदी की प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले रूपों, शैलियों और अभिव्यंजनाओं को आत्मसात् करते हुए और जहाँ आवश्यक हो या वांछनीय हो, मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्दों को ग्रहण करते हुए उसकी समृद्‌धि सुनिश्चित की जाए।

हिंदी के सरलीकरण के संबंध में भी उन दिनों एक ग्यारह सदस्यीय सलाहकार समिति बनी थी जिसमें सेठ गोविंद दास, मामा बरेरकर, राष्ट्रकवि दिनकर आदि भी थे। उस समिति ने एक प्रमुख सुझाव दिया था–

"जिन पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाची शब्द हिंदी में नहीं हैं, उनके पर्यायवाची शब्द अन्य भारतीय भाषाओं, क्षेत्रीय भाषाओं, मातृभाषाओं और विशेषकर ग्रामीण अंचलों से भी लिए जा सकते हैं।"

इस प्रकार राजनेताओं तथा साहित्यकारों की भी परिकल्पना थी कि क्षेत्रीय भाषाओं के विकास से हिंदी को खतरा नहीं है बल्कि उसके सहयोग से हिंदी और भी समृद्‌ध हो सकती है। माता ही द्‌विभाषी होती है। एक महिला मायके की भाषा बोलती है अर्थात् मातृभाषा बोलती है। जब ससुराल जाती है तो वहीं की भाषा बोलने लगती है। परंतु यह बात नहीं है कि वह मातृभाषा भूल जाती है।

भाषा वैज्ञानिकों द्‌वारा भाषा का वर्गीकरण

जार्ज डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टीक सर्वे ऑफ इंडिया' में निम्नांकित रूप से आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया है–

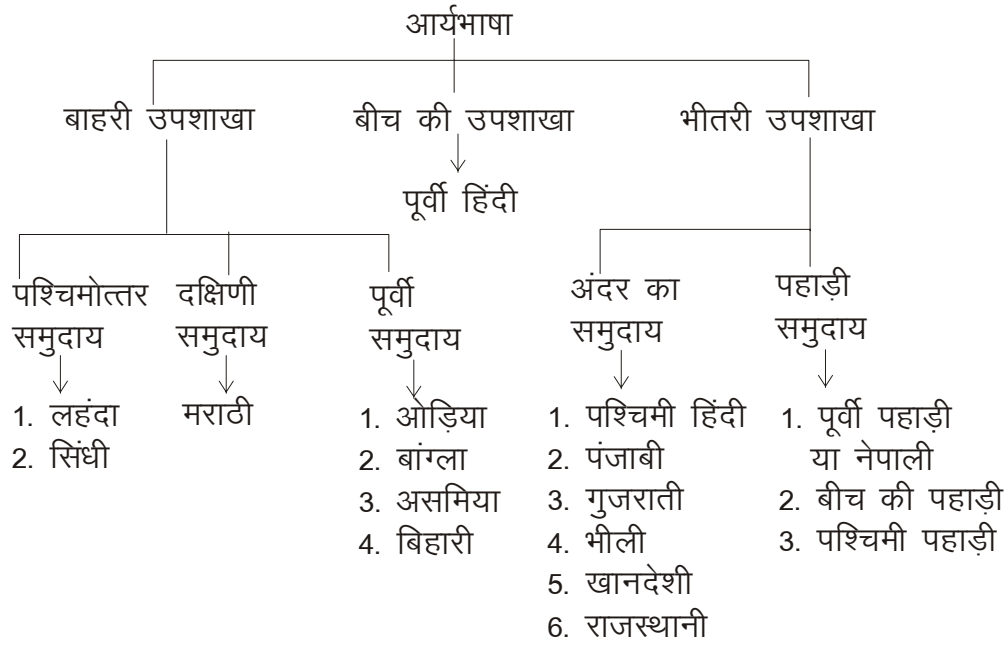

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक– 'ओरीजनल ऐंड डेवलपमेंट और बंगाली लैंग्वेज' में आर्यभाषाओं का निम्न प्रकारेण वर्गीकरण किया है–

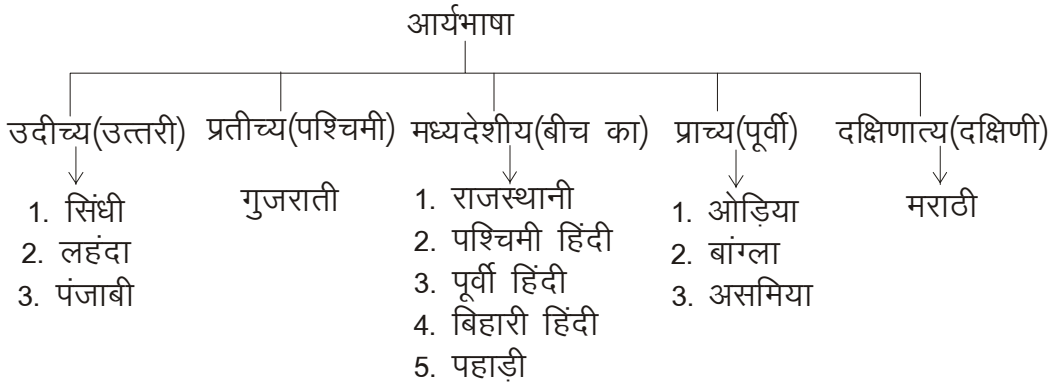

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार डॉ. ग्रियर्सन ने पूर्वी समुदाय के अंतर्गत डॉ. चटर्जी ने मध्यदेशीय भाषा के अंतर्गत बिहारी हिंदी को रखा है। सूचना प्रसारण मंत्रालय से प्रकाशित पुस्तक 'हिंदी और उसकी उपभाषाएँ' में श्री विमलेश कांति वर्मा ने प्राच्य (पूर्वी) शाखा से मागधी भाषा तथा मागधी से बिहारी भाषा की उत्पत्ति बतलाया है।

मागधी भाषा को भी तीन समूहों में बाँटा गया है–

(क) पूर्वी मागधी–इसमें बांग्ला, असमिया और ओड़िया भाषा आती है।

(ख) केंद्रीय मागधी–इसमें मैथिली, मागधी, बज्जिका, अंगिका को रखा गया है।

(ग) पश्चिमी मागधी–इसमें नागपुरिया तथा भोजपुरी को रखा गया है।

बिहारी हिंदी

बिहार गणतंत्र भारत का एक प्रमुख राज्य है। इसे प्रथम राष्ट्रपति देने का गौरव प्राप्त है। झारखंड अलग होने के बाद शेष बिहार भोजपुर, मगध विदेह, अंग तथा बज्जि संघ नामक पूर्व राज्यों से बना है जिसमें भाषा क्रमशः भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका तथा बज्जिका है। डॉ. हरदेव बाहरी ने

अपनी पुस्तक 'हिंदी : उद्‌भव और विकास' में लिखा है– "हिंदी प्रदेश में ऐतिहासिक दृष्टि से पाँच प्राकृतें थीं–भ्रंश, शौरसेनी, अर्ध मागधी, मागधी और खस। जिसे हम हिंदी कहते हैं, वास्तव में वह इस पाँच प्राकृतों की उत्तराधिकारिणी विभाषाओं का संघ है। भ्रंश से राजस्थानी हिंदी, शौरसेनी से पश्चिमी हिंदी, मागधी से बिहारी हिंदी तथा खस से पश्चिमी हिंदी का विकास हुआ है।"

डॉ. बाहरी ने यह भी कहा था कि मिथिला विदेह की राजधानी थी। मिथिला अलग राज्य नहीं था। श्रीभद्‌भागवत का यह श्लोक भी डॉ. बाहरी की प्रामाणिकता सिद्‌ध करता है–

जन्मना जनकः सोऽभूत वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला तेन निर्मिता।।

श्रीभद्‌भागवत 9/12/13

वाल्मिकि रामायण में भी मिथिला तथा मैथिली शब्दों का अनेक बार प्रयोग हुआ है परंतु वह मिथिला राजधानी थी राज्य नहीं तथा मैथिली सीता को कहा गया है किसी भाषा को नहीं।

'बिहार हिंदी अकादमी' से एक पुस्तक 'हिंदी भाषा का स्वरूप' सन् 1973 में छपी थी। इसके लेखक डॉ. अवधेश्वर अरूण हैं तथा इसका पुनरीक्षण पद्‌मश्री डॉ. श्यामनंदन किशोर ने किया था। इस पुस्तक के पृ. 42 में स्पष्ट लिखा है कि भोजपुरी, मगही या बज्जिका भाषा को विद्‌वान हिंदी वर्ग में मानने में कोई आपत्ति नहीं मानते हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि बज्जिका और अंगिका उस हाल के वर्षों में अपने स्वतंत्र अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को मैथिली के पंजे से मुक्त कर पाई है।

डॉ. सुभद्र झा ने अपनी पुस्तक में मिथिला में वैशाली, विदेह और अंग तीन जनपदों (प्रांतों) को अंतर्मुक्त किया है। इस क्षेत्र की बोली बज्जिका, मैथिली तथा अंगिका कही गई है।

भारत का प्राचीन गणराज्य बज्जि–संघ और उसकी भाषा बज्जिका

भारत का एक प्राचीन गणराज्य था बज्जि संघ जो इस्वी सन् 725 वर्ष में स्थापित हुआ तथा ईसा पूर्व 450 वर्ष पूर्व तक अपना कीर्ति ध्वज फहरा रहा था। बौद्‌ध ग्रंथ 'अंगुत्तर निकाय' तथा जैन ग्रंथ 'भगवती सूत्र' में भी बज्जि संघ का जिक्र आया है। बज्जि संघ की राजधानी वैशाली थी जिसकी स्थापना इक्ष्वाकु वंश के राजा विशाल ने की थी। अंबपाली वैशाली की ही राजनर्तकी थी जिसे भगवान बुद्‌ध ने अपनी शिष्या बनाया था। "डॉ. एस. सी. सरकार ने 1949 के वैशाली महोत्सव के अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि बज्जि संघ के 18 गणराज्यों में गोमती, कोशी, हिमालय तक गंगा के बीच स्थित भूखंड में पड़ते थे। सबकी राजधानी वैशाली थी। डॉ. हरदेव बाहरी ने लिखा है– बौद्‌ध काल में बृजि या बज्जि बहुत प्रसिद्‌ध महा जनपद था। इसके अंतर्गत 8 जनपद थे जिसमें लिच्छवी और विदेह उल्लेखनीय हैं। विदेह रामायण काल में बहुत बड़ा राज्य था जिसे मिथिला भी कहा गया है।" ग्रामीण हिंदी बोलियाँ–पृ. 141

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी लिखा है–

बज्जि देश का शासक क्षत्रिय जाति का था जिसका नाम लिच्छवि था। जैन ग्रंथों से मालूम होता है कि उसकी 9 उपजातियाँ थी। इन्हीं में एक भेद ज्ञात जाति का था जिसमें पैदा होने के कारण जैन धर्म के प्रवर्तक वर्धमान (महावीर) को नातृपुत्र या ज्ञातपुत्र कहते हैं। पाणिनी ने भी 'मद्र बृज्जयोः कन (अष्टा. 4/2/3) सूत्र में इस बज्जी को बृज्जी कहकर स्मरण किया है। बुद्‌ध के समय बज्जी गणराज्य उत्तर भारत की पाँच प्रधान राजशक्तियों जैसे– अवंती, बत्स, कोसल, मगध, बज्जि में एक था।

पुस्तक– (पुरातत्व निबंधावलि– ले.–राहुल सांकृत्यायन पृ. 10)

डॉ. ग्रियर्सन ने बिहारी बोलियों के सात व्याकरण तैयार किए थे जिसमें बज्जि संघ की भाषा को कहीं 'दक्षिण–मैथिली' तो कहीं 'मैथिली–भोजपुरी' कहा है। परंतु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के पृ. 241 में जनपदीय भाषाओं की सूची देते हुए वैशाली की भाषा को बज्जिका ही कहा है और इसका 26वाँ स्थान उन्होंने दिया था।

1991 में बज्जिका संस्थान मुजफ्फरपुर से डॉ. योगेंद्र प्रसाद सिंह की एक पुस्तक 'बज्जिका का स्वरूप' छपी थी जिसकी भूमिका में विद्‌वान

लेखक ने लिखा है– "बज्जि–विदेह संघ कई गणतंत्रों को सम्मिलित करके बना था। विभिन्न विद्वानों में से कोई इसे आठ गणतंत्रों तथा कोई अठारह का संघ विभिन्न स्रोतों के आधार पर बतलाते हैं। इसकी राजधानी वैशाली थी।

बज्जिका इस बज्जि संघ के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। बज्जी शब्द पुराना है तो क्षेत्र–विशेष के लिए अभिहित किया गया है। पाणिनी ने अपने व्याकरण (अष्टाध्यायी) के तद्धित प्रकरण में 'भद्र' और 'बृज्जि' का उल्लेख देश (क्षेत्र) विशेष क्षेत्र के लिए करके वहाँ के निवासियों को 'बृज्जीक' और 'भद्रक' कहा है। ये नाम तत्रद् देशवासियों के लिए पहले से प्रयुक्त थे, तभी तो पाणिनी ने उनकी व्याख्या के रूप में उन पर विचार किया तथा व्याकरण में नियम बनाए। गुप्त काल में इस क्षेत्र को तीरभुक्ति (तिरहुत) कहा जाता था। 'तिरहुत' नाम विद्यापति ने भी 'कीर्त्तिलता' में दिया है। उसी पुस्तक के पृष्ठ 48 में लेखक ने 'बज्जिका' शब्द निर्माण का भी विश्लेषण किया है। उन्होंने लिखा है कि 'बज्जिका' शब्द का निर्माण बज्जि शब्द में 'क' प्रत्यय संयुक्त करके 'आ' स्त्री प्रत्यय लगाकर हुआ है। यह प्राच्य बज्जि क्षेत्र की आधुनिक भाषा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

'बज्जिवासिनां भाषा बज्जि भाषा–बज्जिका'। बज्जि को वृजि भी कहा जाता है। किंतु भाषा के अर्थ में बज्जि से उद्भूत बज्जिका शब्द ही रूढ़ हो गया बज्जि संघ क्षेत्र के निवासियों को भी बज्जिक कह सकते हैं– उनकी भाषा हुई– बज्जिका। विद्वान लेखक डॉ. योगेंद्र प्रसाद सिंह ने बज्जिका के संबंध में अपनी पुस्तक 'संदर्भ सप्तक का' में पद्यमय वर्णन भी किया है–

पुरातन गणतंत्र शासक लिच्छवि
संघ बज्जि–विदेह जग विख्यात जे
केंद्र वोकरा मध्य में, वैशालिका
गिरा ओक्कर हएँ पुरातन बज्जिका।
बज्जिक गौतम निनादित कंठ से
व्याप्त मुखरित लिच्छवि को भूमि में
गणवधू जे आम्रपाली बुद्ध से
गेह के पावन करू भिक्षा ग्रहण
जन्म के साफल्य ओकरा हो सकल
और जीवन–वृत्त भेलक निष्कलुष
कौन भाषा में रहल अनुरोध उ ?
बज्जि के गणराज्य में भाषित रहे।

बज्जिका भाषी क्षेत्र

'बज्जिका भाषा और साहित्य' पुस्तक में डॉ. सियाराम तिवारी ने बज्जिका क्षेत्र के अंदर पुराना मुजफ्फरपुर जिला (नया मुजफ्फरपुर, वैशाली, सीतामढ़ी और शिवहर) दक्षिण शहर का पंचमांश, समस्तीपुर का अर्धांश, मोतिहारी का अद्र्धांश, छपरा जिला का मिर्जापुर, दिघवारा, सोनपुर का पहलेजा घाट का उल्लेख किया है। उन्होंने बज्जिका भाषा भाषी की संख्या सत्तर लाख तेरह हजार चार सौ सड़सठ और पाँच हजार वर्गमील क्षेत्र का अपनी पुस्तक में वर्णन किया है।

डॉ. अवधेश्वर 'अरूण' के अनुसार बज्जिका की सीमा रेखा पश्चिम में घोड़ासहन, ढाका, पताही, पिपरा, साहेबगंज, फिर गंडक नदी के साथ हाजीपुर तक है। फिर से राघोपुर, मोहिउद्दीन नगर, दलसिंहसराय, रोसड़ा, सिंधिया, वारिसनगर थाना सहित लहेरियासराय तथा दरभंगा का कुछ शहरी क्षेत्र होते हुए सिंघवाड़ा फिर कटरा, पुपरी, सुरसंड होकर नेपाल की सीमा रेखा से मिल जाती है।

नालंदा खुला विश्वविद्यालय के भोजपुरी एम.ए. में एक पाठ है– 'भोजपुरी अन्य क्षेत्रीय भाषा साहित्य का अध्ययन'। इसमें बज्जिका भाषी क्षेत्र लगभग 50 हजार वर्गमील लिखा हुआ है।

डॉ. योगेंद्र मिश्र ने अपनी पुस्तक 'कांग्रेस के अभियान' में लिखा है कि नेपाल के तराई क्षेत्र की भी भाषा बज्जिका है। डॉ. योगेंद्र प्रसाद सिंह ने लिखा है कि बज्जिका भाषा भाषी की संख्या डेढ़ करोड़ है।

बज्जिका व्याकरण एवं शब्दकोश

आज से लगभग दो दशक पूर्व डॉ. योगेंद्र प्रसाद सिंह ने बज्जिका संस्थान मुजफ्फरपुर से 'बज्जिका का प्रथम व्याकरण' प्रकाशित किया जिसे भाषा–विज्ञान संबलित कहा गया। वास्तव में उक्त ग्रंथ भाषा विज्ञान अधिक है और व्याकरण सहायक रूप में है। परंतु वैशाली के बज्जिका भाषा भाषियों का कहना है कि हाजीपुर के एक अधिवक्ता श्री योगेंद्र राय ने 1964 में ही एक व्याकरण लिखा था

जो प्रथम व्याकरण था। श्री राय की असामयिक मृत्यु हो गई और उस पुस्तक के संबंध में लोगों को जानकारी भी कम हुई। डॉ. सुरेंद्र मोहन प्रसाद को श्री राय की एक पुस्तक फटे रूप में मिली–जिसे उन्होंने परिष्कृत किया। यह पुस्तक 1998 में अखिल भारतीय बज्जिका साहित्य सम्मेलन मुजफ्फरपुर से प्रकाशित हुई जिसकी शाखा पटना, सिकंदराबाद तथा चेन्नई में थी। उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष ने इस पुस्तक की प्रकाशकीय लिखी। उन्होंने लिखा कि अपनी अनुपम शब्द–शक्ति के कारण बज्जिका इतनी अभिव्यक्तिक्षम है कि यह उच्चतर बौद्धिक–मानसिक क्षितिज को छूने लगी। एक प्राणवान् वाक्–स्रोत के रूप में बज्जिका सभ्यता– संस्कृति आचार–विचार और चिंतन–मनन की गरिमा की संवाहिका बनकर प्रतिष्ठित है, मानव–नियति और इतिहास से आबद्ध है। अपनी सहजता, मधुरता और सुबोधता से यह लोक–मानस का कंठहार बन गई है।

बज्जिका का क्षेत्र उत्तर में नेपाली, दक्षिण में मगही, पूरब में मैथिली और अंगिका तथा पश्चिम में भोजपुरी से घिरा है। इसके अतिरिक्त वैवाहिक तथा व्यावसायिक संबंधों के कारण सभी भाषाओं का प्रभाव बज्जिका पर पड़ा है। अतः बज्जिका को चार भागों में बाँटा जा सकता है–

1. आदर्श बज्जिका 2. भोजपुरी प्रभावित बज्जिका, 3. मगही प्रभावित बज्जिका तथा 4. मैथिली–अंगिका प्रभावित बज्जिका।

श्री योगेंद्र राय ने चारों तरह की बज्जिका का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है–

आदर्श बज्जिका	**भोजपुरी प्रभावित बज्जिका**	**मगही प्रभावित बज्जिका**	**मैथिली–अंगिका प्रभावित बज्जिका**
(1) खाईत हती	खाईत बारी, खाईत बाटी खाई ले	खाइत ही खाइत हली खाही, खाहली	खाई छी
(2) जाइत हती	जाइत बाटी, जाइत बारी	जही, जाहली	जाई छी
(3) सुतल हय	सुतल बाटे	सुतल हली	सुतल छी

इस प्रकार अर्द्ध–मागधी से उत्पन्न भोजपुरी से बज्जिका मागधी अपभ्रंश से अपनी सगी बहनें मैथिली और अंगिका के अधिक निकट है।

राष्ट्रभाषा हिंदी को आधार मानकर बज्जिका व्याकरण में कुछ विभिन्नताएँ हैं और वही विभिन्नता अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुसार बज्जिका व्याकरण की कुछ विशेषताएँ बन गई हैं–

ध्वनि

1. बज्जिका में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, और औ कुल दस स्वर होते हैं।

2. 'ऐ' का उच्चारण हिंदी से भिन्न और भोजपुरी की तरह अ+इ के संयोग से और जैसे– जइसे, भैया–भइआ, औरत–अउरत, कौआ–कउआ।

3. 'ऋ' ध्वनि रि में परिवर्तित होती है– ऋतु–रितु

4. व्यंजनों में य, व, श, ष, तथा अनुनासिकों में ड., ञ एवं ण नहीं है। 'य' का उच्चारण ए+अ के रूप में–यह– एअह, व का उच्चारण ओ+अ के रूप में जैसे वह–वओह, श ध्वनि 'स' में परिवर्तित शाक–साक, ष का उच्चारण दो तरह से ख तथा स के रूप में किया जाता है। ण का रूपांतरण में–वाण–वान, ड. तक ञ का स्वंतत्र प्रयोग नहीं। ड़ क ने बदले 'र'–घोड़ा–घोरा, क्ष के बदले छ–क्षत्रिय– छती, वृक्ष–विरिछ, ज्ञ का उच्चारण ग्य के रूप में ज्ञान –गेयान विसर्ग का प्रयोग नहीं।

डॉ. अवधेश्वर अरूण के अनुसार बज्जिका में कुछ ध्वनि–परिवर्तन भी होता है। ये परिवर्तन आगम, लोप, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण, स्वरभक्ति आदि प्रकारों में प्राप्त है–

आगम–स्नान–असनान, स्तुति–अस्तुति।

लोप–कोकिल–कोइल, स्नेह–नेह।

विपर्यय–व्यवहार–बेहवार, चिह्न–चिन्ह।

समीकरण–दरिद्र–दलिद्दर, गिरिवर–गिरवर।

विषमीकरण–काक–काग, कंकण–कंगन।

स्वरभक्ति–भक्त–भगत, पंद्रह–पन्दरह।

घोषीकरण–डॉक्टर–डाकडर, शकुन–सगुन।

अघोषीकरण–डण्डा–डंटा।

द्वित्वीकरण–मसाला–मसल्ला, अलग–अल्लग।

शब्द

उत्पत्ति के अनुसार शब्द के चार भेद होते हैं– तत्सम, तद्भव, देशज आर विदेशज। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'आगरा जिले की बोली' में एक और भेद बतलाया है– स्थानीय शब्द।

1. बज्जिका में तत्सम शब्दों का प्रयोग कम है परंतु पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में गुजरते हुए कुछ तत्सम शब्द आ गए हैं– खंड, कंठ, तरंग आदि।

2. तद्भव शब्दों की अधिकता है– कहीं मूल रूप में, कहीं असंयुक्त रूप में प्रयोग होते हैं– खेत, घोरा, चन्नन, चक्कर आदि।

3. देशज शब्दों में कुछ पूर्णतः देशज हैं जैसे– खिरकी, गरवर, खटखटाना।

4. कुछ स्थानीय शब्द भी अर्थ परिवर्तन कर देशज हो गए हैं। जैसे– गर्भिणी से गाभिन, थान, भींजल, गोजनौटा, कोकनल आदि। इन शब्दों में कोदवा, कोकनल, गोजनौटा आदि ऐसे शब्द हैं जिनका विकल्प अन्य भाषाओं में नहीं है।

5. पुर्तगाली, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, से बहुत शब्द बज्जिका में आए हैं– कोर्ट से कोट, (फारसी) ज्याँ से जिआन, बलाउज, डीजल, फीस, अलमारी आदि।

6. कुछ तत्सम शब्द परिवर्तित तथा विकृत रूप में आए हैं। जैसे– कन्या–कनीआ, दीप्त–धीपल।

रचना के आधार पर शब्द

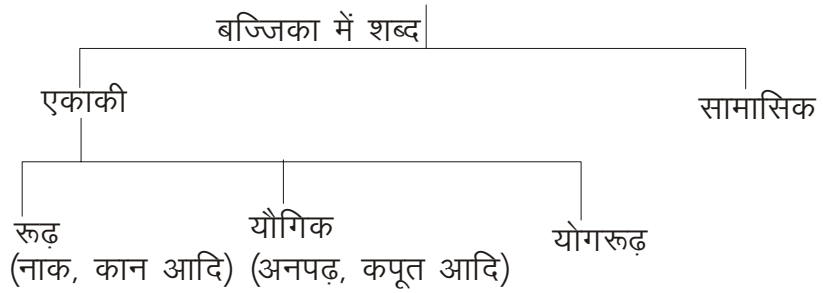

1. यौगिक और योगरूढ़ शब्दों की रचना उपसर्ग, प्रत्यय तथा समास से हुई है।

2. बज्जिका में संधि नहीं होती है। विद्यालय को विदियालय तथा जगन्नाथ को जगरनाथ कहते हैं।

3. समास बज्जिका की प्रखर प्रकृति है।

(क) रूढ़ सामासिक–रेलगाड़ी, धरमसाला।

(ख) यौगिक सामासिक–अनपढ़, कपूत।

(ग) रूढ़ यौगिक सामासिक–दसानन, तिरलोचन, गउरीसंकर।

4. बज्जिका में कुछ अपने सामासिक शब्द आए हैं जो बज्जिका के विशेष शब्द हैं। जैसे बापुत (पिता और पुत्र) जौगोजई (गेहूँ और जौ का मिश्रण)

लिंग

1. प्राणिवाचक शब्दों में लिंग भेद हैं परंतु, चीता, भालू, गीध, चील, सुग्गा आदि प्राणियों के स्त्रीवाचक शब्द नहीं हैं।

2. कुछ पुल्लिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाने में रूप बदल–जाते हैं–मरद–मउगी, बाप–मतारी।

3. अप्राणिवाचक शब्दों में लिंग–भेद नहीं होता–बरका बाल्टी–बरकी बाल्टी, बरका लोटा–बरकी लोटा, हाथी–गेल–हथनी गेल, बेटा जाएत–बेटी जाएत।

वचन

बज्जिका में स, सब, लोक जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है–

लरिका सब चल गेल, खेत स सूख गेल, जात लोग के नेओता दे आव।

कारक

हिंदी और बज्जिका के सभी कारकों की विभक्तियों को सारणी रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

कारक	हिंदी	बज्जिका
कर्त्ता	0, ने	0
कर्म	0, को	0, के
करण	से	से
संप्रदान	को, के लिए	के, के लेल
अपादान	से	से, में से
संबंध	का, के, की	का, के
अधिकरण	में, पर	में, पर, उप्पर
संबोधन	हे, अरे	रे, गे, हे, हो, ओ,

काल

बज्जिका में भी तीन काल होते हैं।

	भूत काल	वर्तमान काल	भविष्यत काल
उत्तम पुरूष	हम खइली	हम खाइले	हम खाएव
मध्यम पुरूष	तू खयलऽ	तू खाइत हत	तू खएव
अन्य पुरूष	उ खयलक	उ खाइत हए	उ खाएत

बज्जिका की भाषिक विशेषताएँ

डॉ. अवधेश्वर अरूण ने अपनी पुस्तक 'बज्जिका हिंदी और भोजपुरी (तुलनात्मक अध्ययन) में लिखा है कि बज्जिका यद्यपि भोजपुरी और मैथिली भाषा के दबाब से पीड़ित भाषा रही है तथापि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके बल पर यह अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रख सकी है। बज्जिका की कुछ प्रमुख भाषिक विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

1. बज्जिका में वर्णों के द्वित्वीकरण की प्रधानता है जो हिंदी या भोजपुरी या मैथिली में नहीं मिलती है। जैसे–हम्मर, महिन्ना, रक्खब, ओक्कर, सुग्गर आदि।

2. बज्जिका में दो ध्वनियों का प्रयोग विशिष्ट है– ड., ह, ड़। उच्चारण में ये ध्वनियाँ हिंदी घ और ग के लिए कभी–कभी प्रयोग होती हैं। जैसे–जांघ–जाङ्ह, गंगा–गङ्आ।

3. बज्जिका की भाषिक प्रवृत्ति तद्भवीकरण और अनेक स्रोतों से शब्द ग्रहण करने की है। इन शब्दों का सरलीकरण हो गया है। जैसे– लैनटर्न–ललटेन, कोर्ट–कोट, ब्लॉक–बलौक, आदमी–अदमी, दोस्त–दोस आदि।

4. बज्जिका की प्रवृत्ति हिंदी की भाँति अयोगात्मक है– बज्जिका–अपने के, मैथिली–अहाँक।

5. बज्जिका की अनेक क्रियाएँ मैथिली, भोजपुरी, हिंदी से भिन्न हैं। जैसे भम्होरना–दाँत से नोचकर खाना, बूलना–घूमना, डिरियाना–देर से किसी काम के लिए लगातार कहना।

6. बज्जिका में सहायक क्रिया सर्वथा विशिष्ट हैं। इसमें भू, रह और होना के विभिन्न रूपों का प्रयोग अधिकतर होता है। इस दृष्टि से बज्जिका हिंदी के निकट है।

7. बज्जिका में कहावतों, लोकोक्तियों और मुहावरों का अपना एक स्वतंत्र भंडार है, जिसमें बज्जिका ग्रामीण अंचल की संस्कृति की छाप है।

बज्जिका–साहित्य

(क) प्राचीन इतिहास : डॉ. मुनीश्वर राय 'मुनीश' ने अपनी पुस्तक 'बज्जिकांचल–एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण' में लिखा है कि विद्यापति, सूर, कबीर, तुलसी आदि भक्त कवियों की पंक्तियों में बज्जिका भाषा का स्वरूप ज्यों का त्यों मिलता है–

दुखहि जन्म भेल दुख हि गमाओल
सुख सपनानहि देल हो भोलानाथ
कहिया हरब दुःख मोर हो भोलानाथ

–विद्यापति

सुंदर देहिया देखि मति भूलू हे सखिया।
ऐ हो तन संघमों न जाए।।

–कबीर

जा हो जमुना पार हो बालक, जा हो जमुना पार।
कि हो बालक पंथ भुलायल किए अचला बाट कुबाट।।

–सूर

पनमा अइसन बड़आ पातर, कसेली अइसन टुनमुन हे।
ललना फुलबा अइसन सुकुमार, चनन अइसन गमगम हे।
तुलसीदास सोहर गाओल जाइके सुनाओल हे।
ललना रे जुग–जुग बढ़े अहि बात प्रेमफल पाओल हे।।

–तुलसी

वर्तमान सीतामढ़ी जिला के हुमाँयुपुर ग्राम में 3 दिसंबर, 1897 में श्रीमती चम्पा रानी का जन्म हुआ था जिनका विवाह मानिक चौक ग्राम में हुआ था। चम्पा रानी ने दो पुस्तकें लिखी थी– 1. भजनावली और 2. भारत माता के पुकार। उन दिनों भारत परतंत्र था। अंग्रेज पदाधिकारी टामस सिम्पसन ने 'भारत माता के पुकार' पुस्तक जब्त कर ली और अपने साथ इंग्लैंड ले गए। 1964 में कलम के जादूगर स्व. रामवृक्ष बेनीपुरी के प्रयास से 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद' के वार्षिक अधिवेशन में श्री सियाराम तिवारी ने– 'बज्जिका साहित्य' पर एक लेख पढ़ा था। उसके बाद बज्जिका आंदोलन में कई महारथियों ने बज्जिका साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया– स्व. योगेंद्र राय, स्व. डॉ. योगेंद्र प्र. सिंह, स्व. चंद्रशेखर श्रीवास्तव, स्व. डॉ. सुरेंद्र मोहन प्रसाद, डॉ. अवधेश्वर अरूण, डॉ. शारदा चरण, श्री चितरंजन प्र. कनक, रत्नानंद झा, छोटन, डॉ. ब्रजनंदन वर्मा आदि।

स्व. योगेंद्र राय ने व्याकरण तैयार किया। बिहार विश्वविद्यालय में एम. ए. (हिंदी) के पाठ्यक्रम में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए बज्जिका को भी स्थान प्राप्त हो गया। हिंदी विद्यापीठ, देवघर की साहित्यालंकार परीक्षा के पाठ्यक्रम में भी इसे स्थान मिला।

डॉ. योगेंद्र प्र. सिंह ने अपना शोध प्रबंध– 'बज्जिका भाषा के कतिपय शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन' लिखा। जिसे प्राकृत जैन शोध संस्थान ग्रंथ माला के 28वें पुष्प के रूप में प्रकाशित किया गया।

बज्जिका साहित्य निर्माण में श्री रामचंद्र विद्रोही, देवेंद्र राकेश, रमण शांडिल्य, प्रो. हरेंद्र सिंह विप्लव, निर्मल मिलिंद, योगेंद्र रीगावाल, उमाकांत वर्मा, डॉ. ब्रजनंदन वर्मा, डॉ. विनोदिनी शर्मा, डॉ. नवल किशोर श्रीवास्तव, डॉ. विनोद कुमार सिन्हा, राजवीर कुमार राजन, डॉ. रामप्रवेश सिंह, डॉ. यशवंत, डॉ. राम विलास, आनंदी प्रसाद मेहता, डॉ. गणेश राय, प्रो. सत्य नारायण प्रसाद, गणेश प्र. सारंग, डॉ. भावना, डॉ. वीरेंद्र कुमार वसु, राम किशोर चकवा आदि दर्जनों साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

नई–दिल्ली से 'भारतीय लोक साहित्य कोश' ग्रंथ का संपादन डॉ. सुरेश शर्मा ने किया था जिसमें डॉ. ब्रजनंदन वर्मा ने 'बज्जिका' लेख लिखा था। इस पुस्तक की पृ. सं. 2641 थी।

बज्जिका–काव्य

घोघरडीहा निवासी अजायव लाल को बज्जिका का आदिकवि माना गया है। इनका जन्म 1709 ई. में और निधन 1895 ई. में हुआ था। इन्होंने 3 पुस्तकें लिखी थी– 1. चम्पा महातम 2. मनसा महातम और 3. गोविंद विलास। उसके बाद श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर' की पुस्तक 'दुखिए किसान की होली' और सभाजित सिंह की 'पनसोखा' पुस्तक का नाम उल्लेखनीय है। हरिंद्र सिंह विप्लव को भी भुलाया नहीं जा सकता। इन्होंने पहला महाकाव्य 'कचदेवयानी' 1986 ई. में लिखा था। डॉ. अवधेश्वर 'अरूण' ने दूसरा महाकाव्य लिखा– 'बज्जिका रामायण'। मुजफ्फरपुर तथा वैशाली के लोग चेन्नई तथा सिकंदराबाद में बस गए। परंतु जिस तरह भोजपुर के लोग मॉरीशस में भी अपनी लोक भाषा को जिंदा रखने में सफल हुए उसी तरह वे लोग भी बज्जिका का गीत गाते रहे। अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन का मुजफ्फरपुर में गठन हुआ जिसकी शाखा पटना, सिकंदराबाद तथा चेन्नई में खुली।

श्री राम निवास शर्मा चेन्नई शाखा के सचिव हुए और बड़े आश्चर्य और खुशी की बात है कि

'बज्जिका रामायण' का द्वितीय संस्करण 6 फरवरी, 2003 को हिंदी प्रचार प्रेस, चेन्नई से छपा। 2000 ई. में डॉ. नवल किशोर श्रीवास्तव ने भी 'तुलसीदास' नामक खंड काव्य लिखा। एक खंड काव्य डॉ. रामेश्वर प्रसाद ने भी लिखा। श्री अवध बिहारी शरण ने 2004 में एक गीत रामायण तथा श्री दिनेश्वर प्र. दिनेश ने एक 'बरवै रामायण' लिखी।

उत्तर मध्यकाल के प्रथम चरण में एक महत्वपूर्ण संत कवि थे 'मँगनी राम', वे बज्जिका भाषा में लिखते थे परंतु इनकी रचनाएँ अस्त व्यस्त होकर नष्ट हो गई। कुछ लिखित और अधिक जनश्रुति के आधार पर डॉ. अवधेश्वर 'अरूण' ने 1997 ई. में उनकी 1349 साखियों का संग्रह 'मँगनी राम ग्रंथावली' नाम से प्रकाशित किया। 2009 ई. में एक समाज सेवी श्री त्रिलोकी प्रसाद वर्मा ने भी अपनी स्व. पत्नी के नाम से एक ग्रंथमाला प्रारंभ की–जिसके प्रथम पुष्प के रूप में 'मँगनी राम रचनावली' छपी है जिसका संपादन डॉ. अवधेश्वर अरूण ने किया है। श्री दिनेश्वर प्रसाद 'दीनेश' ने 'बरवै रामायन' की रचना की। श्री रामेश्वर प्रसाद की रचना 'आम्रपालिक विजय' को भी भुलाया नहीं जा सकता।

बज्जिका व्याकरण तथा शब्दकोष– डॉ. अवधेश्वर अरूण एवं राम निवास शर्मा ने बज्जिका–हिंदी कोश सह व्याकरण लिखा तो डॉ. शारदा चरण ने बज्जिका व्याकरण बोध लिखा।

बज्जिका–साहित्य

डॉ. सुरेंद्र मोहन का कहानी संग्रह– 'बिना डोरी के बंधन' डॉ. रामविलास का कहानी संग्रह 'सतभइया', डॉ. ब्रजनंदन वर्मा का कहानी संग्रह 'कचबचिया' श्रेष्ठ कहानी संग्रहों में विख्यात है। डॉ. राम प्रवेश सिंह की कहानी– 'सोआरथी' को भी भुलाया नहीं जा सकता। हरेंद्र सिंह विप्लव ने 'वैशाली के अंगना' तथा निर्मल मिलिंद ने 'गीतिया' उपन्यास लिखा। निर्मल मिलिंद का कहानी संग्रह 'खिस्सा पेहानी' अपने आप में बेजोड़ है।

अभी–अभी डॉ. शारदा चरण ने एक कहानी–संग्रह लिखा है 'चँगेरी'

इससे पूर्व प्रो. सत्यनारायण प्रसाद ने एक कहानी संग्रह लिखा था– 'अँजुरी'

श्री रत्नानन्द झा छोटन ने श्रीमद्भागवतगीता का बज्जिका पद्यानुवाद किया है। विभिन्न विधाओं में शताधिक पुस्तकें बज्जिका में छप रही हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर में बी.ए. में बज्जिका साहित्य पढ़ाने की दिशा में कार्य चल रहा है।

पत्रिकाएँ

आज से दो–तीन दशक पूर्व डॉ. रंग शाही ने 'बज्जिका' तथा रामचंद्र विद्रोही ने 'बज्जिका–समय' पत्रिका का संपादन किया था। उसके बाद अखिल भारतीय बज्जिका साहित्य सम्मेलन से 'बज्जिका माधुरी' त्रैमासिक पत्रिका निकलने लगी जिसका संपादन बिहार विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष एवं विद्वान साहित्यकार डॉ. अवधेश्वर 'अरूण' तथा डॉ. सुरेंद्र मोहन प्रसाद ने किया। डॉ. ब्रजनंदन वर्मा सह संपादक थे। दरभंगा से भी एक पत्रिका 'बज्जिनाद' निकली जिसके संपादक शंभू अगेही थे। विगत 4 वर्षों से रौतहट–नेपाल से भी 'बज्जिकार्पण' पत्रिका निकल रही है जिसके प्रधान संपादक श्री संजय साह मित्र हैं। अभी–अभी दरभंगा से 'बज्जिका वैभव' तथा मुजफ्फरपुर से बज्जिका लोक प्रकाशित हुई है जिसके संपादक क्रमशः डॉ. ब्रह्मदेव प्र. कार्यी तथा श्री चितरंजन वर्मा कनक हैं। कोरोना संकट और आर्थिक संकट के बावजूद अभी भी निरंतर 'बज्जिका–लोक' प्रकाशित हो रही है। जिसके संपादक द्वय श्री चितरंजन वर्मा कनक तथा डॉ. शारदा चरण हैं।

राष्ट्रभाषा हिंदी में बज्जिका का योगदान

'लोगन पीयर्सल' नामक एक अंग्रेज विद्वान ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'वर्ड्स एंड इडियम्स' लिखी थी जिसका डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने अपनी पुस्तक 'मुहावरा मीमांसा' में अनुवाद किया था। डॉ. गुप्त ने पृ. 273 में लिखा है–

"एक साहित्य प्रेमी अंग्रेजी की विभाषाओं में जो सबसे पहली विशेषता पाता है, वह यह है कि उनमें आज भी बहुत से ऐसे प्राचीन शब्द सुरक्षित हैं, जिनका हमारी राष्ट्रभाषा में कोई प्रयोग नहीं होता। ..... आधुनिक साहित्य में न चलते हुए भी अशिक्षित वर्ग में बराबर बोले जाने वाले इन प्राचीन सेक्सन शब्दों की यदि सूची दी जाए, तो

कितने पृष्ठ भर जाएँ, इनकी रक्षा संभवतः ग्रामीणों के भाषा प्रेम के कारण हुई है। .....प्राचीन अंग्रेजी और फ्रेंच शब्दों में से अधिकांश ऐसे हैं, जिन्हें पढ़े–लिखे लोग नहीं समझ सकते अथवा उन्हें उनका ज्ञान प्राचीन कवियों की रचनाओं के द्वारा ही होता है।"

"अंग्रेजी की विभाषाओं और बोलियों के विषय में स्मिथ ने जो बात कही है, वही हमारी क्षेत्रीय भाषाओं, विभाषाओं में भी मिलती है। राष्ट्रभाषा हिंदी से पहले हम हिंदी की जननी भाषा संस्कृत पर ध्यान दें तो हम पाएँगे कि संस्कृत के कितने शब्द ही नहीं प्रत्युत पद भी बज्जिका के क्षेत्र में भरे पड़े हैं। आज से लगभग सात–आठ दशक पूर्व बज्जिका क्षेत्र में विद्यारंभ के समय प्रयुक्त 'ओम नमः सिद्धम्' (ओनामासी धम) तथा राम गति देहु सुमति (रमा गति देहु सुमति) आदि प्रार्थना वाक्य भूमि पर विशेष रूप से बनाए पाट पर जिसे गेरू से रंगकर गेल्हा घिसकर चिकना बना दिया जाता था, भट्टा (खल्ली) से लिखे जाते थे तथा महिलाओं के द्वारा प्रयुक्त उल्लिखित पहथ (प्रहस्त) बिलमान (विलीयमान) जुकुत (युक्त योग्य) आदि और जैन, अर्ध मागधी तथा अन्य प्राकृत के एइ लेखा (एलिक्खा) दऽढ़ (दृढ़) आदि शतशः शब्द प्राप्त होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में प्रयुक्त 'विजायेते' बज्जिका में 'विआइत' में विकसित हो गया है।"

(डॉ. योगेंद्र प्र. सिंह की पुस्तक 'बज्जिका का स्वरूप' – पृ. 34)

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो महायज्ञ हुआ उसमें एक बड़ी भूमिका प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेंद्र प्रसाद की भी थी। उन्होंने अपनी आत्मकथा के पृ. 588 पर लिखा है–

"मैं इस बात का हिमायती हूँ कि जिस भाषा का शब्द भंडार जितना भरा–पुरा होगा वह भाषा उतनी ही अधिक संपन्न होगी। यदि एक ही अर्थ में कई शब्द होंगे तो समय पाकर उनके अर्थ में थोड़ा–बहुत भेद होता जाएगा और उनमें बारीकियाँ आती जाएँगी। विचार की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की शक्ति ऐसी भाषा में अधिक होती जाएगी। जीती–जागती भाषा दूसरी भाषाओं के संपर्क से, यदि उसमें ग्रहण और संग्रह करने की शक्ति है तो, लाभ उठाती जाएगी और उसका शब्द–भंडार बढ़ता जाएगा। वह इस बात से डरकर घोंघे की तरह अपनी खपड़िया बाहर नहीं कर लेगी कि बाहर के शब्दों से, वह पिस जाएगी और अपना अस्तित्व ही खो देगी। वह हिम्मत के साथ खुले–आम संघर्ष करेगी और दूसरी भाषाओं के अच्छे भावग्राही शब्दों को अपने में मिला लेगी। हाँ, ऐसा करने में वह अपने नियमों को, अपने रूपों को नहीं बदलेंगी–अपनी पोशाक और अपनी सजावट को भले ही बदल ले और उसमें भले ही विचित्रता ले आवे।"

जब भारत परतंत्र था तब से ही हिंदी को राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा बनाने की परिकल्पना विद्वानों ने की थी। 1936 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के 25वें अधिवेशन के उपलक्ष्य में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था– "हिंदी भी यदि जीती–जागती भाषा होना चाहती है तो उसे अपने शब्द–भंडार को बढ़ाना होगा। शब्दों का एक और खजाना है जिससे हम हिंदी की शब्दावली बढ़ा सकते हैं और वह है ग्राम्य बोली में प्रचलित शब्दों का।"

बज्जिका में स्थानीय शब्दों की भरमार है जो ग्रामीण अंचलों में बोली जाती है– इन शब्दों की अर्थ एवं प्रयोग की दृष्टि से विशिष्टता है परंतु उद्गम की दृष्टि से ये संस्कृत के आधार पर बनते हैं। संस्कृत राष्ट्रभाषा हिंदी की जननी रही है– अतः इन शब्दों को हिंदी में अपनाकर राष्ट्रभाषा को समृद्ध बनाया जा सकता है। शब्दों की सूची दृष्टव्य है–

संस्कृत का द्विपत्र, त्रिपत्र – बज्जिका का दुपत्तिया, तीनपतिया

भास के नाटक चारूदत्त का चंगेरिका – बज्जिका का चंगेरा और चंगेरी

(छोटे रूप में दउरा और दउरी)

वैदिककालीन उलूखल – बज्जिका का ओखर

(वैदिक काल में हविष का जब निर्माण होता था तो उसे उलूखल में कूटा जाता था।) इसे तुष–विमोचन कहते थे।

संस्कृत–असति–असइ – अहइ – अहै – बज्जिका में – हएँ, हई–

संस्कृत – सुप्त – अर्धमागधी – सुत्ता – बज्जिका सुतल –पंजाबी – सुत्ता

संस्कृत – कर्तव्य – प्राकृत – करितब्ब, बांग्ला – करिब, बज्जिका – करब

उपमान – बहुत लंबी – बज्जिका में घोरही

संस्कृत	**हिंदी**	**बज्जिका**
महानस	रसोईघर	भानस
रोष	क्रोध	रोस
सामर्थ्य	शक्ति	सामरथ
समावेश	अंत:प्रवेश	समावेस
संध्या	सायं	संझा

कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य में एक प्रसंग में दिलीप वन में गाय चराते हुए घूमते हैं। लताएँ उन पर पुष्प वर्षा करती है– उसे 'लाजा' कहा गया है।

लाजा – लाआ – लावा – लऽवा

धान की लावाएँ बिखेरने का काम आज भी बज्जिका क्षेत्र में विवाह के अवसर पर महिलाएँ करती हैं। वर और कन्या के अभिभावक मंत्राभिपूत अपने–अपने धान बदलकर अपनी लावाएँ भूनकर वर पर तथा विवाह–बेदी पर बिखेरते हैं। यह धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सांस्कारिक विधि कालिदास के समय में भी रही होगी। इसे आज भी लाजाहोम कहा जाता है।

बज्जिका के कुछ ऐसे शब्द जो आंचलिक हैं उसका विशेष अर्थ है, इसे हिंदी में अपनाया जा सकता है। इसकी सूची लंबी है परंतु संक्षेप में कुछ शब्द निम्न प्रकारेण हैं–

अंकटा–मिसिया	–	दलहन का वह अन्न जो खाद्य नहीं होता।	अंकरा तौल	–	पक्का तौल
अखोर–बखोर	–	बेकार	अकरइत	–	देह ऐंठता हुआ
अनभुआर	–	अपरिचित	अगोरब	–	रखवाली करूँगा
अधमउगत	–	मृतवत् जीवन	दु–अछिआ	–	दो मुहाँ का चूल्हा
पकठाएल	–	व्यस्क	अदगोई–बदगोई	–	व्यर्थ की निंदा
कदवा पखार	–	धान रोपनी का अंतिम दिन	अन्हर चटकी	–	छिपकर
परिआएल	–	गर्भ धारण किया हुआ	पइकार	–	मवेशी की खरीद–बिक्री करने वाला
चोन्हराएल	–	साफ देखने की स्थिति में नहीं	पझाइत	–	दूध को मध्यम आग पर औंटना
अनगुतिया	–	सुबह	पिंडोगी	–	परेशान करने वाला
अकरखन	–	अन्याय	पेघनओना	–	बातें बनाकर कुछ माँगने वाला
अगरेस	–	अगुआ	अगधाएल	–	तृप्त
अकानइत	–	सावधान होकर सुनना	अइनगऽढ़ा	–	बातें बनाने वाला
पनछोछर	–	पानी मिल जाने से पतला द्रव	अगुअती	–	घर के आगे का स्थान
पिजाएत	–	धार तेज करेगा	अखेआस	–	स्मृति में आना
			अक्खो विक्खों हो के कनईत रहे	–	निराश्रित होकर रोता रहा।

बज्जिका के कुछ ऐसे शब्द जो अंग्रेजी के शब्दों से बनाए गए हैं जिसे आंचलिक कथाकारों ने 'परती परिकथा', मैला आँचल', 'माटी की मूरतें' आदि पुस्तकों में प्रयोग किया है–

लौन्ग क्लॉथ – लट्ठा या ननगिलाट
लैनटर्न – लालटेन या लालटेम
फोनोग्राफ – फोनूगिलास
पौडर – पाउडर
डॉक्टर – डाकदर
अलमुनियम – अलमुनिया
हारमोनियम – हरमुनियम
कम्पाउन्डर – कमपोडर
सीमेंट – सिलमिट
प्लास्टर – पलस्तर

डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने अपनी पुस्तक 'अच्छी हिंदी' के पृ. 261 में लिखा है– "हमें उचित है कि हम अपने यहाँ प्रांतीय भाषाओं के शब्दों और मुहावरों का खुले दिल से स्वागत करें। हमारे यहाँ की ग्राम्य और स्थानीय बोलियों के बहुत से सुंदर शब्द, पद क्रियाएँ, भाव व्यंजन की प्रणालियाँ और मुहावरे आदि भरे पड़े हैं जिन्हें लोग भूलने लगे हैं।"

बज्जिका के मुहावरों को एकत्रित कर हम हिंदी में उसका सदुपयोग करें तो अवश्य ही हिंदी का भंडार भरेगा। डॉ. अवधेश्वर 'अरूण' एवं डॉ. ब्रजनंदन वर्मा ने बज्जिका के हजारों मुहावरों का संकलन किया है जिसमें कुछ उदाहरण निम्न प्रकारेण हैं–

1. अॅइठी झारनाई – दंड देकर अहंकार दूर करना।
2. अन के कन करनाई – उपयोगी वस्तु को बेकार बना देना।
3. आग टांगनाई – तनाव पैदा करना।
4. उरेवी चलनाई – टेढ़ी चाल चलना।
5. कुल्हाड़ी से बैल नाथनाई – गलत साधन से काम करना।
6. कनिओ के भाई आ बरो के भाई – दोनों तरफ समर्थन देना।
7. कान पर ढेला देनाई – अनसुनी करना।
8. कचूर बुकनाई – जरूरत से ज्यादा नियम –कानून बताना।
9. कोदो देकर पढ़ल – अयोग्य शिक्षित।
10. खेखना कछनाई – जान बूझकर बहाना करना।
11. खोंप सहित कबूतराय नमः – सब कुछ लेकर चम्पत हो जाना।
12. खोइआ छोरनाई – बुरी तरह पीटना
13. गुर लाद के साओ – नकली कहानाई व्यक्तित्व धारण करना।
14. चान पर थूकनाई – सम्मानित व्यक्ति को अपमानित करना।
15. टीकी गरनाई – किसी स्थान के प्रति अतिरिक्त आकर्षण।
16. तुलसी तम्मा उठनाई – कसम खाना।
17. नओ छओ करनाई – अंतिम निर्णय करना।
18. पेट में हर हेंगा बहनाई – किसी बात को गुप्त न रख पाने की बेचैनी।
19. भोर बतिआनाई – रह–रह कर बातों का क्रम भूलना।
20. रमखोदइआ में परनाई – द्विविधा ग्रस्त होना।

लोकोक्तियाँ

1. अएले गेले हेहर भेली–कओर उठएले दूर गेली–किसी एक व्यक्ति के यहाँ बराबर जाने से अवमूल्यन होता है और बराबर खाने से घोर उपेक्षा होती है।

2. अकरब मरे न छूतहर फूटे – पापी आदमी जल्दी नहीं मरता।

3. अपन ढेढ़र न बुझाए आ दोसर के फुल्ल देखे जाए– मनुष्य को अपना अवगुण नहीं बुझाता है।

4. अबइत बहुरिया जलमइत लरिका जे लत लगाउ उहे लागत–नई बहू और नवजात शिशु को जो आदत लगाएँगे वही लगेगा।

5. कनिआ के आँख में लोरे न, लोकनी हकन्न काने – जिसके लिए दुखी हैं उसे चिंता ही नहीं।

6. करनी कुक्कुर न, नाम लखनदेई – काम नीच का और नाम ऊँचा।

7. खइह नान के कहहहउ बाबा के – लोग जिसका खाता है उसका नाम नहीं लेता।

8. खाए में चरफर कमाए में कोढ़ी – कर्तव्यहीन व्यक्ति बहुत खाता है।

9. गइओ हूँ – बछरूओ हूँ – दोनों पक्ष का समर्थक

10. गहना सब केउ पेनहइअ, चमकावे के केउ केउ जनइअ – आभूषण सभी औरतें पहनती हैं परंतु कोई–कोई प्रदर्शन करती हैं।

11. गेल जवानी फेर न लओटे केतनो घीउ मलिदा खाए– जवानी बराबर नहीं रहती।

12. घर के देवोता लल काटे पूरी खाए बहिनपा – अपने घर लोगों को भूखा रखना तथा अन्य को खिलाना–पिलाना।

13. चलनी हँसलन सूप के जिनका अपने बहत्तर गो छेद– दोषी व्यक्ति दूसरे का दोष ढूँढता है।

14. जेकर बनल असाढ़ तेकर बारहो मास – जिस किसान के खेत में धान की अच्छी उपज होती है, वह बारहों मास खुशहाल रहता है।

15. ठाँओ गुन काजर ठाँओ गुन करिखा – काजल आँख में ही शोभा देता है, अन्यत्र नहीं।

16. दही मीठ कहतरिया तीत – लाभ अच्छा लगता है परंतु लाभ देने वाला व्यक्ति पसंद नहीं।

17. नौकरी न करी तीन के–नाबालिक, मुस्मात, मतिहीन के – बच्चा, विधवा और बुद्धिहीन को नौकरी नहीं करनी चाहिए।

18. निपले पोतले देहरी पेन्हले ओढ़ले मेहरी – घर साफ–सुथरा करने से और नव विवाहिता सजावट से ही सुंदर लगती है।

19. बर बर घोड़ी दहायल जाए त पदघोरी पूछे कतेक पानी– जहाँ बड़े–बड़े योद्धा मात खा जाते हैं वहाँ छोटे की क्या विसात ?

20. बुरबरका के मेहरारू गाँव भर के भउजाई – मूर्ख व्यक्ति की पत्नी से सभी व्यंग्य करते हैं।

21. बनिआ काटे चिन्हार के, कुत्ता काटे अनचिन्हार– कुत्ता अपरिचित को काटता है परंतु आदमी परिचित को काटता है।

22. माए गुन बछरू पिता गुन घोर, न कुछ त थोरके थोर – माँ का गुण बाछा में और पिता का गुण घोड़ा में कुछ न कुछ अवश्य होता है।

23. माए के जीउ गाए सन पूत के जीउ कसाई सन – माता न कुमाता हो सकती है पुत्र भले ही क्यों न कठोर।

24. मिले मार न खोजे तारी – कुछ भी प्राप्त करना असंभव है परंतु बहुत कुछ चाहता है।

25. लबरक मउगत माघ महिना – फैशन के कारण जाड़े में पतला कपड़ा पहनना।

इस प्रकार बज्जिका मैथिली और भोजपुरी की बीच की भाषा है। भोजपुरी जहाँ ठसक कर चलती है वहाँ मैथिली ठुमक कर चलती है परंतु बज्जिका टहलते हुए चलती है। हिंदी राष्ट्रभाषा है– राज रानी है– सभी क्षेत्रीय भाषाएँ उसकी सहायिका हैं, सखी हैं– स्रोत नहीं। ये सभी भाषाएँ हिंदी का शृंगार करेंगी। यह सोच गलत है कि क्षेत्रीय भाषाओं के विकास से हिंदी कमजोर होगी।

बज्जिका भी हिंदी की शृंगारिकता, समृद्धता में सहायक हो सकती है। हिंदी की विविध विधाओं को अपनाकर बज्जिका भी समृद्ध हो सकती है। दोनों के पारस्परिक सहयोग से लाभ ही होगा, परंतु यह ध्यान रहे कि दोनों का अस्तित्व संरक्षित रहे।

इस प्रकार बज्जिका की विशेषताओं को स्वीकार कर हिंदी भी रत्न संग्रह कर सकती है। उन्नत भाषा की उन्नत संस्कृति तथा उन्नत संस्कृति की उन्नत भाषा–यही पारस्परिकता है। लोकभाषा और लोक संस्कृति–ये दोनों राष्ट्रभाषा हिंदी को राजरानी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगी– यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

– ग्राम+पो. – बेलाही नीलकंठ भाया–अथरी, जिला–सीतामढ़ी, बिहार–843311

❑❑❑

आहोम वीरांगना सती जयमती

डॉ. जिनाक्षी चुतीया

वर्तमान भारत के उत्तर–पूर्व में अवस्थित असम राज्य में आहोम नाम की एक वीर जाति ने ईसवी 1228 से 1826 तक करीब 600 साल तक शासन किया था। केवल एक ही वंश द्वारा किसी भी स्थान में लगातार इतने वर्षो तक शासन का उदाहरण भारत में ही नहीं, विश्वभर में शायद ही कहीं और हो। ऐसा नहीं कि उस तरह राज चलाने में कोई बाधा नहीं आई थी। पड़ोसी राज्यों के साथ और अन्य पहाड़ी जातियों के साथ अक्सर लड़ाई में आहोम राजाओं को व्यस्त रहना पड़ता था। इसमें भी बड़ी चुनौती थी पश्चिम से आनेवाली उस समय की सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी और आक्रामक मुगल शक्ति को प्रतिहत करना। पर सबसे भयंकर होता है अंदरूनी विद्रोह और षडयंत्र जिसके चलते विराट आहोम राज्य का भी कई बार विनाश होते–होते बचा था। ऐसे ही एक कठिन समय में किस तरह एक राजबंधु के महान त्याग और आत्मबलिदान ने राज्य और राज की रक्षा की थी, इस लेख में उसी का आभास देने का प्रयास किया गया है। उस महीयसी नारी का नाम है जयमती। अपने चरम बलिदान के कारण सती उपाधि से विभूषिता।

सती जयमती की कहानी पर जाने से पहले आहोम राजव्यवस्था और परंपरा को जानने की आवश्यकता है। आहोम राजाओं को 'स्वर्गदेओ' कहा जाता था क्योंकि उनका मानना था कि उनके पूर्वज एक सीढ़ी के द्वारा स्वर्ग से धरती पर उतर आए थे। सर्वप्रथम आहोम राजा का नाम था सु–का–फा जिन्होंने आहोम राजवंश की स्थापना की थी। सु–का–फा शान ताइ जाति के राजकुमार थे और उनके पूर्वज वर्तमान म्यानमार देश के मूंगरी–मंगूराम नामक स्थान पर राज किया करते थे। पर सु–का–फा के मन में कुछ और ही परिकल्पना थी और वह अपने साथ कुछ सामंत परिवार और करीबन 1000 सेना लेकर पाटकाई पर्वत पार करके ई. 1228 में पूर्वी असम में आ गए। उस समय इस भूखंड को कामरूप का एक खंड सौमारपीठ कहा जाता था। वर्तमान असम का शिवसागर जिला और उसका पार्श्ववर्ती इलाका ही वह स्थान था जहाँ सु–का–फा ने कदम रखा। यहाँ मराण, बराही आदि जाति के छोटे–छोटे राज्य हुआ करते थे। इन जातियों को या तो लड़ाई में हराकर, या मित्रता और वैवाहिक संबंध द्वारा अपने अधीन करके सु–का–फा ने आहोम राज्य की नींव रखी। धीरे–धीरे राज्य का विस्तार हुआ। इस ताइ जाति के लोग बल–वीर्य, साहस, रणनीति, कूटनीति आदि में उस समय की अन्य जातियों से अलग और श्रेष्ठ थे। इसलिए स्थानीय आदिवासियों ने उन्हें 'अ–सम' कहा था। अर्थात् समान नहीं है। बीते समय के साथ जुबान बदलते–बदलते 'अ–सम' अहम् और बाद में आहोम हो गया। सु–का–फा के साथ ताइ जाति के लोग

भी खुद को आहोम बताने लगे। ऐसे तो ताइ जाति के अपने अलग धर्म, संस्कृति और भाषा थी। किंतु वे यहाँ आकर बसे और जिनपर शासन करने लगे उन आम आदिवासी के धर्म, संस्कृति और भाषा को अपना बना लिया ताकि राजकाज आसान हो। ऐसे उदाहरण बहुत कम देखेने को मिलते हैं। जब राजा स्वधर्म त्याग कर प्रजा का धर्म अपना लिया। ताइ भाषा, धर्म और रीति–नीति अपने निजी काज में चलते रहे किंतु प्रजा पर यह आरोपित नहीं किया गया। प्रजा संस्कृति वैसे के वैसे ही रहे, सिर्फ शासन व्यवस्था नई आई। सु–का–फा और उनके उत्तराधिकारी राजाओं ने प्रजा को एकत्रित किया और भिन्न–भिन्न जातियों को एक शासन व्यवस्था से जोड़कर असमिया संस्कृति को जन्म दिया। सभी जातियों की खूबियों को अपनाकर असमिया संस्कृति को समृद्ध किया और आहोम राज्य का विस्तार और विकास किया। समृद्धि के शिखर में आहोम का राज्य पश्चिमी सीमा वर्तमान पश्चिम बंगाल के कुचबिहार के पास करतोया नदी तक आ गया था पर ज्यादा समय तक उसकी सीमा वर्तमान असम के बोंगाई गाँव जिले की मानाह (मानस) नदी तक ही था।

'स्वर्गदेओ' सु–का–फा के बाद 39 राजा आहोम राजगद्दी पर विराजमान हुए। सभी आहोम राजाओं का नाम 'सु' से शुरू होता था और 'फा' से खत्म। 'सु' का अर्थ है बाघ और 'फा' का अर्थ स्वर्ग। ये शब्द ताइ भाषा के हैं बाद में राजाओं ने हिंदू नाम भी लेना शुरू किया। 'स्वर्गदेओ' सु–का–फा की बनाई हुई परंपरा के अनुसार सिर्फ वही व्यक्ति राजा हो सकते हैं जिनके शरीर में सु–का–फा का रक्त प्रवाहित हो। अर्थात् सु–का–फा का वंशज ही राजा हो सकता था, न कि कोई अन्य आहोम व्यक्ति। राज्य में राजा ही सर्वोच्च और सार्वभौम क्षमता के अधिकारी थे पर उनको परामर्श देने के लिए तीन मंत्री थे। इनको 'बूढ़ागोहाईं', 'बरगोहाई' और 'बरपात्रगोहाईं' के नाम से जाना जाता था और सम्मान से इनको 'डांगरिया' संबोधित किया जाता था। 'डांगरिया' शब्द का अर्थ है ऐसे ज्येष्ठ व्यक्ति जिनका बड़ा सम्मान किया जाता है। इन तीनों मंत्रियों के अलावा किसी और को 'डांगरिया' नहीं कहा जाता था आमतौर पर राजा इन 'डांगरिया' के परामर्श को मान लेते थे और 'डांगरिया' मंत्री भी राजहित, प्रजाहित और देशहित को ध्यान में रखकर ही अपना सुझाव देते थे। शासन कार्य से क्षुद्र व्यक्ति–स्वार्थ को अलग रखा जाता था। मर्यादा में ये तीनों बराबर हैं। ये तीन 'डांगरिया' इतने शक्तिशाली थे कि तीनों मिलकर राजा को गद्दी से हटा सकते थे और नए राजा को गद्दी पर बिठा सकते थे। पर राजसभा के अलावा ये तीन 'डांगरिया' आपस में नहीं मिल सकते थे। सु–का–फा के समय स 'बूढ़ागोहाईं' और 'बरगोहाईं', ये दो ही 'डांगरिया' हुआ करते थे। पर 'स्वर्गदेओ' सु–हुंग–मुँग के समय से (सु–का–फा के समय से तीन सौ साल बाद) तीसरे 'डांगरिया' यानि 'बरपात्रगोहाई' भी जोड़े गए। तीन 'डांगरिया' के पद पर पदासीन होने के लिए इनके वंशज को ही आमतौर पर चुना जाता था। पर कभी–कभी अन्य वंश के योग्य व्यक्ति को भी राजा द्वारा चयनित किया जाता था। राजा के पास यह क्षमता थी कि वो अपने 'डांगरिया' को पदच्युत कर सकते थे और नए 'डांगरिया' नियुक्त कर सकते थे। इन 'डांगरिया' पर अन्य कोई भी अधिकारी हुक्म नहीं चला सकते थे। ये सिर्फ राजा की मर्जी पर ही काम करते थे। कई युद्धों में ये 'डांगरिया' सेनापति का दायित्व भी निभाते थे। अन्य शब्दों में कहा जाए तो ये तीन 'डांगरिया' आहोम राज्य के मुख्य आधार थे।

जब आहोम राज्य का विस्तार हुआ, सन् 1611 और 1649 क बीच स्वर्गदेओ सु–चेंग–फा (प्रताप सिंह) ने दो और राजपद बनाए 'बरबरुआ' और 'बरफुकन'। 'बरबरुआ' राजधानी में प्रशासन चलाने के लिए मुख्य अधिकारी थे। और गुवाहाटी में राजा के प्रतिनिधि के रूप में शासन चलाते थे– 'बरफुकन' नामक अधिकारी। मर्यादा में 'बरबरुआ' और 'बरफुकन' बराबर थे पर दूर रहने के कारण 'बरफुकन' कुछ ज्यादा शक्तिशाली थे। राजधानी में राजा और तीन 'डांगरिया' के नीचे ही 'बरबरुआ' का स्थान था ये राज्य के मुख्य विचारक थे और

अन्य अधिकारी और सैनिक के मुखिया थे। इसके अतिरिक्त इन उच्च पदाधिकरियों के नीचे कई और अधिकारी थे, जैसे, राजखोवा, फुकन, बरुआ, नेओग, हज़ारिका, सईकिया, बोरा, चेतिया, आदि। ये सभी अपने काम, मर्यादा, क्षमता, सैन्यबल, इत्यादि पर आधारित पदाधिकारी थे और सभी के अपने लिए निर्धारित कर्तव्य और कार्यक्षेत्र थे। राजा के कोतवालों को 'चाओडांग' कहते थे और इनके मुख्य अधिकारी को 'चाओडांग बरुआ' कहा जाता था। राजा सवारी के रूप में हाथी, घोड़ा और दोला (पालकी) का प्रयोग करते थे। किंतु अक्सर दोला (पालकी) का ही उपयोग होता था। इसलिए उनके प्रधान अंगरक्षक को 'दोलाकाखोरिया बरुआ' कहा जाता था। इसका अर्थ है ऐसा अधिकारी जो राजा का दोला यानि पालकी के करीब हमेशा रहता है।

राजा का निधन होने पर उनका पुत्र राज गद्दी पर बैठता था। पर हमेशा यह जरूरी नहीं था। अगर स्वर्गीय राजा का कोई पुत्र योग्य नहीं था, तो उन तीन 'डांगरिया' को हक था कि वे राजवंश के किसी भी योग्य व्यक्ति का राजा के लिए चयन करें और राजपाट पर बिठाए। 600 साल के इतिहास में ऐसे कई मौके आए जब राजा का पुत्र राजा नहीं बना। बल्कि राजा का भाई, भतीजा या राजवंश के अन्य व्यक्ति राजा हुए। पर ऐसा करने में दो बातों को हमेशा ध्यान में रखा गया– एक, कि उनके शरीर में राजरक्त प्रवाहित हो यानि वह 'स्वर्गदेओ' सु–का–फा का वंशज हो और दूसरा, उनके शरीर में कोई खोट न हो।

एक राजा के निधन पर जब भी नए राजा का चयन करना पड़ा, तीन 'डांगरिया' और अन्य अधिकारियों ने भी हमेशा उपर्युक्त दोनों बातें ध्यान में रखी और कभी कोई उल्लंघन नहीं किया गया। ऐसे आहोम राज गद्दी पर एक के बाद एक 'स्वर्गदेओ' विराजमान हुए और अपने तीन 'डांगरिया' और अन्य अधिकारियों की सेवा से एक मजबूत और कुशल शासन व्यवस्था राज्य में प्रतिष्ठित हुई। प्रजा सुखी और सुरक्षित रहने के कारण कृषि और वाणिज्य में प्रगति हुई और देश की समृद्धि बढ़ी। आहोम राजा के शासन में असम की यह समृद्धि मुगल सम्राट औरंगजेब को खल रही थी। उन्होंने असम आक्रमण के लिए बंगाल के शासक मीर जुमला को आदेश दिया। उस समय सन् था 1661 ई. में 'स्वर्गदेओ' जयध्वज सिंह आहोम राज सिंहासन पर विराजमान थे– राजा को इस आपदा का सही अनुमान नहीं हुआ और युद्ध की तैयारी ठीक से नहीं हुई। परिणाम यह था कि मीर जुमला के नेतृत्व में मुगल सेना ने आसानी से गुवाहाटी में प्रवेश किया और वह राजधानी गड़गाँव (वर्तमान शिवसागर जिला) की तरफ बढ़ा। मुगल सेना की बढ़ती रफ्तार को देखकर राजा जयध्वज सिंह राजधानी छोड़कर चराईदेओ पहाड़ी दिशा में भाग गया। मीर जुमला ने बिना किसी अवरोध से राजधानी गड़गाँव में प्रवेश किया और वहीं अपना डेरा डाला। पर अगला साल सन् 1662 ई. में बरसात के समय मुगल सेना को काफी तकलीफें हुईं और बहुत सैनिकों की मौत हो गई। इतने में राजा जयध्वज सिंह चराईदेओ से वापस आए और अपना राज बचाने के लिए संधि का प्रस्ताव रखा। बढ़ती कठिनाइयों को देखकर मीर जुमला भी संधि करने को तैयार हो गए। इस संधि के अनुसार राजा जयध्वज सिंह को मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकारनी पड़ी और हर साल लगान चुकाने को भी राजी होना पड़ा। इसके अतिरिक्त कोई सौ हाथी, अन्य बहुमूल्य चीजें और नगद धन उसी समय देना पड़ा। साथ ही एक आहोम राजकन्या को मुगल हरम में भेजना पड़ा। जयध्वज सिंह को राज सिंहासन वापस देकर मीर जुमला ने गुवाहाटी में मुगल चौकी में कुछ सेना और अधिकारी बहाल किए। असम का मौसम उनको नहीं भाया और बीमार शरीर से ही ढाका की ओर बढ़ चला। पर वर्तमान असम के धुबुरी जिले में मीर जुमला का निधन हो गया। (धुबुरी जिले में आज भी मीर जुमला का मकबरा उपस्थित है।)

उधर 'स्वर्गदेओ' जयध्वज सिंह की भी सेहत बिगड़ने लगी। वो प्रतापी आहोम राजा जो अपने 400 साल के राज में कभी किसी विदेशी शक्ति के अधीन न रहा, अब मुगल के आगे सर झुकाकर

भला कैसे रह सकता है। इसी ग्लानि से पीड़ित होकर 'स्वर्गदेओ' जयध्वज सिंह ने केवल नौ साल राज करने के बाद सन् 1663 ई. में अपनी देह त्याग दी। आहोम सिंहासन पर नए 'स्वर्गदेओ' चक्रध्वज सिंह विराजमान हुए। उसी समय गुवाहाटी के मुगल फौजदार फिरोज खान ने समय पर पेशगी न मिलने पर कड़ी बात सुनाई। आत्माभिमानी स्वर्गदेओ ने कहा कि, 'मुगल के अधीन होने से मृत्यु ही अच्छी है' और बाकी पेशगी देने से मना कर दिया। उन्होंने दरबार बुलाकर पिछली लड़ाई में हार का कारण खोजा। विचार–विमर्श के बाद यह पाया गया कि सेना और रण–सामग्री की कमी नहीं थी, लेकिन सही रणनीति और नेतृत्व का अभाव ही इस हार का कारण है। 'स्वर्गदेओ' चक्रध्वज सिंह ने आदेश दिया कि युद्ध की तैयारी की जाए। असम में आहोम राज में स्थाई सैन्यबल नहीं हुआ करता था। जरूरत के अनुसार सैनिकों की भर्ती होती थी और स्थानीय अधिकारी को भी अपने अनुचरों के साथ युद्ध में भाग लेना होता था। इस समय भी नए सैनिकों की भर्ती और उनको प्रशिक्षण देने में 'डांगरिया' सहित सभी अधिकारी जुट गए। साथ ही युद्ध में प्रयोग होने वाले हथियार और अन्य सामग्री भी इकट्ठी होने लगी। राजा स्वयं ही सभी तैयारियों की समीक्षा करते थे और नए सैनिकों को अस्त्र संचालन करना सिखाते थे। इसे देखकर सैनिकों का मनोबल बढ़ा। लाचित बरफुकन को इस विशाल सेना का मुख्य सेनापति बनाया गया। अनुभवी और दूरदर्शी मंगी आतन बूढ़ा गोहाईं को सन् 1668 ई. में लाचित बरफुकन के नेतृत्व में आहोम सेनाओं ने मुगल फौज को युद्ध में हराकर गुवाहाटी में प्रवेश किया और फिरोज खान, सय्यद साना को बंदी बना लिया। इस विजय की सूचना पाकर 'स्वर्गदेओ' चक्रध्वज सिंह ने प्रसन्नता से कहा, 'अब मैं शांति से आहार ग्रहण कर सकता हूँ'।

उधर मुगल बादशाह को भी आहोम राजा की इस युद्ध–यात्रा की खबर हो गई और उन्होंने अम्बर (आमेर) के राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह को सेनापति बनाकर एक विशाल सेना असम आक्रमण के लिए रवाना की। दोनों पक्षों के बीच गुवाहाटी में दो साल तक कई लड़ाइयाँ हुईं। सन 1670 ई. में शराइघाट की निर्णायक लड़ाई में आहोम सेना ने मुगल सेना को पराजित किया और मुगल सेना को पीछे हटना पड़ा। लाचित बरफुकन के कुशल नेतृत्व में आहोम सेना ने ऐसी वीरता का प्रदर्शन किया कि मुगल सेनापति राम सिंह भी शत्रु सेना की प्रशंसा कर गए कि, 'धन्य राजा, धन्य मंत्री, धन्य सेनापति, धन्य सेना'।

राजा चक्रध्वज सिंह किसी लाइलाज बीमारी से पीड़ित होकर सन् 1669 ई. में स्वर्गवासी हुए और उनके भाई 'स्वर्गदेओ' उदयादित्य सिंह सिंहासन पर बैठे। मुगल के साथ अंतिम लड़ाई जो शराइघाट में सन् 1670 ई. में लड़ी गई, इन्हीं के समय में हुई। उधर लाचित बरफुकन ने अपनी वीरता और पराक्रम से आहोम राजा को जीत तो दिलाई पर तीन साल तक रात–दिन कठिन परिश्रम से उनका शरीर टूट चुका था और उनका भी देहांत हो गया। लाचित के बड़े भाई– लालूकसोला को गुवाहाटी का नया बरफुकन बनाया गया। नाम लिया।

'स्वर्गदेओ' उदयादित्य सिंह के राज से ही शुरू हुआ आहोम राजा और राज्य का काला अध्याय। इनकी ही राजधानी के मुख्य अधिकारी डेबेरा बरबरुआ ने सिंहासन के खिलाफ साजिश रची और राजा की चराईदेओ पहाड़ ले जाकर विष पिलाकर हत्या कर दी और राजा के छोटे भाई को सन 1672 ई. में नया 'स्वर्गदेओ' घोषित कर दिया। नाम दिया गया 'स्वर्गदेओ' रामध्वज सिंह ऐसा पहली बार हुआ कि एक पदासीन राजा को उनके तीन 'डांगरिया' ने नहीं बल्कि एक अधिकारी ने हटाया और नए राजा को तख्त पर बिठाया गया। डेबेरा बरबरुआ का यह अन्याय और अनीति देखकर भी 'डांगरिया' मंत्री कुछ नहीं कर सके क्योंकि बरबरुआ ने षड्यंत्र का ऐसा जाल रचा था कि राजधानी में कौन अधिकारी और रक्षक किसके पक्ष में है, कोई नहीं कह सकता था। अब डेबेरा बरबरुआ ही आहोम राज्य का भाग्य नियंता बन गया क्योंकि राजा को तो उसने ही राजपाट

दिलाया था। जब राजा ने डेबेरा बरबरुआ को नियंत्रित करने की कोशिश की, तब सिर्फ दो ही साल शासन के बाद सन् 1674 ई. में इस राजा की हत्या कर दी गई। साथ ही राजा के सारे उत्तराधिकारी भी मार दिए गए। डेबेरा बरबरुआ ने सु–हुंग नाम के एक कुँवर को राजा घोषित कर दिया। नए राजा ने विधर्मी और अत्याचारी डेबेरा बरबरुआ को मारने का उपाय रचा था। पर एक दासी से यह बात जानकर डेबेरा बरबरुआ ने राजा सु–हुंग को विष पिलाकर उसकी हत्या कर दी। राजा सु–हुंग सिर्फ एक महीने के लिए सिंहासन पर रहे। फिर डेबेरा बरबरुआ ने गोबर कुँवर को गद्दी पर बिठाया। पर यह राजा भी सिर्फ 20 दिन तक ही सिंहासन पर बैठ पाए। एक 'डांगरिया' आतन बूढ़ागोहाई, जो लाचित बरफुकन के साथ गुवाहाटी में मुगल से लड़ाई में व्यस्त थे, अब वापस आ गए और अन्य आला अधिकारियों से मिलकर डेबेरा बरबरुआ के मनोनीत राजा गोबर कुँवर की हत्या कर दी। साथ ही डेबेरा बरबरुआ को पकड़कर अत्यंत कठोर दंड देकर मार दिया। इस तरह अत्याचारी डेबेरा बरबरुआ का अंत हुआ। आतन बूढ़ागोहाई ने सु–जिन–फा कुँवर को नया राजा घोषित किया। पर तीन साल शासन के बाद सन् 1677 ई. में आतन बूढ़ागोहाई द्वारा इस राजा का अंगक्षत करके उसे सिंहासन के अयोग्य घोषित किया गया और इस दुख से पीड़ित होकर राजा ने आत्महत्या कर ली। कुँवर सु–दै–फा को नया राजा घोषित किया गया। इस बीच 'डांगरिया' आतन बूढ़ागोहाई को एकाधिक बार आहोम राजसिंहासन पर बैठने का मौका मिला था और अन्य आला अधिकारी भी इनके पक्ष में थे क्योंकि ये अत्यंत कुशल और दूरदर्शी प्रशासक थे। पर आहोम राजपरंपरा की दुहाई देकर 'डांगरिया' आतन बूढ़ागोहाई ने इसे अस्वीकार किया था।

स्वर्गदेओ सु–दै–फा को सिंहासन पर बिठाकर 'डांगरिया' आतन बूढ़ागोहाई ही कार्यतः शासन चलाने लगे। इसी बात से गुवाहाटी में लालूकसोला बरफुकन घबराने लगा क्योंकि उसके मन में आहोम राजवंश को खत्म करके खुद ही राजा बनने की लालसा थी। उसने साजिश रची और मुगल फौजदार मंसूर खान को युद्ध के बिना ही गुवाहाटी में प्रवेश करने का मौका दिया और खुद कलियाबर (वर्तमान नगाँव जिला) वापस आ गया। शर्त यह थी कि आहोम राजगद्दी प्राप्त करने में लालूकसोला बरफुकन को मुगल सेना की मदद करेगा। विधि की क्या विडंबना थी कि जिस लाचित बरफुकन ने गुवाहाटी से मुगल को खदेड़ने के लिए दिन–रात एक करके युद्ध किया, उसी के अपने भाई लालूकसोला ने अपने स्वार्थ के लिए उसी शत्रु को गुवाहाटी भेंट कर दिया। 'डांगरिया' आतन बूढ़ागोहाई को इस बात का पता चला और उन्होंने स्वर्गदेओ का आदेश खुद लालूकसोला बरफुकन को पकड़ने के लिए सैन्य यात्रा की। पर शातिर लालूकसोला ने आतन बूढ़ागोहाई सहित सभी राजकीय सैन्यदल को बंदी बनाया और आतन बूढ़ागोहाईं का खुद की आज्ञा से वध करवाया। अपने अधीन अधिकारी और सैनिकों के साथ राजधानी पहुँचकर स्वर्गदेओ सु–दै–फा को भी बंदी बना लिया गया।

आतन बूढ़ागोहाई की हत्या के बाद लालूकसोला बरफुकन आहोम राज्य का सर्वेसर्वा हो गया। उसने सन् 1679 ई. में सु–लिक–फा को 14 साल की आयु को राजकुमार (कुँवर) के सिंहासन पर बिठाया और अपना स्थान पक्का करने के लिए अपनी पाँच साल की कन्या से राजा का विवाह कर दिया। राज–आदेश से सबसे पहले बंदी राजा सु–दै–फा का वध करवाया। बाकी 'डांगरिया' और अधिकारी अपने हिसाब से राजा द्वारा मनोनीत करवाए। अब नाम के लिए सु–लिक–फा 'स्वर्गदेओ' था। पर शासन चलता था लालूकसोला बरफुकन का। उसने नई उपाधि पाई– 'मंत्रीफुकन'। लालूकसोला बरफुकन इससे ही खुश नहीं था। बल्कि उसका इरादा स्वयं सिंहासन पर बैठना था। किंतु सदियों पुराने नियम को कैसे तोड़ सकता था वह! उसमें तो राजरक्त प्रवाहित नहीं था। उसका यह इरादा तभी पूरा हो सकता है जब आहोम राजवंश का कोई भी व्यक्ति सिहांसन के लिए उपयुक्त नहीं रहेगा। इसका मतलब था कि राजवंश के सभी कुँवर या तो मार

दिया जाए, या उनका अंगक्षत कर दिया जाए। लालूकसोला बरफुकन ने ऐसा ही किया। उसने बालक राजा को समझाया कि उनके सिहांसन को खतरा है और सिंहासन के सभी दावेदारों को खत्म करने की अनुमति दी जाए। बालक राजा और कर भी क्या सकता था। न ही लालूकसोला बरफुकन के षडयंत्र को समझने की उसमें शक्ति थी। राजा का आदेश पाकर लालूकसोला बरफुकन ने चारों और अपने घातक भेज दिए और राजयोग्य कुँवरों को चुन–चुन कर मार दिया गया या अंगक्षत किया गया। चारों ओर आतंक का माहौल छा गया। राज–क्षमता पाकर लालूकसोला बरफुकन और उसके विश्वस्त अधिकारियों का अत्याचार दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया और प्रजा भी त्रस्त रहने लगे।

उस समय का एक राजयोग्य कुँवर था गदापाणि। वह बहुत ही बलशाली, बुद्धिमान और कर्मठ था। शरीर भी उसका अति विशाल और निरोगी था। उनके पिता गोबर कुँवर को डेबेरा बरबरुआ ने राजा बनाया भी था पर बीस दिन बाद ही उनकी हत्या कर दी गई थी। इस हिसाब से सिंहासन पर इनका दावा और भी अधिक था। लालूकसोला बरफुकन के लिए सबसे बड़ा खतरा तो गदापाणि कुँवर से ही था। इसलिए गदापाणि कुँवर की छानबीन शुरू हो गई। इस गदापाणि कुँवर की पत्नी थी सती जयमती। जयमती खुद भी मंत्री लाइथेपेना बरगोहाई की पुत्री थी और उनको राजनीति का अच्छा ज्ञान था। दूरदर्शी जयमती को यह एहसास हो गया था कि अब उनके पति गदापाणि की बारी है। उनको यह भी विश्वास था कि इस कठिन समय से अगर आहोम राज्य की कोई रक्षा कर सकता है तो वह उनके पति। इसलिए उसने अपने पति गदापाणि को भागने के लिए कहा। पर गदापाणि जाने को तैयार नहीं था। जयमती ने समझाया, अपने प्राण रक्षा के लिए नहीं, पर इस सुंदर असम राज्य जिसे समृद्धिशाली बनाने के लिए उनके पूर्वजों ने कठिन श्रम किया और कई बलिदान दिए, उसे बचाने के लिए गदापाणि को भागना पड़ेगा। अपने प्राण से भी प्रिय प्रजा को अत्याचारी सामंत और विदेशी शक्ति से बचाने के लिए उन्हें भागना ही होगा। राजा की क्षमता को खुद इस्तेमाल करके लालूकसोला बरफुकन जैसे लोभी अधिकारी का लोभ इतना बढ़ चुका है कि ये अपने स्वार्थ के लिए अपनी प्रजा को कभी भी बलि चढ़ा सकता है। गुवाहाटी को तो लोभी लालूकसोला ने मुगल को सौंप दिया। राज्य की अंदरूनी अवस्था को देखकर पड़ोसी जाति ने भी सीमा पर अत्याचार शुरू कर दिए थे। आला अधिकारियों के अत्याचार और कुशासन से राज्य को बचाने के लिए एक शक्तिशाली राजा को सिंहासन पर बैठना पड़ेगा। गदापाणि के सिवा इस समय कौन ऐसा कुँवर है?

इस तरह जयमती ने गदापाणि के समक्ष कई ऐसे तर्क रखे और अंत में वे भागने को राजी हुए। लालूकसोला बरफुकन के आदमियों के हाथ लगने से पहले ही गदापाणि आहोम राज्य की सीमा पार करके नगा पहाड़ (वर्तमान नागालैंड) पहुँच गए और अपने कुछ नगा मित्रों के साथ रहने लगे। उस समय उनके दो नाबालिग बेटे थे– लाइ कुँवर और लेचाड़ कुँवर। जयमती ने चिंता की– ये भी तो राजकुँवर हैं। इनकी जान को भी खतरा है और एक आया के साथ अपने प्रिय पुत्रों को भी चुपके से अपने मित्र नगा मुखिया के घर भेज दिया। जयमती ने देश के लिए खुद को पुत्रों और पति से अलग कर लिया।

जब गदापाणि को राजकीय सेना यानी 'चाओडांग' नहीं पकड़ पाए तो जयमती से पूछताछ की गई पर उनको कोई जवाब नहीं मिला। जब यह खबर लालूकसोला बरफुकन को पता चली, तो वह गुस्से से लाल हो उठा और जयमती को राजसभा में हाजिर होने का आदेश दिया। जयमती एक राजवधू थी। पर राजवधू की मर्यादा तोड़ कर एक साधारण अपराधी की तरह उन्हें राजसभा में पेश किया गया। बालक राज सु–लिक–फा के सामने लालूकसोला बरफुकन ने जयमती से गदापाणि का पता बताने को कहा। जयमती ने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया। लालूकसोला बरफुकन ने घोषणा की यह राजद्रोह है और 'चाओडांग' को आदेश दिया कि शारीरिक कष्ट

देकर जयमती से गदापाणि का पता मालूम किया जाए। राजवधू जयमती को राजधानी के बाहर एक मैदान में ले जाया गया जिसका नाम था जेरेंगा पथार। वहाँ एक काँटेदार पेड़ से जयमती को बाँधा गया और तरह–तरह के अमानुषिक कष्ट दिए गए। शरीर पर विषैले कीट छोड़े गए, गरम पानी डाला गया, चाबुक से पीटा गया। किंतु अपार मानसिक शक्ति की अधिकारिणी जयमती ये सारे दर्द सहती गई। उनका एक ही मकसद था– देश को बचाना, प्रजा को बचाना। पर थी तो वह मानव देह ही। वह भी सुखभोग में अभ्यस्त राजवधु की। लगातार 14 दिन तक कष्ट सहने के बाद उन्होंने देह त्याग दी। पर पति का पता नहीं बताया। इस खबर से पूरे राज्य में हाहाकार मचा। सब मन ही मन लालूकसोला बरफुकन और बालकराजा सु–लिक–फा को बद्दुआ देने लगे पर डर के मारे खुल के कुछ बोल नहीं पाए। यहाँ तक कि कई अधिकारी और सेना भी नाखुश थी। 'चाओडांग' सैनिक, लालूकसोला बरफुकन के आदेश पर जिन्होंने जयमती पर अत्याचार किया था, उनका भी मनोबल टूट चुका था कि ऐसे अमानवीय कार्य उनसे करवाया गया। जयमती के इस बलिदान ने आहोम राज अधिकारियों की आँखें खोल दी। वे भी इस अराजकता का अंत चाहते थे। तीन 'डांगरिया' और अन्य अधिकारी राजा को हटाना चाहते थे पर लालूकसोला बरफुकन के डर से कोई पहल नहीं कर रहा था। क्या पता, अगले ही पल उसी का खून हो जाए।

इतिहास साक्षी रहा है कि अत्याचार अनंत काल तक नहीं चलता। शासक जितना भी क्षमताशाली और अत्याचारी हो, उसका अंत होना अनिवार्य है। ऐसा ही लालूकसोला बरफुकन के साथ भी हुआ। एक रात उसके ही अंगरक्षक ने उसकी हत्या कर दी। अब राजा सु–लिक–फा को हटाया जा सकता है। पर राजा बनाएँ तो किसको बनाएँ? क्योंकि लगभग सभी राजयोग्य कुँवरों को या तो मार दिया गया, या उनका अंगक्षत कर दिया गया। गदापाणि कुँवर अब तक लापता थे। पर गदापाणि कुँवर, जो नगा पहाड़ में भाग गया था, नगा मित्रों के साथ मिलकर वापसी की राह देख रहा था। कुछ नगा युवाओं को सैनिक शिक्षा भी दी और युद्ध की तैयारी भी जारी रखी। पर था तो गदापाणि देशभक्त आहोम राजकुँवर। किसी बाहरी शक्ति–साथ मिलकर अपने लोगों से लड़ना भी उनको मंजूर नहीं था। पर जब उन्हें अपनी प्राणाधिक पत्नी जयमती कुँवर की मृत्यु गाथा का पता चला, उनसे रहा नहीं गया और अकेले ही नगा पहाड़ से नीचे आ गया। उनके कुछ मित्र, जिनसे वो संपर्क में थे, से पता चला कि लालुकसोला की भी मौत हो गई है। पर सु–लिक–फा तो अब भी राजा था अकेले उससे भिड़ना विपरीत हो सकता है। क्योंकि अब भी यह नहीं पता कौन उसके साथ है और कौन खिलाफ। सेना और आला अधिकारी तो सिंहासन के प्रति समर्पित होते हैं। ऐसे में सिंहासन पर बैठे राजा के खिलाफ जाना राजद्रोह है। अगर उनको राजा बनना है तो तीन 'डांगरिया' और अन्य अधिकारी को उन्हें राजा स्वीकारना होगा। उनका जीजा बंदर बरफुकन उस समय कलियाबर में आहोम चौकी का कमान संभाले हुए थे, और वो लालूकसोला से नाखुश थे पर राजधानी से दूर रहने के कारण कुछ कर भी नहीं सकता था। गदापाणि और उनके साथी कलियाबर पहुँचे और अपनी बहन द्वारा बरफुकन को खबर पहुँचाई। बंदर बरफुकन ने तुरंत अपने अधीन सभी अधिकारियों को एकत्रित किया और गदापाणि को नया राजा घोषित करके प्रणाम किया। अगले ही दिन बंदर बरफुकन के नेतृत्व में उनकी फौज नए राजा को लेकर राजधानी गड़गाँव के लिए रवाना हुई। गड़गाँव पहुँचकर सु–लिक–फा को हटाकर सन् 1681 ई. में गदापाणि आहोम सिंहासन पर बैठे और नाम लिया 'स्वर्गदेओ' सु–पात–फा (गदाधर सिंह)। सु–लिक–फा को प्राण से न मारकर देशांतरित कर दिया। विगत समय में इस नरसंहार से जुड़े जितने भी आला अधिकारी दोषी पाए गए, सबको कठोर दंड दिया गया। अपने पुत्र, जिनको जयमती ने नगा पहाड़ पर गुप्त रूप से रखा था, को वापस लाया गया। अति कठोरता और कुशलता से राज्य के पुननिर्माण

में नए 'स्वर्गदेओ' जुट गए और आहोम राज्य, जो विनाश होते–होते बचा था, को एकबार फिर से शक्तिशाली शासक मिला। निरंजन बरफुकन को लाने सेनापति बनाकर मुगल से गुवाहाटी वापस के लिए सेना भेजी। इस लड़ाई में मुगल फौज बुरी तरह हारी और आहोम सेना ने मानाह नदी तक उनका पीछा किया। अब आहोम राज्य की पश्चिमी –सीमा मानाह नदी हुई। इस तरह जयमती ने अपने बलिदान से न ही अपने पति और पुत्रों को बचाया, बल्कि राज्य को भी विनाश से बचाया और आहोम राज्य अगले 150 साल तक बरकरार रहा।

स्वर्गदेओ गदाधर सिंह के निधन के बाद सन् 1695 ई. में उनके पुत्र लाइ कुँवर ने स्वर्गदेओ सु–ख्राड–फा (रुद्र सिंह) सिंहासन पर विराजमान हुए। अपनी महीयसी मातृ जयमती के त्याग और बलिदान को अमर करने के लिए उसने जेरेंगा पथार में एक सागर सदृश तालाब खुदवाया और प्रजा को समर्पित किया। इस तालाब को 'जयसागर' नाम दिया गया। इसके किनारे एक मंदिर का निर्माण करवाया गया जिसको नाम दिया 'जयदौल'। इसी जयसागर की उत्तर दिशा में उन्होंने एक नए नगर का निर्माण करवाया, नाम रखा 'रंगपुर'। यह रंगपुर नगर ही अगले 150 साल तक आहोम राज्य की राजधानी रहा। इस आहोम वीरांगना पर सन् 1935 ई. में ज्योतिप्रसाद अगरवाला ने पहली असमिया फिल्म का निर्माण किया। भारत का इतिहास रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई होल्कर, रानी दुर्गावती, रजिया सुल्तान, आदि कई वीरांगनाओं की अमर कथा से समृद्ध है और हम सब इन महीसयी नारियों के साहसिक कार्य और त्याग को गर्व और आदर से याद करते हैं। सती जयमती के त्याग और आत्मबलिदान को भी असम में बड़े आदर से याद किया जाता है, पर भारतीय इतिहास में इसका जिक्र शायद ही कहीं मिलता है। उत्सुक शिक्षार्थी सती जयमती पर शोध कार्य कर सकते हैं ताकि इस गरिमामयी नारी की कथा को भारतीय इतिहास की मूल धारा से जोड़ सकें जिससे भारतीयता और समृद्धशाली होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. असमर बुरंजी, पद्मनाथ गोहांइबरुवा (असमिया)

2. आहोमर दिन, डॉ. सूर्यकुमार भूऑ (असमिया)

3. सातसरी असम बुरंजी, डॉ. सूर्यकुमार भूऑ (असमिया)

4. दि आहोम, अरूप कुमार दत्ता

5. A History of Assam, Sir Edward Gait
ए हिस्ट्री ऑफ असम, सर एडवर्ड गेट!

– सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग, बी. एच. कॉलेज, हाउली, बरपेटा, असम

❑❑❑

औपनिवेशिक भारत में कला–इतिहास लेखन : चुनौती और मुद्दे

रिपुंजय कुमार ठाकुर

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान त्स्वावेशो उनमीवो भवा नः।
यात्तवेमहे प्रति तत्रो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

ऋग्वेद, 7.54.1.

इतिहास के अभिन्न अंग भारतीय कला इतिहास अपनी सांस्कृतिक और क्षेत्रीय व्यापकता के कारण 19वीं शताब्दी से ही विद्वानों के मध्य निरंतर चर्चा का केंद्र रहा है। भारतीय कला एवं इसकी विद्या का परिचय विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, पुरातात्विक स्रोतों चाहे वो मिट्टी से बने बर्तन हों या स्वर्ण निर्मित सिक्के, विभिन्न वास्तुकला शैली के पुरातन स्मारक अनेक संप्रदायों/विश्वास मतों के मंदिर, देवी– देवताओं की मूर्तियों के पत्थर, अभिलेखों हीरों की प्रशस्तियाँ, कई भाषाओं और समुदायों से यात्रा करते हुए विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न ढंगों तथा विधाओं से होता है। किसी भी सभ्यता या संस्कृति के कला तथा शिल्प का इतिहास–लेखन एक जटिल कार्य होता है, क्योंकि कला न केवल समकालीन समाज अपितु उसके भविष्य से भी प्रक्रियात्मक रूप से जुड़ी होती है। भारतीय कला, व इतिहास संस्कृति के उस क्रमबद्ध विकास को दर्शाता है जिसमें शिल्प–कला–वास्तु एवं पुरातात्विक साक्ष्य के विभिन्न प्रकार और काल हैं लेकिन उनके समय अंतराल के पश्चात् भी अनेक समानताएँ दृष्टिगत होती हैं।

धर्म, रहस्य अथवा पौराणिक कथाओं का मिश्रित अध्ययन भारतीय कला के इतिहास को समझने में बहुत सहायक है, ऐसा नहीं है कि किसी मूर्ति का स्वतंत्र अध्ययन उसके भौतिक साक्ष्य के आधार पर नहीं हो सकता लेकिन इतिहासकारों ने भारतीय कला, इतिहास अध्ययन के आरंभिक समय उन्नीसवीं शताब्दी में ही यह महसूस किया कि मूर्तियों, स्मारकों तथा अन्य शिल्पीय पुरातात्विक स्रोतों का अध्ययन उस समय के ग्रंथों के अंतर्संबंध में किया जाए तो परिणाम बेहतर आ सकते हैं साथ ही अनेक ऐसे मुद्दे सुलझ सकते हैं जो संदेहजनक हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथ अपनी साहित्यिक प्रकृति में प्रबंधनीय (बौद्धिक कल्पना सत्य का मिलन हो सकता है) हो सकता है परंतु उस समय के परंपरा एवं प्रभाव से बिल्कुल भिन्न नहीं और संभवतः यही प्रमुख कारण है कि शिल्प–कला को लेकर पश्चिमी संस्कृति की सर्वोच्चता को सिद्ध करने वाले साम्राज्यवादी विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित 'यूनान–रोमन से प्रभावित वास्तु–शिल्प तथा कला' सिद्धांत की प्रतिक्रिया में पश्चिमी संस्कृत ग्रंथों का विस्तृत अध्ययन कर यह दिखाया कि भारतीय कला और वास्तु–शिल्प का अपना एक अलग स्थानीय अस्तित्व है और यह कला इतिहास में द्वंद्व–विरहित है।

कला इतिहास में मंदिर का योगदान विशिष्ट है विशेषकर जब हम भौतिक अवशेषित स्मारकों तथा इसके वास्तु–शिल्प को एक संरचनात्मक ढंग से ग्रंथों के अध्ययन के सहयोग द्वारा समझते हैं। भारतवर्ष में एक धार्मिक संस्थान तथा पूजन–स्थल के रूप में मंदिरों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है।

भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में मंदिरों ने अपनी एक विविध विकास यात्रा तय की है। मंदिर मूलतया अपने आकार–प्रकार तथा बनावट के लिए इस बात पर निर्भर रहे कि उनमें किस देवता की स्थापना है? उनकी पूजन–विधि किस प्रकार की है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर हमें प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कारीगर तथा शिल्पी, एक ही श्रेणी के लोग थे। जिनके निर्माण के ढंग, बनावट एवं स्थापत्य की शैली में भिन्नता थी किंतु एक जैसा ही सिद्धांत था।[1] वे पंडितों के साथ मिलकर काम करते थे जिन्हें कर्मकांड आराध्य के वैशिष्ट्य तथा उसकी पूजा–कांड विधि की समझ थी। वे मिलकर मंदिर का प्रारूप तैयार करते थे और उनमें समय के साथ नई परंपराओं का समावेश भी करते थे जो स्थिति विशेष में आवश्यक होती थी। मूर्तियों तथा स्थापत्य का अलंकरण इसी तालमेल से होता था। इसके परिणामस्वरूप ही वास्तु, शिल्प, आगम शास्त्र तथा सिद्धांतों का विकास हुआ। मंदिर–मूर्ति रचना, पूजा आदि पारंपरिक ज्ञान विधान में आया। इस प्रकार भारतीय स्थापत्य का मूल आधार शुद्ध भारतीय है, इसे धर्मों के आधार पर भी विभाजित नहीं किया जा सकता।[2] संस्कृत साहित्य और संगम साहित्य के अनेक ऐसे ग्रंथ हैं जिसको समझे बिना भारतीय कला इतिहास को समझने का प्रयास अनुचित ही होगा। स्वतंत्रता पूर्व भारत में कला एवं इतिहास लेखन के प्रभावशाली प्राच्यविद जेम्स फर्ग्युसन, कनिंघम, जॉन मार्शल जैसे प्रतिष्ठित विद्वानों ने भारतीय मंदिरों, मूर्तियों का अध्ययन प्रस्तुत किया। किंतु उन्होंने अपने अध्ययन को ग्रंथिय संबद्ध के सूत्र से प्रति– परीक्षण किए बिना उसकी वर्तमान भौतिक स्थिति के आधार पर यूरोपीय केंद्रित दृष्टिकोण से भारतीय कला को प्रस्तुत किया।

भारतीय कला इतिहास के बहुआयामी दृष्टिकोणों को समझने और यूरोपीय मॉडल की प्रतिक्रिया के लिए पश्चिम ढंग से सुशिक्षित विद्वान विशेषकर राजेंद्रलाल मित्र[3], रामराज और उनके बाद आनंद के. कुमारस्वामी[4] 'शिल्प–कला और ग्रंथों के अंतराध्ययन" को सूत्रीय ढंग से विकसित कर, भारतीय शिल्प–कला का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इतिहास लेखन की कोई अन्य विधा भी हो सकती है लेकिन विगत दो शताब्दियों से भारतीय कला–इतिहास का अध्ययन इस ओर अग्रसर है कि इसे समझने के लिए शैली, ग्रंथिय आलेख, मूर्तिकला, कलाकार तथा उसके संरक्षक और कला से संबंधित विभिन्न भौतिक स्रोत के समग्र रूप को ध्यान में रखते हुए ही एक वस्तुपरक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। औपनिवेशिक काल के प्रारंभिक दिनों से ही भारतीय इतिहास लेखन के लिए यह 'अंतर्संबंधित अध्ययन' (ग्रंथों के माध्यम से दृश्य शिल्प को समझना) विशेषता और चुनौती दोनों बनी हुई है। प्रस्तुत निबंध ग्रंथों और भौतिक स्रोत दोनों के समान महत्व को समझते हुए और एक–दूसरे को पूरक मानते हुए इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य के माध्यम से औपनिवेशिक काल में हुए कला इतिहास लेखन का एक समालोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न है तथापि यह कहना अतिशयोक्ति ही होगा कि प्रस्तुत लघु निबंध अपने शीर्षकीय विषय को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम और उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भारतवर्ष में राजनीतिक रूप से अंग्रेजी कंपनी क्रमशः बाद में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शासन स्थापित हुआ और साम्राज्यवादी ब्रितानी शासन की परियोजना बनी कि यदि उन्हें अधिक दिनों तक राज्य करना है तो स्थानीय संस्कृति, नियम–कानून और समाज की जटिलताओं को जानना होगा। इस योजना के फलस्वरूप विलियम जोंस की अध्यक्षता में 1784 ई. में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना हुई।[5] एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल का कार्य क्षेत्रीय सर्वेक्षण, संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन और अनुवाद कार्यों से प्रारंभ हुआ। जेम्स प्रिंसेप, विल्सन, एलेक्जेंडर कनिंघम, कॉलिन मैकेंज़ी, राजेंद्र लाल मित्र, भगवान् लाल इंद्रजी आदि विद्वानों के प्रयास से पुरातात्विक स्थलों, स्मारकों, सुदूर क्षेत्र के मंदिरों, बड़े स्तर पर मूर्तियों, मुद्राओं, अभिलेखों आदि की खोज हुई और साथ ही साथ उनका विस्तृत अध्ययन तथा प्रलेखन (डॉक्यूमेंटेशन) किया गया। स्रोतों का

डॉक्यूमेंटेशन, चित्र–लेखन और मानचित्रीकरण इस समय बहुत ही व्यापक ढंग से हुआ विशेषकर कनिंघम जैसे दृढ़ पुराविद मैकेंज़ी जैसे सर्वेक्षक, जेम्स फर्ग्युसन जैसे पिक्चरस्कुए पेंटिंग (इंग्लैंड में विकसित चित्रकला की यह शैली भारत में 18वीं सदी में आई) शैली के चित्रकार आदि ने गंभीर ढंग से अपने–अपने कार्य को किया। निःसंदेह कला–शिल्प से संबंधित स्रोतों के प्रलेखन में राजेंद्र लाल मित्र, आनंद कुमारस्वामी जैसे राष्ट्रवादी सोच से प्रभावित संस्कृत के विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। ब्रितानी पक्षपात के होते हुए भी कला इतिहास का संस्थानीकरण हुआ।[6] इसमें कोई दो मत नहीं दिखते कि विद्वान पश्चिम संस्कृति सर्वोच्चता के पूर्वाग्रह से अधिक प्रभावित रहे और उन्होंने भारतीय शिल्पों, चित्रों, मूर्तियों आदि ऐतिहासिक अध्ययन के स्रोत पर पश्चिमी प्रभाव और संबंध का बिना इसके मूल को समझे वकालत की। यह उसी योजना का द्वितीय स्तरीय परिणाम था जिसमें जोंस ने कहा कि संस्कृत भाषा यूनानी और रोमन भाषा के बहुत नजदीक है।

नस्लीय भावना से प्रेरित होकर फर्ग्युसन आदि ने गैर–गांधार कला की मूर्ति को अवास्तविक कहा, मूर्ति के असामान्य रूप और अलंकार को अप्राकृतिक कहा और गांधार से प्राप्त मूर्तियों को ही गौरवान्वित कर पेश किया। इतना ही नहीं, कनिंघम ने अधिकतर शोध उत्तर–पश्चिम क्षेत्र पर ही किया जिस नीति को आगे जॉन मार्शल ने बढ़ाया। इसके पीछे की रणनीति ब्रिटिश का भारत पर राजनीतिक वैधानिकता प्राप्त करना था और साबित करना था कि भारत पर पश्चिम का प्रभाव पूर्वकाल से ही रहा है। कुछ भारतीय विद्वान जैसे बाबू राजेंद्रलाल मित्र और प्रभावशाली दार्शनिक कला इतिहासकार कुमारस्वामी ने साम्राज्यवादी लेखन से असहमत होकर भारत के शिल्प और कला का वस्तुपरक अध्ययन किया। उन्होंने दृश्य–कला और इस विषय से संबंधित उपलब्ध लिखित ग्रंथों की व्याख्या कर विदेशी लेखकों के अध्ययन–ढंग और उनके लेखन को चुनौती दी। इसमें कोई दो विचार नहीं कि सामान्यतः कोई भी मूर्ति या मंदिर का एकदृश साक्ष्य ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है तथापि साहित्य की प्रबंध शैली को समझकर भारतीय कला इतिहास के संदर्भ में पौराणिक कथा, रहस्य और दर्शन को आधार बनाकर एक प्रामाणिक और तथ्यपरक अध्ययन होता रहा है। स्वतंत्रता पूर्व के कला इतिहास–लेखन में आनंद कुमारस्वामी का अध्ययन इस सूत्र का बेहतर उदाहरण है।

भारतीय वास्तुकला और मूर्तियों का अवशेष फर्ग्युसन के अनुसार में केवल पुराने स्मारक एवं पुरातात्विक अवशेष हैं कोई विशेष कला नहीं। भारतीय शिल्प–वस्तु कला को अफ्रीका के साथ जोड़ा गया और यह दिखाने का प्रयास किया गया कि दोनों देश/क्षेत्र पहले भी आधिपत्य में था। वास्तु–शिल्पों अर्थात् मंदिरों–मूर्तियों के कलात्मक और इसके बनने की टेक्नोलॉजी/प्रौद्योगिकी पर फर्ग्युसन ने ध्यान दिया लेकिन उसको समझने के लिए ग्रंथों का सहयोग नहीं लिया। शिल्पशास्त्र के ग्रंथ जैसे विष्णुधर्मोत्तर पुराण, वृहत् संहिता आदि पुरातन पेंटिंग, धातु–कला, निर्माण संबंधी अनेक गूढ़ सूचनाओं का प्रेषण करता है लेकिन इन ग्रंथों को कम आँका गया। जेम्स फर्ग्युसन ने भारतीय शिल्पों की कला और काल को हिंदू, जैन, बौद्ध नामांकित कर नस्लीय एवं धार्मिक वर्गीकरण को बढ़ावा दिया।[7] फर्ग्युसन ने कनिघंम के पुरातात्विक आधार से भिन्न शिल्पीय–कलात्मक इतिहास पर अध्ययन किया और भारतीय शिल्प को तुलनात्मक सूत्र द्वारा वैश्विक संदर्भ में समझा तथा इसके अध्ययन को विस्तार प्रदान किया। ऐसा कहना अनुचित होगा कि फर्ग्युसन ने भारतीय संस्कृति के अध्ययन में गंभीर अभिरुचि नहीं ली बल्कि उन्होंने भारतीय धर्म और माइथोलॉजी/पौराणिक कथा आदि पर कई गंभीर पुस्तकें लिखी हैं। यहाँ तक की फर्ग्युसन ने सर्प और वृक्ष पूजा पर एक पूर्ण पुस्तक (1868ई.) लिखी है।

फर्ग्युसन के बनाए हुए चित्रों को वही प्रसिद्धि प्राप्त हुई जो पूर्व में विलियम होगेडस को प्राप्त हुई थी। फर्ग्युसन ने लिखा कि शिल्प–वास्तु निर्माण की कला हिंदू यूनानी से सीखी।[8] प्रमुखतः निर्माण कार्य के लिए भारत में लकड़ी का प्रयोग होता था, जब सिकंदर भारत आया तो वास्तु–शिल्प में नई–नई

तकनीक का आविर्भाव हुआ, वास्तु जिसका प्रभाव गृह निर्माण, मंदिर निर्माण और मूर्ति निर्माण में विशेषकर गांधार कला में देखा जा सकता है। फर्ग्युसन के अनुसार भारत में लकड़ी से पत्थर की ओर संक्रांति यूनानियों के आने से प्रारंभ हुई[9] और पुरातन निर्माण पद्दति भी भारत में निरंतर रही इसलिए हमें इसके प्रारंभिक वास्तु के बारे में साक्ष्य उपलब्ध है।[10] जब बाबू राजेंद्र लाल मित्र जैसे विद्वान भारतीय कला के ग्रंथों की सूचनाएँ और पुरातात्विक स्रोतों का एक–समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया तब पश्चिमी विद्वानों ने उनके शोध को मान्यता नहीं दी। विशेषकर बोध गया और भुवनेश्वर के संदर्भ में तो फर्ग्युसन की पक्षपाती प्रतिक्रिया इस प्रकार दिखी कि राजेंद्र लाल मित्र द्वारा लिखी शोध पुस्तक– "The Antiquities of Orissa" (1880) को मामूली मानते हुए यह लिखा कि इस पुस्तक में मंदिरों के आकार–प्रकार को क्रमिक–रूप से व्यवस्थित नहीं किया गया है।

फर्ग्युसन आगे लिखते हैं कि पुरातत्व विषय के अनुसार राजेंद्र लाल मित्र ने प्लेटो (plates) का भी वर्गीकरण ठीक से नहीं किया है।[11] राजेंद्रलाल मित्र द्वारा ओड़ीसा और बोध–गया पर किए गए क्षेत्रीय अध्ययन भारतीय कला इतिहास लेखन के लिए प्रथम श्रेणी के जान पड़ते है। यही बाद में महत्वपूर्ण संरचना के रूप में उभरा।[12] यद्यपि अपने पूर्वाग्रह से ग्रसित फर्ग्युसन आगे मित्र द्वारा किये गये मंदिरों के सर्वेक्षण से असंतुष्ट हो लिखते हैं:

यह दुर्भाग्य ही था कि शिल्पशास्त्रों में वर्णित चित्र–सूत्र, धातु कला, शिल्प प्रौद्योगिकी, आदि विषयों को प्राच्य लेखन ने कला इतिहासलेखन से दूर रखा। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में कॉलिन मैकेंज़ी ने सर्वेक्षण के माध्यम से यूरोपीय और भारतीय विद्वानों के साथ इतिहास, पौराणिक कथाओं, भाषाओं, लोकगीतों आदि को समझने का प्रयास किया।[13] इसी अध्ययन के दौरान शिल्पीय अध्ययन ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। मैकेंज़ी ने अमरावती स्तूप (1822), साँची स्तूप का डॉक्यूमेंटेशन किया[14] जो बाद में कला इतिहास के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। विवरणात्मक मानचित्र तैयार किया गया, मैकेंज़ी अपने सर्वेक्षण के उपरांत दक्षिण भारत का एक इतिहास लिखना चाहते थे।[15] यूरोपीय यात्रियों ने भारत के स्मारकों का दृश्य रिकार्ड (विजुअल रिकार्ड) अपने चित्र कलाकारी के माध्यम से दुनिया के सामने रखा जैसे विलियम होड़गेस, इन्होंने न केवल सामान्य पहुँच वाले स्मारकों का दृश्य रिकार्ड किया बल्कि उन स्मारकों का भी डॉक्यूमेंटेशन किया जिसकी भौगोलिक स्थिति वन क्षेत्र में थी। ये चित्रकार (picturesque) दृश्य प्रस्तुतीकरण अथवा तकनीकी से बनाए हुए इन पेंटिंग अथवा चित्रों को यूरोप ले जाकर प्रदर्शनी में प्रस्तुत करते थे। सम्भवतः अब यह कार्य बाजार अर्थव्यवस्था से जुड़ा हुआ था और जिसका महत्व दिनों–दिन बढ़ता ही गया। ये सुंदर तस्वीर (picturesque) दृश्य प्रस्तुति कला के माध्यम से यूरोप में भारतीय रहस्य, सुंदरता और प्रेम रोमांस को प्रस्तुत किया गया।[16] इस पर विशुद्ध यूरोपीय प्रभाव दिखाया गया।

इसमें कोई दो मत नहीं कि 19वीं सदी में इतिहास लेखन वैज्ञानिक पद्धति से हो रहा था। व्यापक सर्वेक्षण, दस्तावेजीकरण, मूर्ति संबंधी पद्धतियों तथा शिल्प सूत्रों को जानना, चित्र कलाकारी के माध्यम से मंदिर आदि का विजुअल डॉक्यूमेंटेशन, चित्रावली, लिथोग्राफ आदि पर कड़ी मेहनत की गई और इन सबको बौद्धिक चर्चा का मुद्दा बनाया गया।[17] जो अचिमबौट्ज़ ने महत्वपूर्ण चित्रों को एक भाग में प्रकाशित कर, चित्रों पर विचार और उसका दिखना आदि विषयों के साथ कला के ऐतिहासिक अध्ययन में स्मारकों को प्रतिच्छेदन विनियोग की पहचान, शक्ति, राजनीति, नियंत्रण तथा सौंदर्य पर चर्चा की गई।[18] इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के आते–आते विजुअल आर्ट कला इतिहास की संरचना के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्थापित हो चुका था। संग्रहालय के संस्थानीयकरण के बाद इसका महत्व और बढ़ता गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवाद की भावना से पोषित विद्वान इतिवृतकार रामराज, बाबू राजेंद्र लाल मित्र, आनंद कुमारस्वामी आदि ने प्राचीन भारत के अवशेषों को श्रेणीबद्ध कर तथा

ग्रंथों से संबंधित कर विवरणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। रामराज प्रथम विद्वान हुए जो ग्रंथों अर्थात् शिल्प शास्त्र और शिल्प कला की जीवित परंपरा को समझते हुए दक्षिण भारतीय मंदिरों के शिल्प–वास्तुकला का अध्ययन देशी शिल्प विद्या के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया तथा रामराज के अध्ययन भारतीय ग्रंथों को भारतीय कला इतिहास के स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया गया। रामराज का निबंध वास्तु–शिल्प के सिद्धांतों का विवरण था जो शिल्पशास्त्र की सहायता से विभिन्न दक्षिण मंदिरों के आधार पर किया गया अध्ययन था। वो यूनानी, रोमन और मिश्र की वास्तुकला के लक्षणों एवं शैलियों से भारतीय शैली का एक तुलनात्मक अध्ययन भी था।[19]

विदित है कि स्वतंत्रता पूर्व भारत में प्राच्यवादियों और राष्ट्रवादियों के बीच भारतीय कला इतिहास की प्रस्तुति और समझ को लेकर दो गुट के विद्वानों के मध्य वैचारिक संघर्ष उत्पन्न हुआ जिसमें पश्चिम के विद्वानों ने भारतीय कला और मूर्तियों को अवास्तविक बताकर यूरोपीय उत्कृष्टता सिद्ध की। कनिंघम, फर्ग्युसन और बुर्गीस जैसे विद्वानों ने 'प्रकार' और 'शैली' के आधार पर भारतीय शिल्पकला को समझा और मत दिया कि इनमें यूनानी–रोमन प्रभाव है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि भारतीय शिल्प शास्त्रों तथा उपलब्ध विभिन्न ग्रंथ जैसे विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि का अध्ययन किए बिना भारतीय कला के अभिन्न अंग अनेक हस्त युक्त देवी–देवताओं की मूर्तियों, पशु मस्तिष्क या विभिन्न आकार वाले देवी–देवताओं की मूर्तियों को ज्यादा सजा–धजा एवम् अलंकृत होना, मंदिरों की दीवारों पर यौन तथा मिथुन पाषाण चित्रण के आधार पर भारतीय संस्कृति को निम्न समझते हुए भारतीय कला इतिहास लिखे। विद्वान ए. फौचेर ने गांधार मूर्तियों के अध्ययन हेतु एक सूत्रीय आधार का विकास किया, जिस अध्ययन में कई ऐसी मूर्तियाँ थीं जिन्हें न तो पूर्व में लिपिबद्ध किया गया और न ही वर्णन। पहले भी उल्लेख किया गया है कि गांधार कला के माध्यम से साम्राज्यवादी अपनी वैधानिकता साबित करना चाहते थे। यह उस समय भी विचारणीय बात रही होगी कि आखिर गांधार कला पर ही कनिंघम ने भी जोर क्यों दिया? कंनिघम ने 1840 ई. के दौरान इंडो–बाक्टेरियन और इंडो–स्क्थिंस (कनिंघम इस श्रेणी में शक, कुषाण और हूण को रखा था), कश्मीर की मुद्राओं पर अध्ययन कर इंडो–बाक्टेरियन राजाओं का नाम खोजा जो यूनानी प्रभाव दिखाने के लिए अभी तक भारतीय इतिहास में अपरिचित था।[20] तक्षशिला और गांधार कला दिखाकर यह साबित किया जा रहा था कि भारत प्राचीन काल से ही यूरोप का ऋणी है। कनिंघम द्वारा किया गया विशेष महत्व की मुद्राओं एवं प्रमुख पुरातात्विक स्थलों तथा साक्ष्यों का अध्ययन, जैसे बौद्ध–गया, भरहुत, कौशांबी आदि का दस्तावेजीकरण आदि भारतीय कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[21]

राजेंद्रलाल मित्र, आनंद कुमारस्वामी सहित अन्य इतिहासकारों ने अपने अध्ययन के आधार पर ग्रीक–रोमन केंद्रित अवधारणा को अप्रासंगिक बताया। औपनिवेशिक पूर्वाग्रह/पूर्वधारणाओं की प्रतिक्रिया में ये इतिहासकार भारतीय कला को देशी ढंग और उद्भव संबंधी अध्ययन से आगे लाए जिसमें सौंदर्य मूल्याकंन, मूर्तिविधि, संकेत तथा प्रतीकात्मकता आदि को संरचनात्मक ढंग से जड़ित किया गया। देशी गुणों को स्थापित करने के लिए सांस्कृतिक संदर्भों को रहस्य, पौराणिक कथा, धर्म, साहित्य, प्रौद्योगिकी, स्थानीय संस्कृति आदि के सहयोग से अध्ययन किया गया और भारतीय कला इतिहास को निष्पक्ष ढंग से प्रस्तुत करने का यत्न हुआ। कुमारस्वामी ने ग्रंथ और मूर्ति के संबंध को अपने दार्शनिक, तार्किक और जड़िय/मूल अनुसंधानों से स्थापित किया। भारतीय साहित्य को चाहे वे वेद हों या बौद्ध–जैन ग्रंथ, या अभिलेखीय स्रोत उसे कला के इतिहास लेखन से अंतर्संबंधित किया।[22] कला के ढंग, निर्माण शैली, कार्य, प्रकार, पहचान, प्रतीकात्मकता, मूर्तियों इत्यादि के आधार पर अध्ययन प्रस्तुत कर पूर्व स्वतंत्र भारत में भारतीय कला इतहास को पश्चिमी पूर्वाग्रह से मुक्त करने का सफल प्रयाय किया।[23] प्राचीन मूर्तियाँ तथा

दीवारों पर उत्कीर्ण तथा अंकित कथाएँ जैसे भरहुत, साँची और अमरावती से उपलब्ध स्रोतों की शिल्पकला का अध्ययन कर व्याख्या प्रस्तुत किए।

बौद्ध मूर्ति का भारतीय उद्भव दिखाने के लिए कुमारस्वामी ने लिखा कि बौद्ध मूर्ति का विकास प्रारंभिक भारतीय यक्ष से हुआ, यह मत फौचेर द्वारा प्रकट की गई। उस अवधारणा के विरुद्ध था जिसमें उन्होंने बौद्ध मूर्ति का उद्भव यूनानी–रोमन शैली से बताया था।[24] इस खोजपरक अध्ययन ने भारत के भौतिक और कलात्मक अध्ययन को 20वीं सदी के प्रारंभिक दशकों तक चोटी पर पहुँचा दिया। इस व्यापक अध्ययन में राजेंद्रलाल मित्र और कुमारस्वामी द्वारा प्रयोग किया गया ग्रंथ–मूर्ति संबंध अध्ययन", "शिल्पकला सिद्धांत सूत्र महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। ऐसा नहीं है कि कालांतर में भारतीय कला का भारतीय उद्भव केवल भारत के विद्वानों ने माना बल्कि E. B. Hawell (1861-1934), Stella Kramrisch (1896-1934) आदि विद्वानों के द्वारा भी स्वीकार किया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. के. आर. श्रीनिवासन, टेम्पलस ऑफ साउथ इंडिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 1972, पृष्ठ 1–5

2. वही, पृष्ठ2

3. राजेंद्र लाल मित्र, द एंटिक्विटीज ऑफ ओड़ीसा, (दो भागों में बैप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित है, 1875–1880), प्रफुल्ल प्रकाशन, 2007 (संस्करण)

4. आनंद के. कुमारस्वामी, द आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स ऑफ इंडिया एंड सीलोन, टी. एन. फौलिस पब्लिकेशन, लंदन, 1913; इंट्रोडक्शन टू इंडियन आर्ट, केस्सिंगेर पब्लिकेशन, 2007 (संस्करण) : हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इन्डोनेशियन आर्ट, केस्सिंगेर पब्लिकेशन, 2003 (संस्करण); अली इंडियन आर्किटेक्चर, पैलेसेस, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1975

5. उपिंदर सिंह, द डिस्कवरी ऑफ एनसिएंट इंडियाः अर्ली आर्कियोलॉजिस्टस एंड द बिगनिंग ऑफ आर्कियोलॉजी, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 7

6. पारुल पांड्या धर (संपा), इंडियन आर्ट हिस्ट्रीः चेजिंग पर्सपेक्टिवस, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 1

7. पारुल पांड्या धर (संपा), इंडियन आर्ट हिस्ट्रीः चेंजिंग पर्सपेक्टिवस डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली, 2011 पृष्ठ 3

8. जेम्स फर्ग्युसन, आर्कियोलॉजी इन इंडिया विद स्पेशल रेफ़रेंस टू द वर्क्स ऑफ़ बाबू राजेंद्र लाल मित्र, के. बी. प्रकाशन, नई दिल्ली, भारतीय संस्करण, 1974, पृष्ठ 10

9. वही, पृष्ठ 10

10. वही, पृष्ठ 7–8

11. वही, पृष्ठ 55,

12. गौतम सेन गुप्ता, "राजेंद्र लाल मित्र एंड द फोर्मेटिव इयर्स ऑफ इंडियन ऑर्ट हिस्ट्री", पारुल पांड्या धर (संपा), इंडियन आर्ट हिस्ट्रीः चेंजिंग पर्सपेक्टिवस, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 59–67

13. बर्नार्ड एस. कोहन, "द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ ऑब्जेक्ट्स इनटू आर्टिफेक्टस, एंटीक्विटीज एंड आर्ट इन नाइनटींथ सेंचुरी इंडिया", कोलोनलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेजः द ब्रिटिश इन इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, 1996, पृष्ठ 1–29

14. के. पद्दय्या, "कर्नल कॉलिन माइकेंजी एंड द डिस्कवरी ऑफ द साँची स्तूप", गौतम सेन गुप्ता, कौशिक गंगोपाध्याय(संपा), आर्कियोलॉजी इन इंडियाः इंडिविजुअलस, आइडियाज इंस्टिट्यूसंस, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 19–44

15. बनार्ड एस. कोहन, "द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ ऑब्जेक्ट्स इनटू आर्टिफेक्टस, एंटीक्विटीज एंड आर्ट इन नाइनटींथ सेंचुरी इंडिया", पृष्ठ 6

16. पारुल पांड्या धर (संपा), इंडियन आर्ट हिस्ट्रीः चेंजिंग पर्सपेक्टिव्स, 2011, पृष्ठ 1

17. ताप्ती गुहा ठाकुरता, मोनुमेंट्स, ऑब्जेक्ट्स हिस्ट्रीजः इंस्टिट्यूसंस ऑफ आर्ट इन कॉलोनियल एंड पोस्ट कॉलोनियल इंडिया, परमानेंट ब्लैक (इंडियन एडिशन), नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 3–42

18. पारुल पांड्या धर (संपा), इंडियन आर्ट हिस्ट्रीः चेजिंग पर्सपेक्टिवस, 2011, पृष्ठ 2

19. उपिंदर सिंह, द डिस्कवरी ऑफ एनसिएंट इंडियाः अर्ली आर्कियोलॉजिस्ट्स एंड द बिगनिंग ऑफ आर्कियोलॉजी परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2004 , पृष्ठ 309

20. उपिंदर सिंह, द डिस्कवरी ऑफ एनसिएंट इंडियाः अर्ली आर्कियो लॉजिस्ट्स एंड द बिगनिंग ऑफ आर्कियोलॉजी, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ 29

21. उपिंदर सिंह, "आर्कियोलॉजिस्टस एंड आर्किटेक्चरल स्कॉलर्स इन नाइनटींथ सेंचूरी इंडिया", पारुल पांड्या धर (संपा.), इंडियन आर्ट हिस्ट्री, चेंजिंग पर्सपेक्टिव्स, डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 47–57

23. वही, पृष्ठ 6

24. वही, पृष्ठ 6

– मकान नं. 677, ब्लॉक–ए जी, शालीमार बाग, नई दिल्ली–110088

❑❑❑

कश्मीर विषयक हिंदी कविता : उद्‌भव और विकास

उमर बशीर

कश्मीर तक्षशिला व नालंदा की भाँति प्राचीनकाल से ही ज्ञान, साहित्य, विद्‌या अध्यात्म, सौंदर्यादि का केंद्र रहा है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से विद्‌वान यहाँ एकत्रित होकर पृथक–पृथक विषयों पर शास्त्रार्थ करते थे। एक समय में कश्मीर संस्कृत भाषा व साहित्य का केंद्र माना जाता था। संस्कृत के दिग्गज विद्‌वान जैसे–आचार्य भामह (6ठी शताब्दी का मध्यकाल), आचार्य उद्‌भट्‌ट (9वीं शताब्दी का पूर्वार्द्‌ध), आचार्य वामन (8वीं– 9वीं शताब्दी के बीच), आचार्य आनंदवर्धन (9वीं शताब्दी का मध्यकाल), आचार्य भट्‌टनायक (10वीं शताब्दी का मध्यकाल), आचार्य अभिनवगुप्त (10वीं–11वीं शताब्दी), कुंतक (10वीं–11वीं शताब्दी), मम्मट (11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्‌ध) आदि इसी भूमि की उपज हैं। उनके द्‌वारा हमारे व्याकरण तथा अलंकारशास्त्र पर लिखित ग्रंथ आज भी विश्वप्रसिद्‌ध हैं। इस दृष्टि से कय्यट द्‌वारा सन् 950 ई. में व्याकरण का 'लघुवृत्ति' नामक ग्रंथ, सन् 750 ई. में लिखित वामन का 'काव्यालंकार', सन् 825 ई. में रुद्रट कृत 'शृंगार तिलक', सन् 1125 ई. में रुय्यक द्‌वारा 'अलंकार –सर्वस्व' और सन् 1150 ई. में मम्मट द्‌वारा रचित 'काव्य प्रकाश' ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वस्तुतः संस्कृत सहित विश्व की विभिन्न भाषाओं में कश्मीर विषयक साहित्य रचा गया है, जिसमें कश्मीर की सुंदरता यहाँ का रहन–सहन, खान– पान, वेशभूषा, पर्व–त्योहारादि का वर्णन मिलता है। कश्मीर केंद्रित रचनाओं का सूत्रपात मुख्यतः संस्कृत से ही हुआ है।

सौभाग्य से कश्मीर का अतिप्राचीन इतिहास व साहित्य क्रमबद्‌ध रूप में आज भी उपलब्ध व सुरक्षित है। 'नीलमतपुराण' (6ठी से 7वीं शताब्दी) और कल्हण कृत (वास्तविक नाम कल्याण, 1100 ई./12वीं शताब्दी) 'राजतरंगिणी' (1147–1149 ई.) ऐसे दो प्रमुख ग्रंथ हैं जो कश्मीर की संपूर्ण गाथा प्रस्तुत करते हैं। 'राजतरंगिणी' पूर्णतः कश्मीर केंद्रित रचना है। इस ग्रंथ से यह स्पष्ट होता है कि कल्हण एक श्रेष्ठ इतिहासकार व साहित्यिक थे। यह रचना पंडित कल्हण तथा प्राचीनकाल की काव्य–कला का उत्कृष्टम उदाहरण है। कल्हण की परंपरा का निर्वाह करने वाले जोनाराजा (सन् सी. 1389–1459 ई.) ने 'द्‌वितीय राजतरंगिणी' (15वीं शताब्दी) ग्रंथ की रचना कर आलोच्य साहित्य में वृद्‌धि की। इसी प्रकार श्रीवर कृत 'तृतीय राजतरंगिणी' (15वीं शताब्दी), प्रजा भट्‌ट कृत 'राजवलीपिटक' (15वीं–16वीं शताब्दी), सूक कृत 'चतुर्थ राजतरंगिणी' (17वीं शताब्दी) आदि ग्रंथ कश्मीर के साहित्य व इतिहास की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

हिंदी साहित्य में कश्मीर केंद्रित रचनाएँ भारतेंदु युग (1850–1885 ई.) के आसपास इतिहास–ग्रंथों के रूप में मिलती हैं। पथ–प्रदर्शक भारतेंदु बाबू 'हरिश्चंद्र' (1850–1884 ई.) ने 'काश्मीर कुसुम' (1874 ई.) नामक खंड–काव्य की रचना की है।

लेखक ने जहाँ 'काश्मीर कुसुम' को 'राजतरंगिणी' की समालोचना कहा है, वहीं कवि कल्हण का स्पष्ट प्रभाव इस कृति पर परिलक्षित होता है। यद्यपि भारतेंदु से पहले इधर जम्मू व कश्मीर के हिंदी कवियों में पं. भावनाथ (18वीं शती), कवि परमानंद (नंदराम, सन् 1791–1879 ई.), पं. नीलकंठ (19वीं शती), हिंदी कविता–कर्म में रत थे, किंतु वह कविताएँ नीति और आध्यात्मिकता के कठघरे में ही खड़ी हैं, कुछ कविताओं में प्रकृति– वर्णन सूत्रात्मक संकेत अवश्य हैं, जो ना के बराबर हैं।

महाराजा गुलाब सिंह (सन् 1792–1857 ई.) के दरबारी कवि और पंडित नीलकंठ के पिता पंडित भावनाथ की 'श्री त्रिकुटा स्तोत्र' और 'श्री शीतलता दुर्गा स्तोत्र' धार्मिक कोटि की रचनाएँ हैं। पंडित नीलकंठ का काव्य भी राजाश्रित है। वह महाराजा रणवीर सिंह (सन् 1830–1885 ई.) के दरबारी कवि थे। उनके काव्य संसार की दो महत्वपूर्ण रचनाएँ 'वंशावली' और 'कीर्तिविलास वैशिष्ट्य की अधिकारिणी हैं। पं. नीलकंठ कवि परमानंद के समकालीन थे जिन्हें कश्मीर का पहला हिंदी कवि होने का गौरव प्राप्त है। उनकी कविताओं में भी केवल भक्ति भावना, अद्वैत भावना, वेदांत, आध्यात्मिकता और उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं।

कश्मीर–संबंधित हिंदी कविता स्वच्छंदतावाद (सन् 1930–1940 ई.) से प्रारंभ होती है, जिसके प्रमुख कवि श्रीधर पाठक (सन् 1859–1928 ई.) हैं। 'काश्मीर सुषमा' (सन् 1904 ई.) इस साहित्य का प्रमुख उदाहरण है। हिंदी में इस प्रकार के साहित्य का सूत्रपात इसी कृति के रूप में हुआ है। आगरा के जोन्हरी ग्राम में जन्में श्रीधर पाठक प्रकृति के अत्यधिक प्रेमी थे। उनका अनुरागी चित्त अधिकतर प्राकृतिक सौंदर्य के अद्भुत उपकरणों में ही रमा रहा है। नौकरी के प्रसंग में पाठक जी को कश्मीर आना पड़ा, जहाँ इन्हें प्रकृति का निरीक्षण करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इसी के चलते उन्होंने 'काश्मीर सुषमा' की रचना कर डाली। प्रकृति–चित्रण में पाठक जी को सर्वाधिक सफलता मिली है। तत्कालीन कवियों में उन्होंने सबसे अधिक प्रकृति–वर्णन किया है। कवि ने यहाँ की प्रकृति में विभिन्न छवियाँ देखी हैं, जिनके चित्रण में अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है–

प्रकृति इहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल–पल पलटति भेस छनिक छवि छिन –छिन धारति।[1]

'काश्मीर सुषमा' प्राकृतिक सौंदर्य के विविध उपकरणों की सरस तथा मनोहारी रचना है। पाठक जी ने प्रकृति से रागात्मक संबंध स्थापित कर तथा अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से उसका निरीक्षण कर अनेक शब्द–चित्रों की सृष्टि की है। आलोच्य कविता में प्रकृति नारी–सम्मान यौवन–मद से उन्मत है। कवि ने घाटी के अनेक तीर्थ–स्थानों, पर्यटक–स्थलों, धरोहरों, ऐतिहासिक–स्थानों, धार्मिक–स्थानों आदि का उल्लेख भी किया है। 'काश्मीर सुषमा' की भाषा सरस तथा माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। पाठक जी ने लय और तुक का सुंदर प्रयोग किया है। कवि द्वारा प्रयुक्त चाक्षुष एवं घ्रात्व्य बिंबों की योजना देखते ही बनती है।

वस्तुतः स्वच्छंदतावादी कवियों ने प्रकृति–वर्णन में कहीं न कहीं कश्मीर का प्रसंग अवश्य उठाया है। श्रीधर पाठक के अतिरिक्त श्री रामनरेश त्रिपाठी (सन् 1889–1962 ई.) का नाम भी इसी श्रेणी के कवियों में शीर्षस्थ है। उनके द्वारा रचित 'स्वप्न' (सन् 1928 ई.) खंड–काव्य तथा 'काश्मीर' कविता इसके प्रमाण में लिया जा सकता है। रामनरेश त्रिपाठी श्रीधर पाठक द्वारा निर्दिष्ट स्वच्छंदतावादी मार्ग के सर्वप्रमुख अनुसरणकर्ता हैं। त्रिपाठी जी का काव्य भी प्रकृति से परिपूर्ण काव्य है। वह 'स्वप्न' की भूमिका में लिखते हैं– "मैं प्रकृति का पुजारी हूँ....काश्मीर में जिन–जिन प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे लुभा लिया था, उनका वर्णन मैंने इसके (स्वप्न) अनेक पद्यों में किया है।"[2] उनकी मान्यता है कि बिना कश्मीर गए पाठक उन दृश्यों का आनंद नहीं ले सकता, जिनको मैंने देखा और 'स्वप्न' में चित्रित किया। बसंत नामक युवक को आधार बनाकर उसके हृदय में उठ रही तरह–तरह की तरंगों के माध्यम से कवि ने पहलगाम (कश्मीर का सर्वप्रसिद्ध पर्यटक–स्थल) में वास कर रहे विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों, हिम–पर्वत, नदी–नाले

आदि के अनेक चित्र खींचे हैं। शृंगार, करुण आदि रसों ने कविता में रुचि को विदग्ध किया है। कविता का आलंबन सराहनीय है। इसकी भाषा पर्याप्त मधुर है। त्रिपाठी जी ने 'स्वप्न' को पहलगाम में लिखना आरंभ किया और गुलमर्ग (कश्मीर का प्रसिद्ध हिम–पर्वतीय पर्यटक–स्थान) में समाप्त।

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवियों हरिकृष्ण प्रेमी, हरिवंशराय बच्चन, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, कवि नीरज, अज्ञेय, दिनकर आदि की कविताओं में भी कश्मीर दिखाई पड़ता है। उन कविताओं में कश्मीर की प्राकृतिक व सांस्कृतिक झाँकी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'यह मेरा काश्मीर', नागार्जुन की 'चिनार', 'डल झील', अज्ञेय की 'देवदार' कविता, कवि नीरज कृत 'कश्मीर के नाम' आदि इसका उदाहरण है।

राष्ट्रीय स्तर पर इन कवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कवि रहे हैं जिन्होंने राजनीति और राष्ट्रीयता की आड़ में कश्मीर को अपनी काव्य–रचना का आलंबन बनाया है। सन् 1952 ई. में प्रकाशित 'कश्मीर विजय' काव्य संग्रह में प्रकृति–चित्रण, राष्ट्रीयता और राजनीति की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। इस रचना में कश्मीर की प्राचीन संस्कृति, सन् 1947–1948 ई. में हुए भारत–पाक युद्ध, कश्मीर पर कबाइली आक्रमण, कश्मीर–भारत विलय आदि जैसी घटनाओं के मानो किंचित विवरणात्मक छीटें प्रस्तुत किए गए हैं। प्रकृति वर्णन में भी कवि पर धार्मिकता ही भारी रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि राजाश्रित है। वीर और रोद्र रस में ढली यह रचना विभिन्न छोटे–बड़े आक्रमणों–प्रत्यक्रमणों का लेखा–जोखा है।

हिंदी में कश्मीर–केंद्रित कविताएँ अधिकतर जम्मू–कश्मीर के कवियों द्वारा विभिन्न पक्षों के अंतर्गत रची गई हैं। इन कवियों में सत्यवती मल्लिक (जन्म सन् 1906 ई.), शशि शेखर तोषखानी (जन्म सन् 1935 ई.), डॉ. रतन लाल शांत (जन्म 1938 ई.) सुतीक्षण कुमार 'आनंदम्, दुर्गा प्रसाद काचुर, चंद्रकांता (जन्म सन् 1938 ई.), पृथ्वी नाथ मधुप, गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सत्यवती मल्लिक की पहली कविता 'हब्बा ख़ातून की जीवन संध्या' भाव, शिल्प एवं संप्रेषण की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है। यह कविता कश्मीर की नारी जाति के सौंदर्य, हतभाग्य, निराशा और विरहजन्य पीड़ा को प्रतिबिंबित करती है। कश्मीर की आदि कवयित्री हब्बा ख़ातून (ज़ून) पर आधारित यह कविता अपने आप में अद्‌वितीय है।

डॉ. रतन लाल शांत (जन्म 1938 ई.) के अब तक दो काव्य संग्रह प्रकाश में आए हैं– 'खोटी किरणें' (सन् 1965 ई.), 'कविता अभी भी' (सन् 1997 ई.)। 'खोटी किरणें' काव्य संग्रह में कवि कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता को ऊब की सीमा तक अनुभव करते–करते थकान महसूस करते हैं। अंततः कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता में छिपी लोगों की वृत्ति को कवि उत्सुकता के साथ जानने को विवश होता है। कवि ने कश्मीर में बसी प्रकृति के साथ अपना भावनात्मक तादात्म्य स्थापित किया है। उनकी कविता कश्मीरी संस्कृति को प्रतिबिंबित करती दिखाई देती है। इसी संग्रह में कवि की एक सुंदर कविता– 'चिनार' भी संकलित है। चिनार कश्मीर के परिप्रेक्ष्य में अपना एक सांस्कृतिक महत्व रखता है। चिनार के पत्तों पर पड़ी सूर्य–किरणों का बिंब देते हुए कवि कहता है–

सतरंगी पंखों पर तिरकर। सूर्यदेव से लुक–छिप खिसकी।
मधुमयी किरणों के ये छते।
ये चिनार के पत्ते।[3]

जम्मू प्रदेश में हिंदी के प्रतिष्ठित कवि सुतीक्षण कुमार 'आनंदम्' मूलतः जीवनानुभूतियों के कवि हैं। उनकी कविताओं का रूपक–विधान बड़ा ही आकर्षक है। उन्होंने कश्मीर के उस लोक–जीवन का भावपूर्ण वर्णन किया है जो वादी की प्रकृति में पल रहा है कवि को यहाँ की प्रकृति में वात्सल्य भाव की अनुभूति होती है। उनका वादी की प्रकृति से माता–पुत्र का संबंध हो जाता है। वह प्रकृति को माता–समान मानकर उसकी खुली तथा विस्तृत गोद में बैठकर घुटनभरी ज़िंदगी से मिली बहुआयामी कठिनाइयों का सामना करके उनको पल भर के लिए भुलाता है और उनका सामना करने हेतु अपने व्यक्तित्व को प्रेरित करता रहता है। कवि ने भावपूर्ण बिंबों के माध्यम से चिनार, सेब, अनार,

अख़रोट, बादाम आदि वृक्षों के नाम गिनाकर उनको जीवन की धड़कन एवं गमकती गंध में आवेष्टित कर प्रस्तुत किया है। हरिवंशराय बच्चन का कहना है– "आनंदम् में प्रसाद और निराला जी के बावदूद मौलिक सूझ, मौलिक कल्पना और मौलिक अभिव्यक्ति के कई सबूत मिलते हैं, उन्होंने नए रूपकों के द्वारा कविता का आयाम और सहानुभूति का क्षेत्र बढ़ाया है।"[4] कश्मीर की सुंदरता को लेकर लिखा गया 'नौका का इतिहास' (1974 ई.) काव्य–संग्रह की कविताएँ कश्मीर के लोक जीवन की लय–ताल से जुड़े अनुभवों के प्रतीक हैं। इस संकलन पर डॉ. राजकुमार की टिप्पणी पर्याप्त सटीक बैठती है– "वह (कवि) जेहलम के शांत प्रवाह में नौका चला रहे नाविक को सौभाग्यशाली मानता है क्योंकि जब वह लोल लहरियों के साथ जीवन–गान गाता है तो वितस्ता के ओर–छोर रबाब के स्वरों में रंगे हुए मधुर गीत को सुनने लगते हैं।"[5]

चंद्रकांता (जन्म 1938 ई., श्रीनगर) मूल रूप से कथाकार हैं, किंतु उन्होंने कविता में भी अपना कलम आज़माया और सफ़लता प्राप्त की। उनके द्वारा रचित दो काव्य–संकलनों– 'यहीं कहीं आसपास' (1999 ई.) और 'चुपचाप गुज़रते हुए' (1999 ई.) में से 'यहीं कहीं आसपास' काव्य संग्रह भाषा एवं भाव–पक्ष की दृष्टि से एक सफल काव्य–रचना मानी जा सकती है। श्रीनगर, कश्मीर में जन्मी लेखिका को निर्वासन में अपनी मातृभूमि की याद प्रति–पल आती रहती है। जीवन से मिले इस निर्वासन का दोष कवयित्री किसी पर नहीं लगाती केवल प्रश्न खड़ा कर देती है कि आख़िर यह निर्वासन कब समाप्त होगा? उनको यह निर्वासन राम–वनवास जैसा लग रहा है–

बीतता नहीं है निर्वासन
गैरों ने दिया हो
या अपने भीतर उगा!
मैं तो घर में ही रही[6]

कवयित्री अपनी मातृभूमि की कमी बार–बार महसूस करती रहती है। कदाचित् यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविताओं में कश्मीरी भाषा के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। उनकी कविताएँ पाठक को हिंदी–लिपि में कश्मीरी भाषा की मिठास का सुखद अनुभव करा देती है। यह मिठास उनकी कविताओं में निरंतर बनी रहती है। 'कैसी होगी इस बार की बर्फ़?'कविता की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

भापीले कहवों के घूँट भरते
'नवशीन' की मुँह दिखाई में
ढेर–सी दावतें कबूलते
रोगनजोश....वारिमुठ....याजि!
तपी बुखारियों पर भुनी मिशिरमकाय को टूँगते
हम बर्फ़ का जश्न मनाते, संवारते उसे
मनचाही शक्लों में [7]

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' कृत 'उल्लोल' (1964 ई.) काव्य संग्रह भाव–पक्ष प्रधान रचना है। इस रचना पर अजनबीयत का प्रभाव देखने को मिलता है। आलोच्य कृति में कश्मीर की प्रकृति के विविध रंग बिखेरे गए हैं।

वस्तुतः स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात्, अर्थात् सन् 1947 ई. से लेकर सन् 1990 ई. तक कश्मीर–केंद्रित कविता परंपरागत रूप से ही विषय, भाव–बोध, भाषा आदि को लेकर रची जा रही थी। किंतु सन् 1990 ई. के उपरांत इस प्रकार की कविता का मिज़ाज बदलने लगा। प्रकृति के स्थान पर अधिकतर कवियों ने समाज को, अपने अस्तित्व को, अपनी समस्या को, विस्थापन आदि को ही प्रमुखता दी। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि सन् 1990 ई. के पश्चात् विस्थापन साहित्य की ही अधिक वृद्धि हुई है। इस प्रकार के काव्य में नास्तालजिया–बोध अधिक दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त कश्मीर व कश्मीर के लोगों की समस्याओं ने भी इसमें स्थान पाया है। इस काव्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में घाटी में विस्थापित कवियों– डॉ. अग्निशेखर, महाराज कृष्ण संतोषी, महाराजा कृष्ण भरत आदि का नाम लिया जा सकता है। यह कविता जम्मू–कश्मीर में हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

डॉ. अग्निशेखर (वास्तविक नाम कुलदीप सुंबली, जन्म सन् 1956 ई.) की 'मुझसे छीन ली

गई मेरी नदी' (सन् 1996 ई.), 'काल वृक्ष की छाया में' (सन् 2002 ई.), 'जवाहर टन्नल' (सन् 2009 ई.) आदि जैसे काव्य–संकलनों में देखा जा सकता है। उनकी कविताएँ आतंकवाद, राष्ट्रवाद, अंतरराष्ट्रीय मसलों पर निर्मित हुई हैं। कश्मीरी पृष्ठभूमि पर आधारित 'कांगड़ी', 'बर्फ', 'कोयला, 'हांगुल' आदि कविताएँ कश्मीरी की द्योतक हैं। 'जवाहर टन्नल' कविता संग्रह में विस्थापन की त्रासदी का मार्मिक चित्रांकन किया गया है। घाटी से पलायन के उपरांत जवाहर में कवि द्वारा अनुभूत संत्रास का एक बिंब/दृश्य द्रष्टव्य है–

जवाहर लाल नेहरू सुरंग में
जैसे कूट–कूट कर भर गया था अँधेरा
इतने वर्ष
और टप–टप गिरती बूँदें ये
ज़ार–ज़ार रो रहा था पाँचाल पर्वत
नेहरू के गुमान पर
या हमारे हाल पर।[8]

महाराज कृष्ण संतोषी (जन्म सन् 1954 ई.) जैसे कवियों ने कश्मीरी संस्कृति, कश्मीरीयत, आपसी –भाईचारा, मिलनसार, विस्थापन, मानवतावाद, आतंकवाद, अलगाववाद इत्यादि जैसे अनेक विषयों पर लेखनी चलाई है। महाराज कृष्ण संतोषी के अब–तक पाँच काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं– 'इस बार शायद (सन् 1980 ई.), 'बर्फ पर नंगे पाऊँ (सन् 1992 ई.), 'यह समय कविता का नहीं' (सन् 1996 ई.), 'वितस्ता का तीसरा किनारा' (सन् 2005 ई.), 'आत्मा की निगरानी में'(सन् 2015 ई.), 'लल्लद्येद', 'नुंद–ऋषि', 'विचारनाग', 'श्रीनगर का रास्ता' आदि कविताएँ कश्मीर के परिप्रेक्ष्य में अपना एक ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व रखती हैं। 'यह समय कविता का नहीं' काव्य संग्रह में कवि को अपनी मातृभूमि से दूर होने की पीड़ा कसमसा रही है। 'लल्लद्येद' कविता में कवि ने कश्मीर की आदि कवयित्री लल्लेश्वरी का पवित्र एवं आदर्श चित्र खींचा है। यह कविता लल्लद्येद के वाखों की याद दिला देती है। साथ ही उन वाखों पर सोच–विचार करने की प्रेरणा भी देती है। लल्लद्येद के बारे में अनुचित कहने वाले लोगों को कवि सचेष्ट करता है। कवि ने कश्मीर के ऐतिहासिक संत, पीर, औलिया शेख–उल–आलम (सन् 1377– 1438 ई.) के प्रति अपनी आस्था व श्रद्धा 'नुंदऋषि' कविता में व्यक्त की है। कवि ने उनको कबीर, तुलसीदास, गुरुनानक, गौतम बुद्ध आदि के समकक्ष रखा है–

मैं तुम्हें देखता हूँ
इतिहास के काठ दरवाज़े से बाहर
अक्षरों के खुले घर में साँस लेते हुए
कभी कबीर से बतियाते हुए
कभी गले मिलते हुए नानक से
कभी तुलसी से सुनते हुए
उसकी चौपाइयाँ[9]

कवि को श्रीनगर में अपने पुरखों द्वारा आविष्कृत मंगलमय वस्तु (स्थान), 'विचारनाग' के मिट जाने का दुख निर्वासन में भी सता रहा है। यह दुख उनकी कविता 'विचारनाग' में देखा जा सकता है कवि आशावादी भी दिखाई देते हैं। उनको अपने घर (कश्मीर) लौटना अब भी संभव जान पड़ता है–

लौटना अब भी संभव है
पर कहते हैं
विचारनाग में
अब हमारे लिए जगह नहीं रही[10]

'यह समय कविता का नहीं' काव्य संग्रह की कविताएँ भोगे हुए यथार्थ की पीड़ागत कथा सुनाती हैं। विभिन्न विषयों पर आधारित यह काव्य–कृति पर बीते हुए हालात को बयाँ करती हैं। "व्यथा ही जीवन की कथा रही" की उक्ति के ढर्रे पर कवि की कविताएँ निर्मित हुई हैं। कवि की व्यथा का एक बिंब द्रष्टव्य है–

आज मैं खुश हूँ अपने जन्मदिन पर
यह जानते हुए भी कि
माँ के बनाए हुए पीले चावलों से
अलग नहीं है
मेरी व्यथा का रंग[11]

संतोषी जी का अधिकतर साहित्य विस्थापन पर टिका है। विस्थापन पर बहुत ज्यादा लिखते हुए भी कवि ने कभी किसी प्रकार की थकान

महसूस नहीं की है। कारण उनकी कविताएँ स्वयं बयान करती हैं– घर से बिछुड़ने की पीड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी कलम की स्याही विस्थापन साहित्य लेखन के लिए ही बनी हो, जो कविताओं में निरंतर प्रवाहित रहती है।

वस्तुतः सन् 1990 ई. से लेकर सन् 2010 ई. तक कश्मीर केंद्रित कविता का पर्याप्त विकास हुआ। इस कालावधि में अनेक कवि कश्मीर को केंद्र में रखकर हिंदी–कविता कर्म में रत रहे, जिनमें अधिकतर कवि मूलतः कश्मीरवासी हैं। इन कवियों का प्राकृतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक चिंतन से ओत–प्रोत काव्य कश्मीर को प्रतिबिंबित करता है। ऐसे कवियों में निदा नवाज़, सतीश विमल, बदरीनाथ भट्ट, जमीला मीर, मुदस्सिर अहमद भट्ट आदि विशेष महत्व के अधिकारी हैं।

निदा नवाज़ (जन्म सन् 1963 ई.) के अब तक तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं– 'अक्षर–अक्षर रक्त भरा' (सन् 1998 ई.), 'बर्फ और आग' (सन् 2015 ई.), 'अंधेरे की पाज़ेब'(सन् 2019 ई.)। वह कश्मीर घाटी के एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने हिंदी में विशेषतः कश्मीर के हिंदी साहित्य–जगत में अपनी एक विशिष्ट एवं सुदृढ़ पहचान बनाई है। उनकी कविताओं में कश्मीर अपने यथार्थ रूप में दिखाई पड़ता है। उनके साहित्य का पठन करते समय उनका असमझौतावादी होना स्पष्ट जान पड़ता है। एक हिंदीतर–क्षेत्र में हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना अपने–आप में अद्‌वितीय है। डोगरी विद्‌वान रामनाथ शास्त्री का कहना है– "उसने (निदा नवाज़) वादी में दहशत तथा वहशत के दौर में भी, वादी में रहकर ही अपनी काव्य–साधना परवान चढ़ाई है।"[12] उन्होंने कल्पना का कम यथार्थ का अधिक सहारा लिया है जिसे कवि का यथार्थवादी होना स्पष्ट जान पड़ता है। निदा नवाज़ के काव्य संग्रहों के शीर्षक पाठक को चौंका देते हैं, जैसे– "अक्षर–अक्षर रक्त भरा", अर्थात् कवि का मानना है कि यह कविताएँ कश्मीर में हो रहे रक्तपात की गाथा सुनाती हैं। रक्त–होली का एक बिंब देते हुए कवि कहता है–

मैं पूछता हूँ
साँझ की लालिमा से
क्या रक्त उसी रंग का नाम है
जो हमारे हर शब्द का स्वभाव
हर कविता का अभिमान
और हर पुस्तक का शीर्षक
ठहर गया?[13]

निदा नवाज़ कृत 'बर्फ़ और आग' काव्य संग्रह कश्मीर घाटी के पिछले दो दशकों का पद्‌यात्मक इतिहास है। रचना कश्मीर की लुटी–पिटी आत्मा और क्षतिग्रस्त शरीर की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। निदा नवाज़ ने एक आम आदमी की सच्चाई को अपनी कविता में जगह दी है। कवि ने जनता के विचारों को वाणी देने का भरसक प्रयास किया है। चिनार के सूखे पत्तों के साथ कवि सामान्य कश्मीरी की उपमा देते हुए कहते हैं–

चिनार के बूढ़े पत्तों की तरह
झर जाते हैं हम
रुकवाते हैं वो हर मोड़ पर
गाड़ी हमारी
अभ्रद भाषा में
हमें कहा जाता है
उतरने के लिए
काँपते–काँपते ढल जाते हैं
एक कतार में
× × × ×
वे छीन लेते हैं हम से
हमारा आत्मसम्मान
हमारी गैरत[14]

'अंधेरे की पाज़ेब' काव्य संग्रह सन् 2015 से 2019 ई. तक का कश्मीर का काव्यात्मक इतिहास है। यथार्थ से परिपूर्ण यह कविताएँ कश्मीर का दुख–दर्द सुनाती हैं, जिसका प्रमाण संग्रह में संग्रहित– 'कर्फ्यू', 'मैं असमर्थ हूँ', 'मानव रक्त का

चस्का', 'ब्लैकमेल', 'बंकर बस्ती', आदमखोर कानून की आड़ में', 'एहतिजाज का पोस्टर', 'नन्हीं आँखें छीनने की रस्म', 'मैं तुम्हें सलाम करता हूँ', वो जो गुमनामी में मारे गए' आदि जैसी कविताएँ हैं। कवि द्वारा विस्थापन पर लिखी गई कविताएँ शांत तथा करुण रस में परिपूर्ण कविताएँ हैं। 'बेघर हुए परिंदों का काफिला' की निम्न पंक्तियाँ 'विस्थापन' कविता तथा नास्तालजिया का उत्कृष्ट उदाहरण है–

परिंदों का एक क़ाफिला
अपनी बिफ़री यादों में
उजड़े नीड़ों के तिनकों
और
नोंचे गए पंखों के दृश्य लिए
× × × ×
खट्टी–मीठी यादों के बिंब लिए
चल दिया अंधेरों को फलाँगते[15]

कवि ने बर्बरता के उन सारे कुत्सित प्रसंगों का उल्लेख किया है जिनसे कश्मीरी लोग पिछले 30 वर्षों से जूझ रहे हैं। आलोच्य रचना में कश्मीर की भयावह त्रासदी का सजीव वर्णन किया गया है। यह कविताएँ पाठक के मन व मस्तिष्क को व्यथा के अथाह सागर में ले जाकर Real face of Kashmir को प्रदर्शित करती है। क्रूर, असामान्य, परिस्थितियों से जूझ रहे सामान्य कश्मीरी के प्रति कवि की संवेदना व शोक मर्मांतक है–

मुझसे नहीं देखा जाता है
तुम्हारी माओं का रुदन
बहनों का विलाप
तुम्हारे पिताओं की
सूखी–सहमी आँखें
क्या तुम नहीं जानते थे
शिकारी ताक़ लगा कर बैठे हैं
और तुम बेपरवाह कुलाचें भर रहे थे
आज़ाद हिरणों की तरह।[16]

निदा नवाज़ का वर्ण्य–विषय काफ़ी विस्तृत रहा है। उन्होंने कई विषयों पर अपनी कलम आज़माकर सफलता प्राप्त की है। कश्मीर की संस्कृति, विस्थापन, राजनीति, भ्रष्टाचार, मानवतावाद आदि कवि के केंद्रीय–विषय रहे हैं। निदा नवाज़ के मानवतावादी काव्य–बोध पर डॉ. ज़ाहिदा जबीन की टिप्पणी सटीक जान पड़ती है–

निदा 'मानवता' के पुजारी जान पड़ते हैं। अपनी कई कविताओं में कवि ने मानवता के प्रचार–प्रसार पर बल दिया है।[17]

सतीश विमल (जन्म सन् 1966 ई.) कश्मीर के उन प्रतिष्ठित हिंदी कवियों में से हैं जिन्होंने पलायन का मार्ग त्यागकर घाटी में रहकर ही अपनी काव्य यात्रा गंतव्य तक पहुँचाई। उनके प्रथम काव्य संकलन 'विनाश का विजेता' (सन् 1992 / 2002 / 2006 ई.) में मानव–मूल्यों, जीवनानुभूतियों और यथार्थ की अभिव्यक्ति का सम्मिश्रण मिलता है। आलोच्य संग्रह की समकालीन हिंसा–प्रतिहिंसा का प्रतीकात्मक ढंग से रेखांकन किया गया है। विमल ने आतंक और हिंसा की अभिव्यक्ति– 'आज गोली चली', 'गुहार', 'रंगसाज़' आदि कविताओं में की है। कवि व्यंग्योक्तियों द्वारा कविता में परिहास का पुट डालने में सफल हुए हैं।

बदरीनाथ भट्ट कृत 'सुषमा कश्मीर की' (सन् 2018 ई.) काव्य संग्रह कश्मीर घाटी का प्रकृति से प्रस्फुटित सौंदर्य का दर्पण है। कवि अपनी प्राचीन संस्कृति के लुप्त होने के प्रति पर्याप्त चिंतित है। आधुनिक शहरी वातावरण में कवि का दम घुट जाता है। बद्रीनाथ भट्ट ने विस्थापन को भी अपनी कविता में जगह दी है। 'काँगड़ी वाला' कविता में काँगरी बेचेने वाले का मनोहारी चित्रण किया गया है–

आँगन में कोई आया, 'लेलो, काँगरी, मैया,
केवल एक बची है, दे दो जो जी चाहा।
माँ कहती हैः 'दस आने, 'मैंने देदी एक अठन्नी,
छोटा था वह बालक, दे गया रंगीन काँगरी।'[18]

युवा कवि मुदस्सिर अहमद भट्ट का एकमात्र काव्य संग्रह 'स्वर्ग–विराग' (सन् 2016 ई.) भाषा एवं भाव–पक्ष की दृष्टि से निदा नवाज़ के काव्य–संसार के समकक्ष ठहरता है। 'स्वर्ग–विराग' एक सामान्य कश्मीरी की मनोदशा, उसकी पीड़ा,

कुंठा, संत्रास, आशा–आकांक्षा, भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है। समाज तथा व्यवस्था–तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं शोषणखोरी पर कवि व्यंग्य कसते हुए कहते हैं–

अब तो बदली जाती है
पत्नी भी
यूँ दबदबा बनाए रखने खातिर
करते हैं कई
कुकर्म कवच ओढ़कर
कभी मान पाने के लिए
करते हैं अपमानित
अंतर आत्मा को...[19]

जहाँ बाहरी लोगों के लिए कश्मीर की प्रकृति आकर्षण का केंद्र है वहीं, यह प्राकृतिक सौंदर्य कवि के लिए कृत्रिम है, मिथ्या है। उनको इस सौंदर्य रूपी प्रकृति में भी आतंक और रक्तपात ही दिखाई देता है। धरती पर स्वर्ग कहा जाने वाला कश्मीर कवि के लिए राजनीति खेलने वाले सत्तादारों की रणभूमि मात्र है। कश्मीर में बेरोज़गारी की समस्या और घूस न देने के कारण रोज़गार से वंचित रहने का हताश भाव संग्रह में संगृहित 'प्रेमचंद का होरी हूँ', कविता में देखा जा सकता है। कवि का वर्ण्य–विषय सराहनीय है।

हिंदी में कुछ कवियों का एक समूह ऐसा भी है जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आकर कश्मीर में आजीवन रहने लगे, जिनमें डॉ. मुहम्मद अय्यूब खाँ 'प्रेमी', डॉ. मज़हर अहमद खाँ, डॉ. रमेश कुमार शर्मा आदि विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि यह यहाँ की प्रकृति से पर्याप्त प्रभावित थे। मज़हर अहमद खाँ की कविताएँ कश्मीर के उस परिवेश पर आधारित हैं जिसमें एक ओर त्रासद अनुभव की प्रकृति है तो दूसरी ओर कश्मीरी संस्कृति का सुखद एहसास भी है। शिशिर ऋतु में घाटी की अवस्था कैसी हो जाती है, इसका चित्रण 'निपात ठिठुरती घाटी' कविता में किया गया है–

प्रकृति के अंग–अंग में
समा गया है हिम।
समय के क्रूर हाथों ने
पत्ते नोच डाले हैं।
शोक में डूबी है
सारी वादी–
निर्वाक–निश्चेष्ट।

कश्मीर के परिप्रेक्ष्य में मज़हर अहमद खाँ की 'निपात संध्या', 'मस्त हवाएँ', 'इसे स्वर्ग ही रहने दो' आदि कविताएँ प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक चिंतन से ओत–प्रोत कविताएँ हैं।

वस्तुतः विश्व सहित भारत के विभिन्न क्षेत्रों से सैकड़ों लोग वादी का भ्रमण करने आते रहते हैं स्वाभाविक है कि इनमें हिंदी के कविगण भी आते होंगे। इन्हीं कवियों में शुभश्री पाणिग्राही एक विशेष नाम हैं। उनके द्वारा रचित काव्य संग्रह 'पन्ने कश्मीर के' (सन् 2015 ई.) कश्मीर के प्राकृतिक दृश्यों का अमूल्य दस्तावेज़ है। कवयित्री ने भावों को प्रधानता देकर रचना का भाव–पक्ष बड़ा ही आकर्षक बना दिया है। जैसे कि लेखिका स्वयं लिखती हैं– "इस कविता संकलन की प्रत्येक कविता में मैंने भावना को ही प्राधान्य दिया है, शब्दों को नहीं।"[20] कवयित्री कश्मीर को एक शिशु की दृष्टि के समान देखती है। 'मेरा कश्मीर मेरा कश्मीर' शैली अपनाकर कवयित्री ने कश्मीर और कश्मीरियों के प्रति अपना अपारा स्नेह प्रकट किया है। कश्मीर उनकी नस–नस में बस गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

हिम धूलि तुम्हारा चेहरा
मैंने ढूँढा तुमको
हर पल, हर साँस में
क्योंकि बसे हुए थे तुम
मेरी रग–रग में।[21]

अतः कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ के पर्यटनादि से भी कश्मीर केंद्रित कविता का विकास हुआ है।

इसी प्रकार देश–प्रदेश के सैकड़ों कवि जैसे–अशोक कुमार पांडेय, रामदत्त शास्त्री, कमलजीत चौधरी, अनिला सिंह चांडक, चंचल डोगरा, श्री नरेश कुमार उदास, कृष्ण कुमार शर्मा, आलोक श्रीवास्तव, हंसराज भारती, निर्मल विनोद, सुशील कुमार शर्मा, कुसुम शर्मा अंतरा, शेख मुहम्मद

कल्याण, डॉ. रूबी जुत्शी आदि समकालीन समय में कश्मीर संबंधित काव्य सृजन में संलग्न हैं।

सन् 1975 ई. में उत्तरप्रदेश में जन्में अशोक कुमार पांडेय का 'लगभग अनामंत्रित' काव्य संग्रह की 'यह किन हाथों में पत्थर है' कविता में सत्ता के विरुद्ध कश्मीरी युवा वर्ग की हिंसा–प्रतिहिंसा का स्वर सुनाई पड़ता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

वह पत्थर जिनके हाथ में है वे भी तो मेरे अपने हैं
मेरी ही तरह उन आँखों में भी आज़ादी के सपने हैं [22]

'प्रलय में लय जितना' संग्रह की 'कश्मीर –जुलाई के कुछ दृश्य' कविता कवि की तीव्र अनुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इस कविता में प्रकृति बनाम सामान्य कश्मीरी की परिस्थितिजन्य पीड़ा का द्वंद्व दिखाई पड़ता है। कश्मीर की हरियाली, पर्वत, देवदार व चिनार के वृक्षों, बागों, फल–फूलों और झेलम की सुंदरता के चित्रण में भी कवि ने एक सामान्य कश्मीरी को सर्वोपरी रखा है। कवि ने बिंबों और प्रतीकों का सहज ही प्रयोग किया है।

रामदत्त शास्त्री की 'शहर– वितस्ता का शहर' कविता में श्रीनगर शहर का सजीव वर्णन मिलता है। चंचल डोगरा की 'हिम–पर्व' कविता में घाटी में हिमपात द्वारा परिवर्तित विभिन्न दृश्यों का नज़ारा देखने को मिलता है। निर्मल विनोद की 'भेड़िये' कविता में डर्टी पॉलिटिक्स पर करारा व्यंग्य किया गया है। अनिला सिंह चाडक (जन्म सन् 1962 ई.) कृत 'नंगे पाँव ज़िंदगी' काव्य संग्रह कश्मीर में हुए मानवाधिकारों के उल्लघंन का प्रतीकात्मक दस्तावेज़ है। कवयित्री को प्रकृति में भी मानव रक्त से उत्पन्न सौंदर्य ही दिखाई पड़ता है। उनकी संवेदना यथार्थाधारित है। कृष्ण कुमार शर्मा की कविता 'मुझे आईडी कार्ड दिलाओ' में कश्मीर की अस्मिता की समस्या को उठाया गया है। उनकी इस लंबी कविता में कश्मीर के लोगों की अस्मिता को क्षेत्रीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक और पहचान से लेकर, अंतरराष्ट्रीय स्तर तक अज्ञात बताया गया है–

बिना आईडी कार्ड के धरती के
इस टुकड़े पर कोई किसी को नहीं पहचानता
न दिल्ली
न इस्लामाबाद
न यूएन ओ
न मैं
न तुम। [24]

देश–विदेश की विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में भी कश्मीर संबंधित कुछ छुट–पुट कविताएँ छपती रही हैं, जिनमें– 'शीराजा', 'हमारा साहित्य, 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'दुनिया इन दिनों', आदि विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। सारतः कश्मीर–संबंधित हिंदी काव्य की यह परंपरा श्रीधर पाठक की रचना 'काश्मीर सुषमा' से प्रारंभ होती है। तदुपरांत यह परंपरा निरंतर आगे बढ़ती गई। किंतु इतना स्पष्ट है कि कश्मीर–विषयक साहित्य का अधिक विकास सन् 1990 ई. के बाद हुआ, जिसमें विस्थापन की कविता विशेष रूप से प्रकाश में आई है। इस प्रकार के साहित्य में नास्तालजिया (Nostalgia) –बोध अधिक दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त कश्मीर व कश्मीर के लोगों की समस्याओं ने भी इसमें स्थान पाया है। यहाँ की अद्भुत और आकर्षित करने वाली प्राकृतिक सुंदरता ने तो देश–विदेश के लेखकों को अपनी ओर आकृष्ट किया ही था, किंतु गत कई दशकों की राजनीतिक उथल–पुथल और अनिश्चितता ने भी कश्मीर के लेखकों के लेखन को केंद्र में ला खड़ा किया है। अतः अल्प मात्रा में ही सही, किंतु वर्तमान में भी विभिन्न विषयों, समस्याओं आदि पर आधारित कश्मीर–केंद्रित कविता साहित्येतिहास में स्थान प्राप्त कर निरंतर प्रवाहित हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सलिल, सुरेश(सं.) श्रीधर पाठक रचनावली, अनामिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2013 ई., पृ. 183

2. त्रिपाठी, रामनरेश, स्वप्न. हिंदी मंदिर, प्रयाग, 1928 ई. पृ. 4

3. शांत, डॉ. रतन लाल, खोटी किरणें नींहार पब्लिकेशंस, जम्मू, 1956 ई.

4. राजकुमार (डॉ.) जम्मू कश्मीर का स्वातंत्र्योतर हिंदी साहित्य : एक विवेचन जे. एंड के. एकेडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू, 1999 ई. पृ. 70

5. वही, पृ. 155

6. चंद्रकांता, यहीं कहीं आसपास नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1999 ई. पृ. 10

7. वही, पृ. 16

8. अग्निशेखर (डॉ.) जवाहर टन्नल मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2009 ई.

9. संतोषी, महाराज कृष्ण, आत्मा की निगरान में, मानस पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2015 ई., पृ. 24

10. वही, पृ. 9

11. संतोषी, महाराज कृष्ण, यह समय कविता का नहीं, शारदापीठ प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 1996 ई. पृ. 9

12. नवाज़, निदा, अक्षर–अक्षर रक्त भरा सरस्वती प्रकाशन, 1998 ई., पृ. 8

13. वही, पृ. 14

14. नवाज निदा, बर्फ़ और आग अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015 ई., पृ. 77

15. नवाज. निदा, अंधेरे की पाज़ेब सेतु प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली, 2019 ई. पृ. 125–126

16. वही, पृ. 23

17. डॉ. जबीन, ज़ाहिदा (डॉ.) 'कश्मीर की हिंदी कविता एवं सरोकार' हमारा साहित्य, 2007 पृ. 21

18. भट्ट, बदरीनाथ, सुषमा कश्मीर की, स्वयं लेखक द्वारा प्रकाशित, 2018 ई. पृ. 55

19. भट्ट, मुदस्सिर अहमद, स्वर्ग विराग चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, 2016 ई. पृ. 73

20. पाणिग्राही, डॉ. शुभश्री पन्ने कश्मीर के. एराइज. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2015 ई. पृ. 9

21. वही, पृ. 13

22. पांडेय, अशोक कुमार लगभग अनामंत्रित शिल्पायन प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2011 ई. पृ. 52

23. सक्सेना, डॉ. सुधीर, 'मुझे आईडी कार्ड दिलाओ' दुनिया इन दिनों, अप्रैल–2019 ई. पृ. 65

– शोधार्थी, हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (जम्मू और कश्मीर)–190008

❑❑❑

मातृभाषा के द्वारा अध्ययन और अध्यापन का समालोचनात्मक विमर्श

डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार

सीखने–सिखाने में मातृभाषा का प्रयोग होना चाहिए। इसकी माँग लंबे समय से शिक्षा जगत में होती रही है किंतु जब से 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में पहली से पाँचवी कक्षा तक, शिक्षण का माध्यम मातृभाषा करने की संस्तुति दी गई है। तब से ही, शिक्षा जगत में इसकी चर्चा पुनः होने लगी है कि शिक्षण की माध्यम भाषा क्या होनी चाहिए? इस चर्चा में दो अलग–अलग पक्ष हैं। एक पक्ष वह है, जो मातृभाषा को शिक्षण का माध्यम स्वीकार करता है। उसका कहना है कि बालक अपनी मातृभाषा में, सरलता और सहजता से अधिगम करता है जोकि मनोवैज्ञानिक भी है। दूसरा पक्ष वह है, जो मातृभाषा को शिक्षण का माध्यम नहीं मानता है। उसका तर्क है कि बालक का शिक्षण, उस भाषा में करना चाहिए जिस भाषा को सीखकर, वह जीवनयापन करने में समर्थ हो सके। प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं दोनों पक्षों के तर्कों का तथ्यात्मक रूप से विश्लेषण किया जाएगा।

महत्वपूर्ण बिंदु

मातृभाषा, शिक्षा की माध्यम भाषा, स्थानीय भाषा।

अभी हाल में ही आई नई नवेली 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' ने शिक्षण के माध्यम के रूप में मातृभाषा के अपनाने की संस्तुति दी इसमें कहा गया कि 'जहाँ तक संभव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक, लेकिन बेहतर यह होगा कि यह ग्रेड 8 और उससे आगे तक भी हो, शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा/मातृभाषा/ स्थानीय भाषा/ क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद घर/स्थानीय भाषा को जहाँ तक भी संभव हो, भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह से स्कूल इसकी अनुपालना करेंगे। विज्ञान सहित सभी विषयों में उच्चतर गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकों को घरेलू भाषाओं/ मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाएगा। यह सुनिश्चित करने के लिए सभी प्रयास जल्दी किए जाएँगे कि बच्चे द्वारा बोली जाने वाली भाषा और शिक्षण के माध्यम के बीच यदि कोई अंतराल मौजूद हो तो उसे समाप्त किया जा सके।[1] 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के इसी कथन के बाद से ही शिक्षा जगत में यह विषय पुनः चर्चा में आया कि शिक्षा की माध्यम भाषा क्या होनी चाहिए? शिक्षण का माध्यम, किस भाषा को बनाना चाहिए। क्योंकि यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि भाषा सदैव से ही देश की राजनीति का शिकार या राजनीतिक महत्वाकांक्षा की भेंट चढ़ी है। खैर अगर बात करें, शिक्षण या अधिगम के रूप में मातृभाषा को स्वीकारने की तो हमें पहले कुछ बातों पर विचार करना होगा कि मातृभाषा क्या है? और शिक्षण के माध्यम से क्या आशय है? मातृभाषा का अर्थ इस शब्द में ही छिपा हुआ है कि मातृ (माता) भाषा (बोली) अर्थात् माता द्वारा बोली जाने वाली या माता द्वारा सीखी जाने वाली भाषा

ही मातृभाषा है जिसे 'राष्ट्रीय नीति 2020' में घर की भाषा/घरेलू भाषा या स्थानीय शब्दों से संबोधित किया गया है। शिक्षण की माध्यम भाषा से आशय है कि जिस भाषा के द्वारा अध्ययन–अध्यापन कार्य किया जाता है वह भाषा ही शिक्षा का माध्यम कहलाती है और यह शिक्षा की माध्यम भाषा, अपनी मातृभाषा भी हो सकती है और दूसरी भाषा भी। अध्ययन– अध्यापन कार्य का माध्यम मातृभाषा को बनाने का मुख्य उद्देश्य है कि व्यक्ति को अपने समाज और देश के साथ सुदृढ़ और सशक्त रूप से जोड़ना क्योंकि मातृभाषा किसी व्यक्ति के लिए केवल संवाद करने का माध्यम मात्र नहीं होती है, यह व्यक्ति को अपने समाज और देश के साथ जोड़े रखने का एक सशक्त माध्यम भी है जो व्यक्ति को अपने भाषाई समाज के विविध सामाजिक संदर्भों से जोड़ती है और उसकी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण करती है। मातृभाषा प्रेम के आधार पर व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति के साथ जुड़ा रहता है, क्योंकि यह मातृभाषा उस व्यक्ति विशेष की संस्कृति, संस्कारों, परंपराओं और सामाजिक विचारों की संवाहिका होती है। यह वह संपत्ति या विरासत है जो अपनी माँ या पारिवारिक जनों से प्राप्त हुई है। इससे मातृभाषा के प्रति उसका निस्वार्थ प्रेम होता है किसी के लिए यह पूर्वाग्रह हो सकता है किंतु उस व्यक्ति विशेष के लिए उसकी अस्मिता की पहचान है। यह वह भाषा है जिसे व्यक्ति पालने में सीखता है जिससे व्यक्ति का समाजीकरण होता है। यह उस भाषा के प्रयोक्ता की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान और बौद्धिक विकास के साथ–साथ उसकी संवेदनाओं और अनुभूतियों की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी है। बालक मातृभाषा प्रायः 08 वर्ष तक सीख लेता है इसका मतलब है कि जब वह कक्षा तीसरी या चौथी में होता है तो मातृभाषा के प्रयोग में निपुण हो चुका होता है। यदि उस समय उसकी मातृभाषा में विषयों को पढ़ाया जाए तो वह पढाए जा रहे ज्ञान को सरलता और सहजता से सीख सकता है। जबकि वर्तमान में विद्यालयों में इसके बिल्कुल उलट होता है। यहाँ उसे बलात् ही अन्य भाषा या भाषाओं द्वारा पढ़ाई कराई है। बालक अपनी मातृभाषा में धारा–प्रवाह बोलने में पहले से ही समर्थ होता है। मातृभाषा को अध्ययन–अध्यापन की भाषा के रूप स्वीकारने के संदर्भ में स्वामीनाथन अय्यर की रिपोर्ट के अनुसार "बच्चों के सीखने के लिए सर्वाधिक सरल भाषा वह ही है जो वे घर में बोली जाने वाली भाषा सुनते हैं। यही उनकी मातृभाषा है।" मातृभाषा के स्वरूप के विषय में प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी का विचार है कि भारत में यदि हम मातृभाषाओं के स्वरूप को देखें तो पाएँगे कि तमिल, तेलुगु, कन्नड, हिंदी, गुजराती, ओडिया, बांग्ला, मराठी, आदि सभी भारतीय भाषाएँ मूल रूप से उस क्षेत्र विषय के लोगों के लिए उनकी मातृभाषाएँ ही हैं। हिंदी के संदर्भ में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि मातृभाषा के रूप में हिंदी भाषा का विकास मूल रूप से विभिन्न बोलियों के समूहों से हुआ। ब्रज, खड़ी बोली, भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मारवाड़ी, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों के प्रयोक्ता अपने बोली–क्षेत्र के बाहर के वृहत्तर समाज से जुड़ने तथा अपनी सामाजिक अस्मिता स्थापित करने के लिए हिंदी को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं और सीखते हैं जबकि इसकी बोलियाँ ही वास्तविक मातृभाषा ही हैं।[2] मातृभाषा के द्वारा शिक्षा नीति पर बल देते हुए देश के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्वामीनाथन अन्कलेसरिया अय्यर का कहना है कि "स्कूलों में यदि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है तो नौनिहालों की ग्राह्यक्षमता अन्य भाषा में दी गई शिक्षा के मुकाबले कई गुना ज्यादा होती है। विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि तकनीकी तौर पर किताब पढ़ते समय पहली व दूसरी कक्षा के बच्चों की ग्राह्य क्षमता प्रति शब्द 12 सेकंड से कम होती है। यदि दूसरी भाषा में शिक्षा प्रदान की जाती है तो बच्चों को उक्त भाषा को पहले अपनी मातृभाषा में परिवर्तित करना पड़ता है और फिर समझना पड़ता है। इस क्रम में उन्हें 12 सेकंड से ज्यादा समय लगता है।"[3] शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा साध्य और साधन दोनों ही रूपों में अपना योगदान देती है। जब मातृभाषा का शिक्षण स्वतंत्र रूप से कक्षाओं

में कराया जाता है तो साध्य के रूप में दिखाई पड़ती है किंतु जब वह अन्य विषयों जैसे विज्ञान, गणित, इतिहास इत्यादि के अध्ययन में वह साधन के रूप में अपनी सशक्त भूमिका के रूप में अपना कार्य करती है। यदि हम छात्र को उसकी मातृभाषा में शिक्षण देते हैं तो वह छात्र अधीत ज्ञान को लंबे समय तक अपने मस्तिष्क में रखता ही है साथ ही पढ़ाए जा रहे ज्ञान को सरलता और सहजता से भी समझ सकता है किंतु यदि यही ज्ञान हम उसे उसकी स्वयं की भाषा में ना देकर किसी दूसरी भाषा में देते हैं तो पढ़ाए जा रहे ज्ञान को समझने में अधिक समय तो लेगा ही साथ ही उस विषयवस्तु को समझने में भी वह कठिनता का अनुभव करेगा क्योंकि वह उस अधीत विषय को पहले अपनी मातृभाषा में परिवर्तित करता है। फिर उसको समझता है जिसमें उसका श्रम और समय दोनों का ज्यादा व्यय होता है। यही नहीं किसी अन्य भाषा से शिक्षा प्राप्त करने में वह मातृभाषा की अपेक्षा कम आत्मीयता का अनुभव करता है। जिससे उसका बौद्धिक विकास भी अवरुद्ध होता है। जब हम मातृभाषा को साध्य के रूप में कहते हैं तो उससे आशय बालक की उस भाषा से है जिसे वह बाल्यकाल से ही बोलता और समझता है, जिसका शिक्षण उसे विद्यालय में कराया जाता है जिससे उसकी बौद्धिक चेतना में वृद्धि होती है। उस मातृभाषा का अधिगम से वह अपनी दैनंदिन जीवन को प्रभावी रूप से चलाने में सक्षम और समर्थ बन जाता है। मातृभाषा को जब हम साधन के रूप में देखते हैं तो यह अन्य विषयों जैसे इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, भाषाविज्ञान, तकनीकी, सूचना संचार, समाजशास्त्र इत्यादि के अध्ययन के माध्यम के रूप में अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करती दिखाई पड़ती है। इन दोनों ही रूपों में मातृभाषा अपना काफी महत्वपूर्ण योगदान देती है। मातृभाषा के द्वारा अध्ययन करने से छात्र किसी भी विषय को सरलता और सहजता से तो समझता ही है साथ ही उस विषय के अध्ययन में आनंद, संतुष्टि और आत्मीयता का अनुभव भी करता है। मातृभाषा की इसी उपादेयता को देखते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मातृभाषा के विषय में कहा है "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल" अर्थात् निज भाषा (मातृभाषा) का ज्ञान ही किसी व्यक्ति की उन्नति का आधार है और इस निजभाषा के ज्ञान से ही उस व्यक्ति को आनंद की अनुभूति मिल सकती है। मातृभाषा का ज्ञान बालक को शीघ्रता से उसे बोलने, समझने, पढ़ने और लिखने में समर्थ तो बनाता ही है साथ ही उसकी सृजनात्मकता, रचनाधर्मिता और तार्किकशक्ति का विकास भी करता है। इन दक्षताओं के विकास से वह साहित्य सृजन करने में भी सक्षम और दक्ष बन जाता है। यह मातृभाषा का ज्ञान उसे जीवंत और सशक्त बनाता है। यहाँ मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम ना बनाने की सिफारिश करने वाले विद्वानों का तर्क के विषय में बात करना भी आवश्यक है उनका तर्क है कि यदि बालक को मातृभाषा में शिक्षा देते तो वह अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाएगा और उसे रोजगार के अवसर भी कम हो जाते हैं। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम के रूप में खंडन करने वालों का यह तर्क पूरी तरह तथ्यविहीन और भ्रामक है। शिक्षा की गुणवत्ता की रैंकिंग करने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्था है जिसका नाम है 'प्रोग्राम फॉर इंटरनेशनल स्टूडेंट्स असेसमेंट (PISA) यह अस्सी देशों के पंद्रह साल के छात्रों की निष्पादन क्षमता की रैंकिंग करती है। यहाँ '2018' की रिपोर्ट का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रोग्राम फॉर इंटरनेशनल स्टूडेंट्स असेसमेंट (PISA) की टॉप रैंकिंग वाले जितने देश थे जैसे चीन, इस्टोनिया, आयरलैंड फिनलैंड, साउथ कोरिया, जापान– इन सब देशों ने अपने यहाँ प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही रखा है। मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने से बालक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नहीं पिछड़ता है यह बात इस रिपोर्ट के आँकड़ों से ही सिद्ध हो जाती है। मातृभाषा द्वारा पढ़ने से बालक अपने ज्ञान में और निष्णात होता है ना कि उस विषय के अवबोध में पिछड़ता है। शिक्षा मातृभाषा के महत्व को बताते हुए प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी का कहना है

कि "आज संपूर्ण विश्व के अधिकतर देशों ने शिक्षा का माध्यम अपनी मातृभाषा को ही रखा है; जैसे– चीन और ताइवान ने अपनी मानक चीनी भाषा (मंदारिन), जापान में जापानी, दक्षिण और उत्तर कोरिया में कोरियन, कंबोडिया में खमेर, थाईलैंड में थाई, लाओस में लाओ, इस्राइल में हिब्रू, फ़िनलैंड में फ़िन्निश, स्वीडन में स्वीडिश, फ्रांस में फ्रेंच, पोलैंड में पोलिश, रूमानिया में रूमानियन, आइसलैंड में आइसलैंडिक, रूस में रूसी और बेलारूस में रूसी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बेलारूसी, अमरीका में मुख्यतः इंगलिश और कुछ भागों में स्पेनिश, कनाडा में इंगलिश या फ्रेंच, ब्राजील में ब्राज़ीलियन पुर्तगाली, अफ्रीका महाद्वीप में तंज़ानिया में स्वाहिली, दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीकंस, जूलु, खोसा आदि कोई निजी भाषा और ऑस्ट्रेलिया में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता है। इनमें से अधिकतर देशों में प्राथमिक स्तर से स्नातक स्तर तक मातृभाषा शिक्षा–माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती हैं और कुछ ही देशों में प्राथमिक स्तर पर। संयुक्त अरब अमीरात में माध्यमिक स्कूली शिक्षा अंग्रेजी में होती है, किंतु छात्र स्नातक होने के बाद भी अंग्रेजी के अपेक्षित स्तर पर नहीं पहुँच पाते।"[4] मातृभाषा के महत्व को समझते हुए 21 फरवरी 1952 को ढाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने तत्कालीन सरकार की भाषा नीति के खिलाफ कड़ा विरोध किया। जिसमें कई लोगों की जान गई थी बाद में उनकी स्मृति में 21 फरवरी को मातृभाषा दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। कालांतर में सन् 1999 में यूनेस्कों ने इसे 'अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा' के रूप में मनाने की घोषणा कर दी। इसके बाद सन् 2000 में संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा में 21 फरवरी को 'मातृभाषा दिवस' मनाने की अधिकारिक घोषणा कर दी गई। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की सिफारिश करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का कहना है कि "हमें और हमारे बच्चों को अपनी विरासत पर ही आगे बढ़ना होगा अगर हम दूसरों से लड़ेंगे तो अपने आपको शक्तिहीन बना देंगे। विदेशी खाद पर हम पनप नहीं सकते। मैं विदेशी खजाने को अपनी भाषाओं के माध्यम से लेना चाहता हूँ शिक्षा का माध्यम किसी भी हालत में तुरंत बदला जाना चाहिए। प्रादेशिक भाषाओं को अपना उचित स्थान मिलना चाहिए। मैं तो इस बढ़ती आपराधिक हानि की तुलना में उच्च शिक्षा में कुछ दिनों की उठापटक ज्यादा पसंद करूँगा।"[5] बापू के इस कथन से ही ज्ञात होता है कि शिक्षा के माध्यम के रूप में वे मातृभाषा के कितने प्रबल समर्थक थे? अगर बात करें हिंदी भाषा को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करने वाले लोगों की तो 'जनगणना 2011' के अनुसार 46.63 प्रतिशत लोगों ने हिंदी को मातृभाषा के रूप में चुना जबकि 13.9 और 2.4 प्रतिशत लोगों ने क्रमशः द्वितीय और तृतीय भाषा के रूप में हिंदी का चयन किया। 'जनगणना 2011' के भाषा संबंधी आंकड़ों के अनुसार हिंदी भारत की सबसे तेजी से बढ़ने वाली भाषा है वर्ष 2001 से वर्ष 2011 के बीच देश में हिंदी बोलने वाले लोगों की संख्या में 10 करोड़ की वृद्धि दर्ज की गई है। आंकड़ों के मुताबिक हिंदी की वृद्धि दर 25.19 फीसदी रही है।[6] हिंदी के मातृभाषा के रूप में महत्व को समझाते हुए 14 सितंबर, 2017 को राजभाषा विभाग, नई दिल्ली द्वारा विज्ञान भवन में एक कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद द्वारा कहा गया हैं कि "हिंदी अनुवाद की भाषा नहीं बल्कि संवाद की भाषा है किसी भी भाषा की तरह हिंदी भाषा भी मौलिक सोच की भाषा है" हिंदी को मातृभाषा के रूप में प्रोत्साहित करने के लिए राजभाषा विभाग लीला (लर्निंग इंडियन लैंग्वेज विद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) एक अप्लिकेशन की शुरुआत की गई है। ये तो हिंदी को मातृभाषा बनाने के लिए केवल शुरुआत मात्र है। ऐसे बहुत से कार्य करने की आवश्यकता है जिन्हें किया जा सकता है। यहाँ कुछ कार्यों के विषय में संक्षिप्त चर्चा की जा रही है। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपना योगदान देना होगा तभी हम मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थान दिलाने में सफल हो सकते हैं।

मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए सुझाव–अध्ययन–अध्यापन की माध्यम भाषा के रूप

में मातृभाषा को स्थान दिलाने के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। इसी संदर्भ में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में त्रिभाषा फार्मूला को पर्याप्त लचीला बनाया है जिसके तहत "किसी भी राज्य पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी। बच्चों द्वारा सीखी जाने वाली तीन भाषाओं का विकल्प राज्यों, क्षेत्रों और निश्चित रूप से छात्रों के स्वयं के होंगे, जिनमें से कम से कम तीन में से दो भाषाएँ भारतीय भाषाएँ हों।" (4.13) यह प्रावधान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मातृभाषा के माध्यम से पठन–पाठन के संवर्धन में सहायक सिद्ध होगा। ऐसे अनेक प्रयासों की आवश्यकता है मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए। जहाँ तक संभव हो मातृभाषा में गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध हो जिससे मातृभाषा में ही विद्यार्थियों को उपयोगी पाठ्यसामग्री उपलब्ध हो सके। क्योंकि प्रायः स्थानीय या मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाते समय यह आरोप लगता है कि इस भाषा में छात्रों को गुणवत्तापूर्ण पाठ्यसामग्री प्राप्त नहीं हो पाती है। इसी बात को ध्यान में रख कर 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में प्रावधान किया गया है कि "उच्चतर गुणवत्ता वाली विज्ञान और गणित में द्विभाषी पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण अधिगम सामग्री को तैयार करने के सभी प्रयास किए जाएँगें ताकि विद्यार्थी दोनों विषयों पर सोचने और बोलने के लिए अपने घर की भाषा/मातृभाषा और अंग्रेजी दोनों में सक्षम हो सके।"[7] इसके अलावा मातृभाषा में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है ताकि जो छात्र मातृभाषा के माध्यम से अध्ययन कर रहे हैं उन्हें भी आकर्षक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें। साथ ही अन्य छात्र भी मातृभाषा द्वारा अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित हो सकें। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने में व्यक्तिगत प्रयासों के साथ–साथ ही, मातृभाषा के द्वारा कार्य करने के संकल्प में प्रशासनिक उदासीनता दूर करने का प्रयास भी किया जाना चाहिए। इस राष्ट्रीय महत्व के कार्य में राजनीतिक इच्छा–शक्ति और प्रशासनिक दायित्व का सही से निर्वहन नितांत आवश्यक है। तभी शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को स्थान प्राप्त हो सकेगा। भारत बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है। इसमें अंग्रेजी, जापानी, चाइनीज आदि विदेशी भाषाओं को सीखने और सिखाने में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं है क्योंकि हम अन्य देशों की संस्कृति और भाषाओं का सम्मान करते हैं किंतु यह सम्मान भारतीय भाषाओं को दोयम दर्जे का बना कर नहीं किया जा सकता है। मातृभाषाओं को शिक्षा की माध्यम भाषा केवल प्राथमिक स्तर की कक्षाओं तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए अपितु इन्हें उच्च कक्षाओं में भी शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि मातृभाषा का शिक्षा के माध्यम भाषा के रूप में विस्तार सीमित रूप में ना हो बल्कि व्यापक और सुदृढ़ रूप में हो। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में इसी बात पर बल देते हुए सुझाव दिया गया है कि "अधिक उच्चतर शिक्षण संस्थानों तथा उच्चतर शिक्षा के और अधिक कार्यक्रमों में मातृभाषा/स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाएगा।"[8] मातृभाषाओं को शिक्षा की माध्यम भाषा बनाने या स्थान दिलाने के लिए समाज के प्रत्येक हितधारक (बालक, अभिभावक, विद्यालय, राजनीतिक दल, प्रशासन और नीति निर्माताओं इत्यादि) को अपने हिस्से का कार्य करना होगा अन्यथा हमारी भावी पीढ़ी अन्य या विदेशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम भाषा के रूप में पढ़ने में अपने समय, धन और श्रम का अनावश्यक व्यय करती रहेगी। आज जरूरत है मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम भाषा के रूप में उचित स्थान दिलाने की ताकि विद्यार्थी में ज्ञान प्राप्ति के साथ–साथ अपनी संस्कृति और भाषाओं के प्रति आत्मीयता का विकास भी हो सके अन्यथा अन्य भाषाओं के द्वारा ज्ञान प्राप्ति को वह केवल अर्थोपाजन का माध्यम ही स्वीकार करता रहेगा इस प्रकार का ज्ञान अपरिपक्व और अधूरा है। यहाँ सैयद अमीर अली मीर का वक्तव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है उनका विचार है कि "देश में मातृभाषा के बदलने का परिणाम यह होता है कि नागरिक का आत्मगौरव नष्ट हो जाता है, जिससे देश का

जातित्व गुण मिट जाता है।" वर्तमान समय में इस वक्तव्य को अच्छी प्रकार से देखा और समझा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 4.11
2. देशबंधु 1 अप्रैल, 2018
3. स्कूल च्वाइस नेशनल कांफ्रेस 2014
4. देशबंधु 1 अप्रैल, 2018
5. 'हरिजन' पत्रिका 9 जुलाई, 1938 अंक
6. जागरण जोश 6 जुलाई, 2018
7. रा.शि.नी. 2020, 4.14
8. रा.शि.नी. 2020, 22.10

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एन.सी.एफ., 2005 (हिंदी प्रारूप)
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिंदी प्रारूप)
3. जागरण जोश, 6 जुलाई, 2018
4. मंगल उमा, 2007, हिंदी भाषा शिक्षण, आर्य बुक डिपो करोल बाग, नई दिल्ली
5. सिंह कर्ण, 2007, संस्कृत शिक्षण विधि, एच.पी. भार्गव बुक हॉउस, आगरा
6. कुमार ज्ञानेंद्र, 2018, हिंदी भाषा शिक्षण संस्करण, प्रगतिशील प्रकाशन, नई दिल्ली
7. शर्मा भूषण, 2017, शिक्षा समाज और राजनीति, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली

– असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षा संकाय), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

आदिवासी विमर्श में अस्मिता और अपनी भाषा–अस्मिता के बचाव

सुरेंद्र कुमार

भारतीय आदिवासी मुख्य रूप से भारत के वनों में निवास करनेवाले किसान समाज के रूप में स्वीकार किए गए हैं।

भारत की कृषि और वनों के उत्पादों द्वारा वे प्रकृति एवं संततियों को सहयोगिका के रूप में अपने जीवन जीने के तरीके को इन सभी आदिवासी लोगों ने युगों–युगों से संगठन के रूप में संजोकर रखा है।

आदिवासी समाज के लोगों को (जीवन) जीने के लिए उन्हें मुख्य रूप से तीन चीजों की आवश्यकता होती है। जिसमें–जल, जंगल और जमीन प्रमुख रूप से शामिल हैं। काफी समय से जीवन व्यतीत कर रहे आदिवासी लोग अब तक जंगल में निवास करते आ रहे हैं। मगर इनके जीवन काल में रोक लगाने का सर्वप्रथम कार्य ब्रिटिश सरकार ने पहली बार अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रतिबंध की रोक लगा डाली जिसके चलते सभी आदिवासी समाज को अनेक समस्याओं को उठाना पड़ा। यही कारण था कि सभी आदिवासी लोगों ने संघर्ष का विद्रोह छेड़ दिया। दोनों के बीच बड़ा घमासान युद्ध हुआ। सभी आदिवासी समाज के लोग एकजुट होकर अंग्रेजों से लोहा लेने पर उतारू हो गए। आज से 73 वर्ष पहले अंग्रेजों के शासन का अंत भारत से समाप्त हो गया और अंग्रेजों के भारत से जाने के बाद भारत में भारत की सरकार बनी।

आज के आदिवासी लोग जहाँ पर निवास करते हैं। वहीं से हमें पूरे देश के लिए खनिज पदार्थो के भरे भंडार, उनकी धरती में देखने को मिलते हैं और इन खनिजों को बाहर निकालने के लिए वहाँ खदानों को खोदा जाता है। जिसमें हमें बाक्साइड, कोयला, मैगनीज, अभ्रक, यूरेनियम, सोडियम आदि खनिजों की खाद्यानें हमें उनके निवास स्थान पर दूर–दूर तक दिखाई देती हैं।

आदिवासी समाज आदिवासी लोगों की अस्मिता के नाम और परिभाषा दोनों से गहरा संबंध बनाता है। दूसरी तरफ उनकी सामाजिक संरचना पर ध्यान दिया जाए तो उनमें उनकी जीवन यापन की समस्याएँ हमारे सामने उभरकर आती हैं। जिसमें हम उनकी जल, जंगल और जमीन समस्या के दर्शन यहाँ करते हैं। इनके उद्‌गम के माध्यम से ही अब तक इनकी पहचान की जाती रही है।

उनकी जीवन शैली, भाषा, विरासत, शिक्षा आदि ही उनकी पहचान को जिंदा रखने में सहायक रहती है। इनकी अस्मिता की रक्षा स्वयं इनकी रक्षा को किए बगैर नहीं हो सकती।

हम यदि आदिवासी और दलित लोगों की स्थिति की सही जानकारी का पता करें तो उनमें दलित वर्ग के लोगों को उनकी भारतीय संस्कृति से निष्कासित करके उनके गाँव से उन लोगों को दास बनाकर रहने की जबरदस्ती की गई और उनके जीने के लिए जिन साधनों एवं अधिकारों की उनको आवश्यकता थी और जिन सभी पर उनका अभी तक हक था तो उनको उन सभी साधनों एवं अधिकारों से वंचित रखा गया। साथ

ही उनके आत्मसम्मान को भी तोड़ा गया। वहीं दूसरी ओर आदिवासी समाज के सभी लोगों की उनकी सभ्यता छिनकर उन्हें जंगलों में खदेड़ दिया गया और उनके जीने के सभी अधिकार हमेशा–हमेशा के लिए उनसे छीन लिए गए।

आदिवासी लोगों के पास हमेशा से ही जंगल और जमीन दोनों रहे मगर, उन्होंने अपने समाज में रहकर अपनी संस्कृति को अमर बनाए रखा और अब तक हमेशा वह आत्मसम्मान के साथ रहता आया। मगर आज के समय उनको अपनी संस्कृति और सामाजिक संरचना के साथ–साथ अपने स्वायत्तता और अपनी अस्मिता पर खतरा दिखने लगा है।

उन्हें अपने स्वावलंब, स्वभाव और आत्म सम्मान दोनों पर खतरा दिखाई देने लगा और इसी कारण से वह हीनताबोध से ग्रस्त भी हो गया।

यदि आदिवासी लोगों के पास जंगल और जमीन दोनों न हो तो उनके जीवन का जो अस्तित्व है वह भी खतरे में पड़ जाएगा।

हम देखते हैं कि आदिवासी कौन है– यह प्रश्न हमारे सभी के सामने आता है और यहाँ उसके अस्तित्व, अस्मिता और इतिहास का प्रश्न भी सामने आकर खड़ा हो जाता है। यही कारण है कि इसे समझने के लिए हमें इनको जानने की शुरुआत इनके जनजाति शब्द से करनी पड़ेगी। क्योंकि ये जो जनजाति शब्द है वह उसकी अस्मिता को भ्रम में नहीं डालता। वह उसके अस्तित्व (होने) का सवाल जरूर खड़ा कर देता है।

आदिवासी लोगों की अपनी कोई जाति नहीं रहती। अपने देश की भाषा में शिक्षा की बात यदि करें तो भाषा का संबंध भी हमेशा उनकी अस्मिता से जुड़ा रहा है। आदिवासी समाज के सभी लोगों को उन्हें शिक्षा उनकी अपनी आदिवासी भाषा में ही दी जाती है।

उदाहरण– राजस्थान में निवास करनेवाले भील लोग शब्द 'स' को 'च' के रूप में उच्चारण करके बोलते हैं। इसी प्रकार बिहार के हजारी बाग के आदिवासी लोग 'य' शब्द को 'अ' के रूप में वर्णन करते हैं। स्कूल में भील का लड़का 'समोसा' को 'चमोचा' तो हजारी बाग (जो बिहार के रांची में स्थित है) के लोग 'याद' को 'आद' शब्द के रूप में प्रयोग करते है। आदिवासी समाज में शिक्षा का पाठ्यक्रम उनमें हीनता की उत्पति भर देता है।

आदिवासी जनजातीय समाज के अंदर हम आदिवासी लोगों की भाषाई अस्मिता के आंदोलन को भी देख सकते हैं। इस अस्मिता के माध्यम से वे सभी समाज में जिंदा रहने के लिए अपने अधिकारों की जंग लड़ने में लगे हैं और दूसरी तरफ हमें हिंदी साहित्य और इसके समाज में यह भाषा हमेशा से इनकी यह अस्मिता झगड़े का रूप लेकर रही है।

वृहत हिंदी की बोलियों की बात करें तो इसमें इनकी 37 बोलियाँ विराजमान रही हैं। इन बोलियों के अस्तित्व को सबसे बड़ा खतरा हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक राम विलास शर्मा की हिंदी जातीयता की अवधारणा के माध्यम से हुआ।

असम जैसे प्रदेश के अलावा आदिवासी समाज में प्रयुक्त की जाने वाली भाषाओं में रामा, कार्बी गारो, बोडो आदि भाषाएँ हैं। इन सभी भाषाओं के माध्यम से साहित्य की रचना की जा चुकी और की जा रही है। इस सारे साहित्य को हम अब लघु एवं बड़ी पत्रिकाओं दोनों में देख सकते हैं।

प्रारंभ में उनके पास लिखने के लिए अपनी लिपि नहीं थी और उन लोगों ने असम की लिपि के साथ रोमन की लिपि को देवनागरी लिपि में बदलाव करके साहित्य में लिखा। फिर धीरे–धीरे उन्होंने अपनी भाषा को भी लघु पत्रिकाओं के माध्यम से जिंदा रखा और साथ में उस भाषा को शक्तिशाली भाषा का रूप दिया। इन्होंने न केवल कविताओं, यात्रा संस्मरण, कहानियों, नाटक, लोक गीत एवं जीवनियों आदि विषयों में लिखा, बल्कि संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी आदि भाषा के माध्यम से एक क्लासिकल साहित्य के साथ बोडो साहित्य का भी अनुवाद किया। भाषा के संबंध में हम अनेक विद्वानों का मत देख सकते हैं।

(1) लेपचा भाषा भाषी पी–लामा के शब्दों में– "भारत में 179 प्रमुख भाषाएँ है और विभिन्न

समूहों और उप–समूहों द्वारा 544 बोलियाँ बोली जाती है, जिनमें 18 भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय भाषाओं के रूप में मान्यता है। लेकिन इनमें कोई भी जनजातीय भाषा नहीं है।"[1]

(2) गणेश देवी के अनुसार– "नौ करोड़ आदिवासी छह करोड़ घुमंतु, यानी करीब 14–15 करोड़ आदिवासी लोग आज विकास के नाम पर विस्थापित किए जा रहे हैं। उनमें से एक–दो प्रतिशत 'क्रीमीलेयर' के लोगों ने सब कुछ हाइजैक कर लिया है। सरकार के पास इनकी भाषाओं के संरक्षण हेतु कोई ठोस योजना नहीं है। इसके बावजूद आदिवासी भाषाओं की महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ दस–दस भाषाओं में प्रकाशित हो रही हैं। पूरे उत्तर–पूर्व, दक्षिण–पूर्व मुडा और गोंड साहित्य में एक नया उदगार प्रश्नचिह्न बनकर उभर रहा है।"[2]

हमें यह समझना जरूरी है कि आदिवासी साहित्य, भारतीय साहित्य के सामने बड़ी चुनौती (उभरकर) बनकर आ रहा है यह पूरक नहीं, बल्कि समुच्चय साहित्य है इसका विस्तार कम से कम 90 भाषाओं में है जबकि अंग्रेजी साहित्य एक भाषा साहित्य है और यूरोपियन साहित्य 25 भाषाओं का साहित्य है। हम जिसे 50 साल से भारतीय वांङ्मय कहते हैं उसे पूरे वांङ्मय में 26 भाषाएँ ही हैं वह भी पाली संस्कृत मिलाकर।[3]

भारतीय आदिवासी साहित्य को एक दुनिया के साहित्यिक विलक्षण के रूप में स्वीकार किया गया है। आदिवासी साहित्य जो है वह दुनिया के इतिहास से बिल्कुल अलग माना गया है।

आज के समय सारा साहित्य अपरिगणित भाषा के रूप में लिखा जा रहा है। आज के समय बंजारा और लंबाडी आदि ऐसी घुमंतु जाति एक जनजाति मात्र शेष रह चुकी है जिसकी भाषा अभी तक जिंदा है। उन लोगों की एक भाषा गारबोली भाषा है। जिसका प्रयोग इस जाति के लोग अपने जीवन में बोलने के रूप में करते हैं।

अपने देश की भाषा के कारण अपनी जन चेतना के विकास की खातिर जनजातीय एवं समाप्त होती भाषा सरकारी उपेक्षा के माध्यम से भाषा के आंदोलन का प्रारंभ एक लघु–पत्रिका एवं अखबार के द्वारा रुकावट बन जाता है।

आज भाषा चाहे किसी भी प्रकार की क्यों न हो, चाहे विदेशी हो, चाहे देशी या आंतरिक उपनिवेशवाद या विदेशी उपनिवेशवाद ही क्यों न हो यह इन सभी को रोकने की हिम्मत रखता है और इसी के कारण हम जड़ों तक पहुँचने में सफल होते हैं। अपने समाज या देश में छपने वाले छोटे–लघु पत्रिकाओं या अखबारों को बचाए रखने के लिए इनका काफी योगदान रहा है। चाहे व्यक्ति बाहर चले जाएँ अपनी भाषा के माध्यम से लघु पत्रिकाएँ हो या अखबार इन सभी व्यक्तियों को अपने लेख प्रकाशित करने के माध्यम से उनमें जान डालने का काम करते हैं।

यही कारण था कि विदेशों में भी इन लघु पत्रिकाओं के कारण उन्हें हमेशा अपनी बोली और भाषा के कारण जीवित रहने की शिक्षा मिलती रही है।

ऐसी पत्रिकाओं में मुंबई, मद्रास, कलकत्ता, असम आदि शहरों में बसे लोग अपनी–अपनी भाषा में पत्रिका को समय–समय पर प्रकाशित करते रहे हैं।

"लघु पत्रिकाओं और अखबारों तथा लघु–पुस्तिकाओं के माध्यम से उनकी अपनी भाषा का साहित्य एवं उन भाषा के अनूदित साहित्य को प्रोत्साहित कर अपरिगणित भाषाओं, अनुसूचित या गैर अनुसूचित जन भाषाओं से आपसी संबंध जोड़कर उन्हें एक सूत्र में बाँधना है।[4]"

भाषा का समायोजन किसी महत्वपूर्ण भाषा में न केवल उसके अस्तित्व का समाप्त होना माना गया है। बल्कि उसे समृद्ध करना या होना, भाषा का लोकतंत्र उत्पन्न हो सकता है।

भाषा के अस्तित्व का संघर्ष– भाषा की चेतना के उत्पन्न होने पर ही भाषा के अस्तित्व की लड़ाई के दर्शन देखे जा सकते हैं। ऐसा होने पर ही पिछड़ी भाषा बच सकी।

जैसा मूलधारा समाज होता है वैसा आदिवासी समाज अवसरवादी के समान नहीं होता।

ये मध्यवर्गीय मानसिकता या जातीयता से फ्री माना गया है और यह सहयोग की भावना या समानता से लैस भी माना गया है चाहे ये राजनीतिक या आर्थिक दोनों प्रकार से मजबूत न हो।

यही कारण है कि दलित समाज में भी आत्मसम्मान की चेतना के जागृत होने के साथ–साथ एवं अस्मिता के उत्पन्न होने से ही उन सभी में बदले की भावना ने जन्म लिया। यही कारण रहा कि भाषा के स्तर में इनकी पहचान नहीं बन सकी। क्योंकि उनका सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा भाषाई अस्मिता की उपेक्षा मुक्ति का मुद्दा रहा। ये ही इन्हें आत्मसम्मान के साथ अस्मिता दिलाने में मददगार हो सकते थे। वे भाषा पर न होकर साहित्य की शैली में कला वस्तु से प्रामाणिकता का विषय लड़ाई पर था।

आदिवासी समाज के लिए कदम उठाना– हिंदी पट्टी के जो लोग हैं उन सभी की अपनी रोजी–रोटी के साधन और जीवन के स्तर में सुधार लाने के लिए अंग्रेजी भाषा और हिंदी भाषा का होना जरूरी है। सबसे नीचे वाले स्थान पर आदिवासी लोगों का सीमित आरक्षण के अलावा कोई रास्ता नहीं है और ये सभी अवसर उनकी स्वयं की भाषा में जरूरी भी है।

साम्राज्यवादी सोच को वर्चस्ववादी के रूप में स्वीकार किया गया है। यह सभी भाषा को न केवल चट कर जाती है वरन् यह एक दूसरे को आपसी दुश्मन बनाने में भी सहयोग प्रदान करती है। न केवल भाषाई साम्राज्यवाद को अकेला लघु–पत्रिका आंदोलन को रोकने में सहायक होता है, बल्कि भाषाओं को मरने से बचाने में भी यह मददगार साबित होता है।

बात सही है कि सरकारी जो संरक्षण है इन सभी भाषाओं में जान डाल सकता है और तो और यदि कुछ पत्रिकाएँ एक अपरिगणित भाषा के लिए कम से कम एक अनुवाद के लिए स्थान दे सके। तो इन्हें मृत्यु के मुँह से बचाया जा सकता है और तभी भाषाई बहनापा स्थापित किया जा सकता है।

आदिवासी समाज के लोग धरती की पूजा करते हैं और आज हम आदिवासी लोगों की पहचान को मिटते हुए संदेश के रूप में देख सकते हैं।

आज के समय में आदिवासी समाज इसलिए आंदोलन करने पर उतारू हैं कि उसकी व्यवस्था एक संवेदनशीलता से उसकी अस्मिता के साथ उसका अस्तित्व भी खतरे का रूप धारण कर चुका है।

क्योंकि आदिवासी समाज का पूरा जीवन जल, जंगल और जमीन से जुड़ा हुआ माना गया है। आदिवासी लोगों में जो उद्गम पाया जाता है वह उनकी पहचान को स्थापित करने में सहायक होता है। उसकी अस्मिता को जिलाए रखने में उनकी भाषा, जीवन शैली, सांस्कृतिक पंरपरा एवं शिक्षा का मुख्य योगदान माना गया है।

इनको सुरक्षित न रखने पर आदिवासी लोगों की अस्मिता भी असुरक्षित रूप धारण कर लेती है। इन लोगों के पास हमेशा से जंगल और जमीन दोनों ही रहे हैं जिनके वे हमेशा मालिक बनकर रहे हैं।

इन सभी ने अपनी सांस्कृतिक परंपरा बचाने के लिए अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए एक अच्छा जीवन बिताया है।

मगर आज देखें तो इन सभी लोगों की सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा पर संकट के बादल छा गए हैं और इस प्रकार इन सभी के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा है।

आदिवासी राष्ट्र की अवधारणा को परिभाषित करने में संयुक्त संघ ने एक घोषणा पत्र निकाला।

"आदिवासी राष्ट्र से तात्पर्य उन लोगों के वंशज से है जो किसी देश की वर्तमान भूमि के पूरे या कुछ विश्व के अन्य भागों की किसी भिन्न संस्कृति अथवा नस्ल के लोगों द्वारा पराजित कर दिए जाने या उसके साथ किसी समझौते के तहत अथवा किसी अन्य तरह से वर्चस्वहीन अथवा औपनिवेशिक स्थिति में ढकेल दिए जाने से पहले से ही वहाँ रह रहे थे।"[5]

आदिवासी लोगों के जो पूर्वज होते हैं वे उनके पूज्य होते हैं। जिन्हें वे बोंगा के नाम से भी

पुकारते हैं और इस बोंगा के लिए न कोई मंदिर, न कोई मस्जिद होती है। ये बोंगा सिर्फ चट्टानों या वृक्षों पर ही अपना स्थान बनाता है।

आदिवासी लोगों के जो सात सरतुआ के वृक्ष माने गए हैं वे सरना नाम से जाने जाते है और पूर्वजों की याद में अलग–अलग जो पत्थर हैं वे भी जाहेरधान या सारन के नाम से जाना जाता है।

आदिवासी लोगों का जो धर्म होता है वह एक अंधी आस्था के समान नहीं होता, क्योंकि उन सभी की अपनी एक जीवन शैली होती है।

सांस्कृतिक परंपरा के द्वारा समानता और स्वतंत्रता के कारण ही इनकी अपनी जीवन शैली की अपनी अलग पहचान है जो इन्हें विरासत के रूप में मिली हुई है।

आदिवासी समाज की अपनी भाषाएँ– इनके कबीलों में पाई जाने वाली भाषाएँ एवं बोलियाँ अलग–अलग प्रकार की होती हैं और सभी की अपनी–अपनी अलग–अलग प्रकार की संस्कृतियाँ भी होती हैं। इनके उद्गम का मुख्य स्थान द्रविडियन या कहे आस्ट्रियन माना गया है।

(1) बोडो कबीले का चित्रण– इन कबीलों के सभी आदिवासी लोगों का उद्गम स्थान मंगोलिया देश माना गया है।

(2) मिजो कबीलों का चित्रण– इस कबीले के सभी लोगों का प्रमुख स्थान इजरायल रहा। इसी प्रकार सारे आदिवासी लोगों का जन्म मंगोलियाई के मूल इंडो तिब्बतियन के क्षेत्र एवं इंडो बर्मन आदि प्रदेश माने गए हैं।

(3) संथाल परगना– इस क्षेत्र के सभी आदिवासी लोग लंबे समय के अंतराल में कबीले के चार भागों में बँट गए। जिसमें हो, मुंडा, खडिया, संथाल आदि इनके नाम थे। इस जाति के कबीले के लोग अपना उद्गम सिर्फ मोहन जोदड़ो के रूप में मानते थे।

(4) संथाल परगना के उरांव– इस जाति के आदिवासी लोग द्रविड़ रूप में महत्वपूर्ण माने जाते थे।

आदिवासी लोगों की प्राचीन भाषा एवं शब्द– समकालीन आदिवासी लोग जो शोधकर्ता माने गए हैं उन्होंने मुंडारी और संताली भाषा के कुछ पुराने शब्दों को ढूँढ निकालने में सफलता हासिल की है।

इस प्रकार कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि आदिवासी लोगों की जो भाषा रही है वह संस्कृत भाषा से पहले की भाषा मानी गई है।

आदिवासी लोगों की अस्मिता और पहचान– इनके समाज में इनकी अस्मिता और पहचान को जानने के लिए इनके 'जल, जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधनों पर इनका अधिकार कायम रहना आवश्यक है।[6]

इसके अलावा हम आदिवासी लोगों की भाषा एवं जीवन शैली और उसका रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, उत्सव, पर्व इनकी संस्कृति, न्यायप्रणाली आदि भी इनकी अपनी पहचान बताती है।

आदिवासी लोगों के रहन–सहन– आदिवासी लोग हमेशा वनवासी बनकर रहे हैं। आदिवासी लोगों में गैर आदिवासी लोग भारतीय समाज का दुश्मन नहीं था। ये लोग स्वतंत्र रूप से उन्मुक्त बनकर रहने वाले व्यक्ति माने गए हैं।

बात यदि सभी युग की करें तो द्वापर, त्रेता और कलयुग में आदिवासी समाज में हों, राजाओं और गैर आदिवासी लोगों से मैत्रीपूर्ण घनिष्ठ संबंध बनकर रहा और धीरे–धीरे विदेशी लोग आक्रमण करके इनके इलाकों को हड़पने लगे और ये सभी लोग विद्रोही बनते चले गए।

भारत में यह स्थिति बनने की बजाय बिगड़ती चली गई। यह लूटने खसोटने की प्रक्रिया अंग्रेजों द्वारा शुरू हुई और फिर इनके साथ गैर आदिवासी लोगों ने समाज के सभी जमीदारों, साहूकारों, सेठ, ठेकेदार, बनियों आदि ने बहती गंगा में फायदा उठाने का काम किया। इनका (गरीबों का) सारा खून चूस डाला और इनकी अपनी जमीनों से अलग बेघर करके उनको वहाँ मजदूर बना डाला।

आदिवासी लोगों के पास यदि जल, जंगल, जमीन नहीं हो तो इनकी अपनी पहचान भी नहीं होगी।

अंग्रेजों ने अपने राजस्व की नीति को शुरू करके कृषि भूमि में स्थायी बंदोबस्त की प्रक्रिया चालू कर दी और फिर आगे गैर आदिवासी लोगों ने आदिवासी समाज की जमीन हथिया ली और स्वयं मालिक बन गए और वे आदिवासी अपनी जमीन के स्वयं मजदूर बन गए हैं और काफी आदिवासी लोगों को बंधुआ मजदूर बनना पड़ा।

उनके जंगलों के मालिक भी ठेकेदार हैं और आदिवासी लोगों के अपने जंगल में घुसते ही ठेकेदार लोग लकड़ी चोर की मोहर उन पर लगा देते थे।

आदिवासी लोग जंगलों का सहारा जलावन, लाठा एवं छावन आदि के कारण मदद लेते आए हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिवासी लोग आगे चलकर एक सस्ते मजदूर की जमात बनकर रह गए। बाहरी लोगों ने इन सभी का काफी फायदा उठाया पूँजीपति लोगों के खातिर वनों का नाश करते देख आदिवासी लोग काफी दुखी हुए मगर वह उनके आगे कुछ कर न सके।

ऐसे विनाश हो जाने के बाद ही आदिवासी समाज के सभी लोग विस्थापित रूप में परिवर्तित हो गए ओर विस्थापन की प्रक्रिया के कारण उन्हें अपना सब कुछ त्यागकर यहाँ से जाना पड़ा और फिर उन सभी ने अपनी भाषा और सांस्कृतिक परंपरा को भी खो डाला।

अल्पसंख्यक– वे लोग कहलाते हैं जो आदिवासी लोग अपने स्थान पर जबरदस्ती रुके रहे और फिर देशी–विदेशी जो बहिरागत थे उनके आ जाने से वे अल्पसंख्यक बन गए और फिर इनका प्रभाव इनकी भाषा और संस्कृति पर भी पड़ा।

इन सभी लोगों के पास जो जमीन थी जिनके वे मालिक थे और वे किसान बनकर खेती करते थे। आज उन सभी को उस जमीन से बहिष्कृत होकर स्वयं मजदूर के रूप में कार्य करने पर वे सभी मजबूर हैं।

ऐसा ज्यादा वर्णन हम झारखंड के क्षेत्र के आदिवासी लोगों और उनके क्षेत्र में देख सकते हैं।

जंगल का राजा आदिवासी लोग स्वयं अपनी जमीन पर खाद्यानों के होने के बावजूद वे कोयला चुराकर और उसे बेचने पर भी उसे दो समय का खाना तक नहीं मिल पाता और ऐसे में वे चोर कहलाते हैं। मगर वे मेहनत भी काफी मात्रा में करते हैं।

सरकारी विकास कार्य का योगदान– सरकारी विकास कार्य पूर्ण रूप से चल रहा है। इसकी संभावना पूरी दिखाई देती है। इनके लिए कहीं सड़क तो कही बाँध का का कार्य होने लगा है। जिसके कारण आदिवासी लोग विस्थापित भी होंगे।

इन आदिवासी लोगों की एक महत्वपूर्ण समस्या यह भी रही है कि ये लोग परेशानी में एक जंगल का त्यागकर, दूसरे तो फिर तीसरे जंगल में पलायन करने लगते हैं। मगर ऐसी समस्या काफी डरावनी एवं भयानक रूप धारण कर चुकी है। एक तरफ जंगल कट रहे या कट गए दूसरी तरफ इनका जंगलों में प्रवेश वर्जित कर दिया गया है।

इनके जीवन का एक प्रश्न इनकी भाषा का भी माना जाता है। इन सभी की शिक्षा स्वयं इनकी अपनी भाषा में न होकर दूसरी भाषा में शिक्षा दी जाती है। यही कारण है कि उनकी भाषा के वैषम्य एवं उच्चारण दोनों में अंतर का पाया जाना निश्चित है। यही कारण है कि आदिवासी समाज के जो दोस्त होते हैं वे उन्हें चिढ़ा–चिढ़ा कर परेशान तक भी करते हैं।

आज के समय जो अधिकतर अपरिगणित भाषा है उनकी संख्या पंद्रह मानी गई है और इस भाषा का संकट उन सभी पर मंडराता हमें दिखाई देता है।

वैश्वीकरण– इनमें एक बड़े कारण वैश्वीकरण को भी माना गया है। इसके बाद धार्मिक कारण और फिर इनकी भाषाओं में हमें उनके अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा होता दिखाई देता है।

हमें भारत के अंदर पाँच सौ से अधिक आदिवासी कबीले देखने को मिलते हैं। भारत का जो पूर्वोत्तर का क्षेत्र माना गया है। वह आदिवासी लोगों का गढ़ माना गया है। मगर दूसरे क्षेत्रों में भी इनके कबीलों की संख्या 75 प्रतिशत पाई जाती है। मगर इनमें से अधिकतर आदिवासी लोग अपनी भाषा को खो चुके एवं कुछ लोग बहुसंख्यक के रूप में मिल गए हैं। आज भारत की वर्तमान शिक्षा नीति की बात करें तो वह प्रौद्योगिकी रूप में मिलती है। इस शिक्षा के अंदर हमें तकनीकी शिक्षण शिक्षा की उपलब्धि भी देखने को मिलती है।

निष्कर्ष– हम सभी लोगों को आदिवासी लोगों के विकास के लिए उन्हें अपना बनाने की जरूरत है और हम सभी लोगों को अनके साथ भाईचारे की भावना स्थापित करने की जरूरत है। यदि कोई सरकार आदिवासी लोगों के लिए कोई विकास योजना बनाए तो उससे पहले आदिवासी लोगों से सलाह ले इससे इन आदिवासी लोगों को यह महसूस होगा कि ये जो सरकार है उनकी अपनी सरकार है और उनके नियम के अनुसार सरकार चले तो आदिवासी लोग अपने क्षेत्र से कभी पलायन करने की नहीं सोचेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आदिवासी अस्मिता का संकट, लेखक रमणिका गुप्ता, वर्ष 2013, प्रकाशकः सामाजिक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 66 अध्याय : भाषाई अस्मिता का आंदोलन।

2. आदिवासी अस्मिता का संकट, लेखक : रमणिका गुप्ता, वर्ष 2013, प्रकाशक : सामाजिक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 66, अध्याय : भाषाई अस्मिता का आंदोलन।

3. वही, पृष्ठ 66

4. आदिवासी अस्मिता का संकट, लेखक : रमणिका गुप्ता, वर्ष 2013, प्रकाशक : सामाजिक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 71, अध्याय : भाषाई अस्मिता का आंदोलन।

5. आदिवासी संस्कृति और साहित्य, लेखक : सत्येंद्र सिंह प्रकाशक : गोरव बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष : 2018, पृष्ठ 19, अध्याय– आदिवासी अस्मिता का संकट।

6. आदिवासी संस्कृति और साहित्य, लेखक : सत्येंद्र सिंह प्रकाशक : गौरव बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष : 2018, पृष्ठ 22 अध्याय– आदिवासी का संकट।

– शोधार्थी, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

❑❑❑

अबकी अगर लौटा तो मनुष्यतर लौटूँगा

कुमार सौरभ एवं डॉ. अनुशब्द

कुँवर नारायण की समूची काव्य–यात्रा के केंद्रीय कथ्य के रूप में मानवीय सरोकार को रूपायित किया जा सकता है। वे साहित्य चिंता के मूल में उन जीवनमूल्यों को महत्व देते हैं "जो मनुष्य के हित में हों जो उसकी रक्षा कर सकें उसकी अपनी ज्यादतियों से, और दूसरों की ज्यादतियों से भी।"[1] 'मनुष्यता', 'आदमी' जैसे शब्द अगर कुँवर नारायण की कविता में हमें बार–बार दिखते हैं तो उसके भी अपने मायने हैं। 'मानव' और 'मानव–जीवन' उनकी कविता के केंद्र में है। इसी 'जीवन' में वे मानवीय भविष्य की संभावनाएँ भी तलाशते हैं और इसी जीवन को सार्थक बनाने का यत्न उनकी कविता में आदि से अंत तक मिलता है। कविता की भाषा में जिंदगी पर सार्थक चिंतन करने वाले गिने–चुने कवियों में कुँवर नारायण का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है। वे कविता को जीवन से बेहद प्यार की भाषा मानते हैं और इस बात पर जोर देते हुए कहते हैं कि "इस बेहदी का और इस प्यार का आदर करता हूँ। जहाँ इनमें कमी देखता हूँ, कविता इनके अभाव से उत्पन्न उदासी की भाषा बन जाती है।"[2]

कुँवर नारायण जब पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर भी काव्य–सृजन कर रहे होते हैं तब भी उनकी चिंता के केंद्र में आज का मनुष्य होता है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण 'आत्मजयी' का नचिकेता है जो पौराणिक पात्र होते हुए भी आज के मनुष्य की जटिल मनः स्थितियों को अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम है। आत्मजयी की भूमिका में कुँवर नारायण ने स्पष्ट रूप से कहा भी है कि "मैंने आत्मजयी के धार्मिक या दार्शनिक पक्ष की विशेष चिंता न करके उन मानवीय अनुभवों पर अधिक दबाव डाला है जिनसे आज का मनुष्य भी गुजर रहा है, और जिनका नचिकेता मुझे एक महत्वपूर्ण प्रतीक लगा।"[3]

जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि वह कौन–सी विशिष्टता है जिसकी वजह से नचिकेता हमें अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु नज़र आता है और अपनी नास्तिकता में भी अधिक धार्मिक? तब हम धर्म के उस मर्म को समझने की दिशा में बढ़ रहे होते हैं जहाँ मानवीयता से उसके गहरे सरोकारों का पता चलता है, जहाँ आडंबर से धर्म के विभेद का पता चलता है, जहाँ मनुष्य के विवेक की शक्ति का पता चलता है। ध्यातव्य है कि *मनुष्य स्वर्ग के लालच में/अक्सर उस विवेक तक की बलि दे देता है जिस पर निर्भर करता जीवन का वरदान लगना।*[4] नचिकेता की जिज्ञासा उसी विवेक की बलि से इनकार है, और यह विवेक ही नचिकेता को साहस प्रदान करता है कि वह अपने पिता की चेतना में स्थापित रूढ़ मान्यताओं को चुनौती दे सके। अपने हित से आगे न सोच सकने वाले पिता को अगर नचिकेता भविष्य का

अधिकारी मानने से इनकार करता है तो उसके इस इनकार के मूल में मानवीय भविष्य की चिंता निहित है। मानवीय भविष्य की गरिमा और मानव जीवन की सार्थकता के लिए नचिकेता प्रतिबद्ध है। इस प्रतिबद्धता ने ही उसे असहमति का साहस दिया है– *असहमति का अवसर दो। सहिष्णुता को आचरण दो/कि बुद्धि सिर ऊँचा रख सके.. उसे हताश मत करो काइयाँ स्वार्थों से/हरा–हरा कर।*[5]

नचिकेता को इस बात का भान है, "कि एक–एक शील पाने के लिए कितनी महान आत्माओं ने कितना कष्ट सहा है..."[6] इसलिए नचिकेता स्थितियों को यथावत स्वीकार करने के बजाय सवाल करता है। साहित्य या कलाओं की उपादेयता ही इसमें है कि वह सत्ता के डर और व्यावसायिकता के प्रलोभन के बीच हमें अपने जीवन–सत्य को खोजने का नैतिक साहस दे सके। नचिकेता उस जीवन–बोध का प्रतीक है जिसका संबंध अतीत से न होकर वर्तमान से है, जो रीति की अपेक्षा तर्क को महत्व देता है। तर्कशील नचिकेता वर्तमान को केवल संज्ञा मानने से संतुष्ट नहीं है, वह व्यक्तिगत स्वार्थ से परे जाकर वर्तमान को महत्व देने का हिमायती है– *पिता, तुम भविष्य के अधिकारी नहीं/क्योंकि तुम अपने हित के आगे नहीं सोच पा रहे/न अपने हित को ही अपने सुख के आगे/तुम वर्तमान को संज्ञा तो देते हो, पर महत्व नहीं।*[7]

रीति की तुलना में तर्क का महत्व देने वाला नचिकेता एक ओर जहाँ वर्तमान को महत्व देने का पक्षधर है वहीं दूसरी ओर उस हिंसात्मक मनोवृत्ति के लिए चुनौती है जो हमारे आज को विकृत कर रहा है– *नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वसन/जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है।/ नहीं चाहिए वह विश्वास, जिसकी चरम परिणति हत्या हो।*[8] कुल मिलाकर 'आत्मजयी' एक विचारशील व्यक्ति की जिज्ञासा का पुंज है, जिसके लिए सार्थक जीवन, सुखी जीवन से कहीं ज्यादा मायने रखता है। आत्मजयी को जितनी बार भी पढ़ा जाए उसमें एक नया अर्थ मिलता है और प्रत्येक अर्थ मानवीय जीवन की सृजनात्मक संभावनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। 'आत्मजयी' के विषय में प्रसिद्ध आलोचक वेद प्रकाश का मत दृष्टव्य है, "मनुष्यता इसके केंद्र में है। बल्कि इससे भी आगे कहा जाए, तो 'मनुष्यता का लक्ष्य' या 'मनुजता की सार्थकता' इसका प्रतिपाद्य है।"[9] जिस मनुष्यता और मानवीय सरोकार की मैं बात कर रहा हूँ, उसे कुँवर नारायण की कविता में आदि से अंत तक बगैर किसी वक्रता या विचलन के देखा जा सकता है। आत्मजयी के अलावा इस आलेख में उनके जिस काव्य संग्रह को आधार बनाया गया है वह है 'कोई दूसरा नहीं' की पहली कविता ही हमें कवि के उद्देश्यों का पता दे देती है। इस संग्रह की पहली कविता 'उत्केंद्रित?' की पहली ही पंक्ति है– *मैं ज़िंदगी से भागना नहीं/उससे जुड़ना चाहता हूँ। और इस जुड़ने का ढंग भी कितना सुखद है– यांत्रिकता की अपेक्षा/मनुष्यता की ओर ज़्यादा सरका हुआ...* वर्तमान में मानव जीवन जिन विसंगतियों से जूझ रहा है उसमें जीवन का यांत्रिकता की ओर झुका होना भी एक है। इस यांत्रिक जीवन–शैली ने मनुष्य को वस्तु में तब्दील कर दिया है, संवेदनाओं का स्थान उपयोगिता ने ले लिया है। ध्यातव्य है कि भाषाई संस्कृति के लिए भी यह यांत्रिकता एक चोट है। भाषाओं का संसार कभी क्षणिक मनोरंजन की दुनिया मात्र बनकर नहीं रह सकता, इस सत्य से कुँवर नारायण परिचित थे इसलिए उन्होंने भाषा के महत्व को केंद्र में रखकर कई कविताओं की रचना की। उन्होंने साहित्य और कलाओं का एक प्रधान उद्देश्य मनुष्य को उसके आत्म की खोज के लिए निरंतर प्रेरित करना माना है। वर्तमान समय में नैतिकता, मूल्य आदि को ताक पर रख मानवीय व्यक्तित्व को गढ़ने की जो एक प्रक्रिया चल पड़ी है उसी से मुठभेर का नाम है 'कोई दूसरा नहीं।' कवि को मानवीय सत्ता और मानव के अस्तित्व की सार्थकता पर दृढ़ विश्वास है। इसलिए वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं– *व्यक्ति को/विकार की ही तरह पढ़ना/जीवन का अशुद्ध*

पाठ है।/वह एक नाजुक स्पंद है/समाज की नसों में बंद/जिसे हम किसी अच्छे विचार/या पवित्र इच्छा की घड़ी में भी/पढ़ सकते हैं।[10]

कुँवर नारायण को व्यक्ति के अंदर की उस मानवीय–सत्ता में दृढ़ आस्था है जिसपर अगर हम विश्वास भरा हाथ रखें तो वह आत्म–परिष्कार की क्षमता रखता है। साहित्य की कविता जैसी विधा उसी विश्वास–भरे हाथ की तरह है जो किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं लिखी जाती है, परंतु जब हम अपने जीवन प्रसंगों से तादात्म्य स्थापित करते हुए उसकी यात्रा करते हैं तो उस कृति की यात्रा के क्रम में अपने जीवन–सत्य की तलाश भी कर रहे होते हैं। ऐसे में वह कृति अपने समय और काल के दायरे को तोड़कर हर युग में प्रासंगिक हो जाती है। कोई कृति प्रासंगिक कैसे होती है? जब हम इस बात पर गहन विचार करते हैं तो पाते हैं कि कृति की प्रासंगिकता की एक महत्वपूर्ण कसौटी यह भी है कि पाठक उसमें स्वयं को किस हद तक ढूँढ सकता है? दरअसल जिसे हम कृति अस्तित्व की सार्थकता पर दृढ़ विश्वास है। इसलिए वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं "व्यक्ति को/विकार की ही तरह की प्रासंगिकता कहते हैं वह कई मायनों में हमारी स्वयं की भी प्रासंगिकता की माप है, और हमारी यह प्रासंगिकता इस बात से तय होती कि हम सत्ता और व्यावसायिकता के लगातार प्रहार के बावजूद स्वयं में उस सचेत और कोमल तंतु को किस हद कर सुरक्षित रख पाए हैं। आत्म–परिष्कार के लिए इस तंतु का और उस नैतिक साहस एवं मर्यादा–बोध का होना पहली शर्त है जिसका अभाव वर्तमान मनुष्य में है।

आज जब भ्रष्टचार, हिंसा, और बाजारवाद की आँधी मानवीय अस्तित्व को लील लेने को आतुर है ऐसे समय में कवि का मनुष्य की सत्ता के प्रति इस कदर आस्थावान होना हमें अचंभित करता है। आखिर मानव के अस्तित्व का वह कौन सा पहलू है जो मुश्किल से मुश्किल दौड़ में भी मनुष्य के मूल चरित्र के प्रति कवि को आश्वस्त करता है? और इसी आश्वस्ति के सहारे कुँवर जी एक नई दुनिया को रचते नज़र आते हैं। इस रचने और गढ़ने की प्रक्रिया में कविता उनकी साथी बनती है। वह कविता जिसके विषय में कवि लिखते हैं, *कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता/भाषा में उसका बयान/जिसका पूरा मतलब है सच्चाई/जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इनसान*[11] इस कविता को इश्तहारों की तरह चिपकने, जुलूसों की तरह निकलने, नारों की तरह लगने और चुनावों की तरह जीतने ही हड़बड़ी नहीं है उसकी ख्वाहिश है कि *आदमी की भाषा में/कहीं किसी तरह ज़िंदा रहे बस* यह भी अजीब विडंबना है कि वर्तमान समय में 'आदमी' और 'भाषा' में दोनों का ही अस्तित्व संकट में है। आदमी से मेरा आशय 'आदमियत' से है, 'साहित्य' और 'कविता' की लड़ाई इसी खत्म होते आदमियत को बचा लेने की लड़ाई है। यह लड़ाई आसान नहीं है क्योंकि हम जिस वक्त में जी रहे हैं वहाँ एक स्थूल व्यावसायिक–दृष्टि (जिसका संचालक बाज़ार है) हमारी जीवन दृष्टि का निर्माण कर रही है। इस बाजार ने अपने फायदे के लिए भाषा, कविता, आदमियत तीनों की उपेक्षा की है। आज आदमी–आदमी के बीच जो दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं, कुँवर नारायण उसका संबंध भाषा की उपेक्षा से जोड़ते हैं। कवि के शब्दों में, *एक भाषा जब सूखती/शब्द खोने लगते अपना कवित्व/भावों की ताज़गी/विचारों की सत्यता– बढ़ने लगते लोगों के बीच/अपरिचय के उजाड़ और खाइयाँ...*[12] मानव के विकास की गति तीव्र से तीव्रतम होती जा रही है परंतु इस विकास की दिशा सही है या नहीं इसपर भी हमें विचार करना चाहिए। हमने स्वघोषित विकास के चक्कर में भाषा को क्षति पहुँचाई, पर्यावरण को क्षति पहुँचाई।

कोई दूसरा नहीं की कविताएँ बेहतर इनसान को तलाशती नज़र आती हैं, मानवीय चरित्र के पतन के इस काल में यह तलाश कितना दुरूह कार्य है, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। यह हमारे समय की त्रासदी ही कही जाएगी। कि कुँवर नारायण बेहतर इनसान बनने के लिए जिस नैतिक साहस को आवश्यक मानते हैं, उसका

संवाहक सम्मेदीन भ्रष्टाचार के विरुद्ध युद्ध में बिल्कुल अकेला है, और जल्द मारे जाने के लिए अभिशप्त है। लेकिन सम्मेदीन का नैतिक साहस मौत के बाद भी ज़िंदा रहेगा अँधेरे से युद्ध के लिए– *दुनिया को ख़बर रहे/कि एक बहुत बड़े नैतिक साहस का/नाम है सम्मेदीन/जल्दी ही वह मारा जाएगा।/सिर्फ़ उसका उजाला लड़ेगा/अँधेरों के ख़िलाफ़...* इस नैतिक साहस के बिना अँधरे के ख़िलाफ लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है इस सत्य को कवि जानते हैं। इसलिए उनकी कविताएँ इस नैतिकता के आग्रह का साहित्यिक अनुष्ठान प्रतीत होती है। यह लड़ाई कवि की व्यक्तिगत लड़ाई मात्र नहीं है अपितु हर उस चरित्र की लड़ाई है जो अपने जीवन को एक वृहत्तर उद्देश्य के लिए समर्पित करने का साहस रखता है। अब प्रश्न उठता है कि इस लड़ाई में बाधा कौन है, इस प्रश्न का उत्तर कोई एक नहीं हो सकता। सत्ता का दमनकारी स्वरूप, बाजार का मूल्यहीन चरित्र, हिंसात्मक हथियार में तब्दील होता मनुष्य, व्यक्ति की भौतिक उन्नति से उसकी प्रगति का आकलन करता समाज और इन सबसे अधिक अपनी दुर्गति के लिए मनुष्य दोषी है जो बाजार के प्रलोभन के समक्ष अपनी बौद्धिक और भावनात्मक चेतना को ताक पर रखने में संकोच नहीं करते। कुँवर नारायण इस बात से चिंतित नजर आते हैं कि *आज जब कि हर चीज़ का दाम सिर्फ़ बढ़ने की ओर है/आदमी की कीमत में भारी छूट का शोर है।* आदमी के सामर्थ्य और मूल्य का कवि को सही पहचान है। एक व्यक्ति संसार को बेहतर बनाने में क्या भूमिका अदा कर सकता है कवि इस बात से अवगत हैं। कुँवर नारायण की इस सत्य में दृढ़ आस्था है कि *अपने को बड़ा रखने की/छोटी–से–छोटी कोशिश भी/दुनिया को बड़ा रखने की कोशिश है।*[13] मानव, मानव–जीवन और मानवीय संसार को बेहतर बनाने की कोशिश ही कुँवर नारायण की संपूर्ण काव्य–यात्रा का ध्येय है। इस बेहतरी के लिए मानवीय गरिमा को फिर से स्थापित करना जरूरी है, और इस स्थापना के लिए मनुष्य का पुनः मानवता की ओर लौटना जरूरी है, शायद इसलिए कवि अपनी कविताओं के माध्यम से जो वृहत्तर होने की बात कहते हैं वह कई अर्थों में मनुष्यतर होना है– *अबकी अगर लौटा तो/बृहत्तर लौटूँगा/चेहरे पर लगाए नोकदार मूँछें नहीं/कमर में बाँधे लोहे की पूँछें नहीं/जगह दूँगा साथ चल रहे लोगों को तरेर कर न देखूँगा उन्हें/भूखी शेर–आँखों से...अबकी अगर लौटा तो/हताहत नहीं/सबके हिताहित को सोचता/पूर्णतर लौटूँगा।*[14]

कविता और साहित्य का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाना है और कुँवर नारायण की कविताएँ मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की विनम्र कोशिश है। 'आत्मजयी' और 'कोई दूसरा नहीं' के माध्यम से कुँवर नारायण उस खोई हुई मानवीय सत्ता को तलाशते नज़र आते हैं जिसका आधार नैतिक साहस युक्त जीवन है और जिसका उद्गम क्षेत्र करुणा–स्पंदित हृदय है। यह करुणा–स्पंदित हृदय वैचारिकता की विरोधी न होकर उसकी परस्पर–सहगामिनी है। कुँवर नारायण जब हमारे जीवन को 'यांत्रिकता की अपेक्षा मनुष्यता की ओर थोड़ा सरका हुआ" देखना चाहते हैं तो उस समय वैचारिकता से उनका आशय वैचारिकता और सहृदयता के संगम से है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नारायण, कुँवर (2015), आज और आज से पहले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृष्ठ–11

2. संपादकः भारद्वाज, विनोद (2010), तट पर हूँ तटस्थ नहीं, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पहला संस्करण, पृष्ठ–55

3. नारायण, कुँवर (1989), आत्मजयी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण, पृष्ठ–11

4. वही, पृष्ठ–27

5. वही, पृष्ठ–53

6. वही, पृष्ठ–25

7. वही, पृष्ठ–20

8. वही, पृष्ठ–24

9. संपादकः निश्चल, ओम (2018), अन्विति खंडः दो राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., पृष्ठ–98

10. नारायण, कुँवर (2007), कोई दूसरा नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृति, पृष्ठ–48

11. वही, पृष्ठ–53

12. वही, पृष्ठ–41

13. वही, पृष्ठ–13

14. वही, पृष्ठ–9

– शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर असम–784028

– सी. 93 असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, नपाम, असम–784028

❑❑❑

उत्तराखंड के पुरातात्विक धरातल पर राहुल सांकृत्यायन

डॉ. अनूप प्रसाद

सामान्यतः किसी भी क्षेत्र के इतिहास को जानने के लिए दो प्रमुख स्रोतों का आधार लिया जाता है। पहला स्रोत साहित्यिक स्रोत होता है जिसके अंतर्गत धार्मिक साहित्य, लोक साहित्य, विदेशी यात्राओं के यात्रा वृत्तांत आदि सम्मलित हैं, वहीं द्वितीय स्रोत के अंतर्गत पुरातात्विक स्रोत होता है, जिसके अंतर्गत अभिलेख, मुद्राएँ, भवन, मूर्ति, मिट्टी के बर्तन, चित्रकला आदि का अध्ययन किया जाता है।

उत्तराखंड के इतिहास के संदर्भ में अनेक साहित्यिक स्रोतों का आधार उपलब्ध होता है। प्रायः विभिन्न धर्मों के धर्मग्रंथों में इस क्षेत्र का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' में उत्तराखंड का वर्णन मिलता है। इसी क्रम में 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'शतपथ ब्राह्मण' के अतिरिक्त महाभारत के आदिपर्व, सभापर्व तथा वनपर्व खंड के अंतर्गत भी इस क्षेत्र का वर्णन मिलता है। स्कंदपुराण, बुद्ध के जीवन संबंधी जातक कथाओं में भी उत्तराखंड का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रंथों के अंतर्गत 'कालीदास' के अभिज्ञान शाकुंतलम एवं मेघदूत, कल्हण की रांजतरंगिणी, पाणिनी की 'अष्टाध्यायी', राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' में भी उत्तराखंड का वर्णन मिलता है। इसी अनुक्रम में विदेशी यात्रियों में मैगस्थनीज, पिलनी, व्हेनसांग, अलबरूनी, हार्डविक आदि यात्रा वृत्तांत महत्वपूर्ण रूप से उत्तराखंड के इतिहास के स्रोत हैं। उत्तराखंड के इस प्राचीन स्वरूप के संदर्भ में यह कथन स्पष्ट है–''वैदिक काल में मध्य हिमालयी क्षेत्र के लिए 'हैमवत' तथा मध्य 'हैमवत' शब्द का प्रयोग मिलता है। उत्तर भारत में पर्वतीय क्षेत्र के लिए ऐतरेय ब्राह्मण में 'उत्तरकुरू', उपनिषदकाल में 'उत्तरपंचाल', श्रीमद्वाल्मिकी रामायण में 'उत्तर कौशल', महाभारत में 'उत्तरापथ' और 'उत्तरकुरू', पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'उत्तरापथ' तथा 'कारूपथ' आदि नाम प्रचलित रहे। पौराणिक युग में उत्तरांचल के कुमाऊँ और गढ़वाल क्षेत्र के लिए क्रमशः 'मानसखंड' और 'केदारखंड' नामों का प्रयोग मिलता है। इस क्षेत्र को किरात जाति के आधिपत्य के समय किरात मंडल और 'खसों' के आधिपत्य के समय 'खसमंडल' 'खसदेश' का नाम मिला। 'खसदेश' नाम की पुष्टि 'वायुपुराण', 'वाराही संहिता' और अशोकचल्ल के 'गोपेश्वर त्रिसूल' लेख (सं. 1248 वि.) से भी होती है।

कालांतर में इस क्षेत्र के लिए ब्रह्मपुर 'युगशैल' और 'पर्वताकर' नामों का भी प्रयोग मिलता है।"[1]

इतिहास के दूसरे स्रोत के अंतर्गत पुरातात्विक अन्वेषण किया जाता है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम अभिलेख के विभिन्न स्वरूपों तथा शिलालेख, गुह्य लेख, ताम्रपत्र लेख आदि का अध्ययन किया जाता है। उत्तराखंड के इतिहास के संदर्भ में ताम्रपत्र लेख सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मुद्राओं में अंकित चिन्हों

के माध्यम से हमें तत्कालीन शासक एवं उसकी मान्यताएँ एवं धार्मिक स्वरूप की जानकारी प्राप्त होती है। इसी प्रकार मूर्तिकला, चित्रकला के माध्यम से भी इतिहास का प्रामाणिक स्वरूप प्राप्त होता है। भारतवर्ष की आत्मा के स्वरूप में विराजमान उत्तराखंड सदैव ही अपनी पर्वतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के लिए विश्व विख्यात रहा है। इसके साथ–साथ संपूर्ण उत्तराखंड का क्षेत्र लोककला का दर्शनीय स्थल है। लोककला की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यधिक संपन्न एवं समृद्ध है। उत्तराखंड में स्थानीय कारीगरों के द्वारा उच्चकोटि की स्थापत्य कला देखने को मिलती है जिसके अंतर्गत चित्रकला–मूर्तिकला के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः लोक की भाषा, भाव और शैली में जन सामान्य की आत्मानुभूति और सौंदर्याभिरुचि की अनगढ़ अभिव्यक्ति लोककला कहलाती है। उत्तराखंड की लोककला के संदर्भ में यह कथन द्रष्टव्य है– "उत्तराखंड की लोककला का स्वरूप अन्य भारतीय लोक–कलाओं से बहुत भिन्न नहीं है। संपूर्ण उत्तराखंड क्षेत्र लोककला का दर्शनीय संगम स्थल है। यहाँ के लोक जीवन में कला के प्रति समर्पण का भाव सर्वत्र दिखाई देता है।"[2]

उत्तराखंड की दैवीय संस्कृति एवं पर्वतीय अंचल के कारण यहाँ अनेक देवी–देवताओं के निवास के साथ–साथ ऋषिमुनियों ने यहाँ आकर इस तपोभूमि को और भी अधिक पवित्र कर विश्व विख्यात बनाया है। तपोभूमि के साथ–साथ यह भूमि प्राचीनकाल से ही साहित्यकारों के लिए भी एक विस्तृत फलक रहा हैं। अनेक यात्रियों ने इस पवित्र भूमि की यात्रा कर इसकी मनमोहक प्रकृति एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को विश्व के पटल पर सुशोभित किया है। प्रसिद्ध यात्रियों के अंतर्गत महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी इस भूमि के प्रति सदैव समर्पित रहे हैं। उन्होंने अपनी हिमालयी आकर्षकता के कारण इस प्रदेश की यात्रा कर यहाँ की रंग–बिरंगी, संस्कृति, मनमोहक प्रकृति के साथ पुरातात्विक अन्वेषणों का भी गहनता से अध्ययन किया है।

यात्री राहुल सांकृत्यायन ने भी अपनी उत्तराखंड की यात्रा के दौरान यहाँ के कला के स्वरूप को अपने यात्रा वृत्तांत में जीवंत रूप से उजागर किया है। उत्तराखंड की यात्रा के दौरान यहाँ का सजीव वर्णन राहुल को एक यात्री के साथ–साथ पुरातात्विक अन्वेषक के रूप में भी प्रतिष्ठित करता है। उत्तराखंड में मूर्तिकला का विकास प्रायः तीसरी सदी से माना जाता है। मूर्तिकला का स्वरूप मुख्यतः मंदिरों एवं गर्भगृहों में देखने का मिलता है। पुरातात्विक स्वरूप के अंतर्गत मूर्तिकला के साक्ष्य का स्वरूप प्रकट करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है– "हम पुराने मंदिरों को देखने गए। सतेश्वर महादेव के पास एक बरगद के नीचे खंडित चतुर्भज मूर्ति है, जो मुसलिम काल से पहले की जान पड़ती है। उस वक्त टिहरी यदि राजधानी रही होगी, तो किसी दूसरे राजवंश की।"[3]

प्रायः मूर्तियों के प्रमाण यहाँ व्यापक मात्रा में उपलब्ध हैं। उत्तराखंड गढ़वाल के रूद्रप्रयाग जिले के त्रिजुगीनारायण में भगवान विष्णु की एक प्राचीन स्थानक मूर्ति विराजमान है। यहाँ प्रायः चतुर्मुखी ब्रह्म का अंकन मुख्य मूर्तियों के परिवार या विष्णु के नाभि कमल में विराजमान रूप में मिलता है। मूर्तिकला के इस सुंदर स्वरूप का दर्शन राहुल जी द्वारा इस प्रकार किया गया– "तिरजुगी में पहले विष्णु की प्रधानता थी। मंदिर के बाहर रूहेलों द्वारा खंडित डेढ़ हाथ लंबी शेषशाही की मूर्ति और दो खड़े विष्णु हैं, जिनमें एक लक्ष्मी सहित है।"[4]

उत्तराखंड में प्रायः शक्ति स्वरूप की मूर्तियाँ अधिक हैं, जिनके अंतर्गत पार्वती की मूर्तियाँ अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी यात्रा के दौरान शक्तिस्वरूपा की मूर्तियों का वर्णन करते हुए लिखा है– "गौरी मंदिर में 40 इंच लंबी, 24 इंच चौड़ी हर–गौरी की अत्यंत सुंदर पाषाण मूर्ति थी, जिसे देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। शिव–चतुर्भुज थे, गौरी द्विभुज, नीचे गणेश और मयूर रूढ़ कार्तिकेय थे। दाता की भी मूर्ति थी।

अखंडित इतनी सुंदर हर गौरी की मूर्ति शायद भारतवर्ष में कहीं न हो।"[5]

राहुल सांकृत्यायन की हिमालयी आकर्षकता ने उन्हें एक यायावर ही नहीं अपितु उत्तराखंड की संस्कृति के सभी पक्षों को जीवंत रूप में प्रतिष्ठित करने का चितेरा भी बनाया है।

राहुल ने सांस्कृतिक विवेचना के साथ यहाँ के भूगोल की बनावट का चित्रण करके एक भूगोलवेत्ता बनकर स्वयं को दिखाया है उत्तराखंड के प्रसिद्ध धाम बद्रीनाथ, केदारनाथ का पुरातात्विक दृष्टि से वर्णन भी राहुल के यात्रा साहित्य के अंतर्गत मिलता है। प्रसिद्ध बद्रीनाथ धाम की यात्रा के उपरांत अपनी पुरातात्विक दृष्टि से उन्होंनें लिखा है–"19 को निर्माण दर्शन करना था। सबेरे 7 बजे के करीब मैं मंदिर में पहुँच गया। मंदिर के तीन खंड हैं, सबसे पिछे गर्भगृह, उसके बाद छोटा सा मंडप, उसके बाद कुछ अधिक बड़ा मंडप, गर्भगृह में नंबूदरी रावल और उसके सहायक डिमरी पुजारी को छोड़ कोई नहीं जा सकता, ना कोई मूर्ति को हाथ लगा सकता। मध्य मंडप के द्वार से सटकर मैं खड़ा हुआ। मूर्ति वहाँ से तीन चार फुट से अधिक दूर नहीं होगी। बगवाड़ी जी की हिदायत के अनुसार दिए की टेम भी खूब बढ़ा दी गई थी। मैं वहाँ से मूर्ति को अच्छी तरह से देख सकता था। स्नान कराने के लिए मूर्ति नंगी कर दी गई थी। इसी को निर्वाण दर्शन कहते हैं। मूर्ति काले पत्थर की थी। आँख, नाक, मुँह लिए एक बड़ा सा पत्थर का खंड मालूम होता है किसी ने तराश कर निकाल दिया है।"[6]

इसी प्रकार राहुल ने गढ़वाल के चमोली जिले के अंतर्गत प्रसिद्ध 'गोपीनाथ' मंदिर के प्राचीन अभिलेखों का वर्णन भी किया है। प्रसिद्ध 'गोपीनाथ' मंदिर का पुरातात्विक वर्णन करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है–''यह मंदिर केदारनाथ जैसा ही विशाल है। छठी और बारहवीं सदी के अभिलेख उसकी प्राचीन महिमा को बतलाते हैं। मंदिर के सभामंडप को पीछे बनाया गया है। खंडित मूर्तियाँ एक चतौरे पर रखी थीं और कितनी ही दूसरी जगहों पर भी बिखरी थीं चतुर्मुखलिंग और शिवलिंग बतला रहे थे कि यह पाशुपतों का स्थान रहा, पुराने ढंग की बूटधारी सूर्य की मूर्ति भी मंदिर के भीतर मिली। विशाल त्रिशूल पर अशोक चल्ल, क्राचल्ल के अतिरिक्त तीन पंक्तियों का ब्रह्मी का भी एक लेख था, जो दक्षिणी ब्रह्मी से भी ज्यादा मिलता है।''[7]

राहुल की मानव समाज के प्रति सर्जकता का भाव उन्हें सदैव इतिहास की खोज की ओर बढ़ाता रहा। डॉ. कमला सांकृत्यायन ने लिखा है ''इतिहास की खोज में भटकने वाले राहुल जी की प्राचीनकाल की इतनी सूक्ष्म और इतनी मौलिक दृष्टि थी कि जहाँ वे अपने अनुसंधानों के बल पर बीते हुए युग के चलचित्रों की सृष्टि कर देते थे, वहाँ वह ऐसी दिशा की ओर भी संकेत कर देते थे, जिधर का मार्ग लोगों को परिचित नहीं था।''[8]

वस्तुतः राहुल जी ने उत्तराखंड के गढ़वाल के साथ–साथ कुमाऊँ मंडल का भी पर्याप्त भ्रमण किया है। यात्रा के दौरान इतिहास को जानने की जिज्ञासा ने उन्हें उस क्षेत्र के पुरातात्विक संबंधों से भी परिचित करवाया। उत्तराखंड कुमाऊँ के अल्मोड़ा जिले में स्थित कटारमल मंदिर एवं उसमें सूर्य की उदीच्य वेशधारी मूर्ति भी अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। यह प्रसिद्धि इस क्षेत्र में सूर्योपासना की परंपरा को उजागर करती है। अपनी कुमाऊँ की यात्रा के दौरान राहुल सांकृत्यायन ने कटारमल मंदिर का पुरातात्विक परिचय देते हुए लिखा है– "कुमाऊँ के सबसे पुराने मंदिरों में कटारमल भी है। यह नाम पड़ने का कारण क्या है? नहीं कहा जा सकता। पर यह सूर्य का मंदिर था, जो बतलाता था, यह गुर्जर प्रतिहार–काल से भी पहले का हो सकता है। सूर्य की बूटधारी प्रतिमाएँ शकों के साथ भारत में आकर स्थापित हुई थीं। मंदिर नग्नावस्था था, बहुत सी मूर्तियाँ थीं।"[9]

इस प्रकार स्पष्ट है कि राहुल द्वारा अपनी यात्राओं के अंतर्गत कुमाऊँ के प्रसिद्ध कटारमल

मंदिर के पुरातात्विक अन्वेषण का परिचय भी जीवंत रूप में दिया गया है। अपनी उत्तराखंड की यात्रा के अंतर्गत राहुल ने यहाँ की काष्ठ कला का भी बारीकी से अंकन किया है। यहाँ प्रायः लकड़ी के काम करने वाले प्रायः मिस्त्री या 'बढ़ई' बेजान और बेडौल लकड़ी को अपने हाथों की कलाकारिता से जीवंत और साकार स्वरूप प्रदान करते हैं, जिसके अंतर्गत छज्जों, काष्ठ स्तंभों, खिड़की, दरवाजा आदि सम्मिलित हैं। उत्तराखंड में स्थित प्राचीन भवनों, मंदिरों पर सुंदर कारीगरी का रूप आज भी देखने को मिलता है। प्राचीनकालीन राजा–महाराजाओं के बंगले आज भी यहाँ स्थित हैं। काष्ठ संपदा के संदर्भ में राहुल जी लिखते हैं–''हौसलिन का बंगला अब भी मौजूद है। देवदार की लड़ाई का यह एक दोतल्ला मकान है। कमरे बड़े–बड़े हैं, जिनमें शयनगृह, पाठगृह, भोजनगृह, बैठकखाना और स्नानगार भी हैं।"[10]

उत्तराखंड गढ़वाल में विश्व प्रसिद्ध केदारनाथ की यात्रा भी राहुल द्वारा की गई। प्रायः राहुल जी एक लेखकीय व्यक्तित्व से पहले एक घुमक्कड़ी स्वभाव के यात्री थे। इसी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने उन्हें केवल साहित्यिक धरातल पर ही प्रतिष्ठित नहीं किया, अपितु पुरातात्विक पटल पर भी अग्रणी रखा है। केदारनाथ के संदर्भ में उन्होंने लिखा है–''यहाँ शिव, सत्यनारायण, नवदुर्गा, हरगौरी की सुंदर मूर्तियाँ हैं। मंदिर में कई शिलालेख हैं। बाहर एक मंदिर खंडित पुराना (तिब्बती) लेख है।"[11]

इसी क्रम में उत्तराखंड के पांडुकेश्वर (योगबदरी) के पुरातात्विक स्वरूप को उजागर करते हुए राहुल लिखते हैं–''दो मंदिर बहुत पुराने हैं। यहाँ कत्यूरी राजाओं के चार ताम्रपत्र थे जिनमें तीन अब जोशीमठ में रखे हैं। यहाँ के मंडप पर ग्रीक प्रभाव है। कुषाण राजा वासुदेव के सिक्कों जैसा नादिया ललिताशुर के ताम्रलेख पर भी लिखा है।"[12]

इस प्रकार मूर्तियों के साथ–साथ यहाँ के प्राचीन सिक्कों का भी वर्णन राहुल के साहित्य के अंतर्गत मिलता है। सिक्कों की प्रधानता के संदर्भ में राहुल जी का यह कथन द्रष्टव्य है–"गढ़वाल के सिक्कों का बहुत कम ही अनुसंधान हुआ है। यहाँ मिले सबसे पुराने कुणिंदों के सिक्के हैं। ऐसे हजार सिक्कों (रुपयों) की निधि सुमाड़ी गाँव में हल जोतते समय मिली। यह तीसरी–चौथी सदी के किसी कुणिंद राजा के हैं।"[13]

इस प्रकार राहुल ने एक पुरातात्विक अन्वेषण के रूप में उत्तराखंड के स्वरूप को अपनी दृष्टिगत लेखनी से उजागर किया है। अनेक भाषाओं के ज्ञाता राहुल जी ने समाज के सभी पक्षों को जिया है। इतिहास को जानने की जिज्ञासा ने उन्हें एक उत्कृष्ट पुरातत्ववेत्ता के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। हिमालयी आर्कषकता के कारण उन्होंने उत्तराखंड को भी जीवंत रूप में अपने साहित्य में स्थान दिया। प्रायः यही बहुआयामी दृष्टि आज भी राहुल के साहित्य को अनुसंधान का विस्तृत फलक प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उत्तराखंडः लोक संस्कृति और साहित्य–देव सिंह पौखरिया, पृ. 1–2

2. उत्तराखंडः लोक संस्कृति और साहित्य–देव सिंह पौखरिया, पृ. 285

3. मेरी जीवन यात्रा, भाग–2, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 394

4. मेरी जीवन यात्रा, भाग–4, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 31

5. मेरी जीवन यात्रा, भाग–4, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 35

6. मेरी जीवन यात्रा, भाग–4, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 40

7. मेरी जीवन यात्रा, भाग–4, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 36

8. महामानव महापंडित– डॉ. कमला सांकृत्यायन, पृ.–99

9. मेरी जीवन यात्रा, भाग–3, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 449

10. मेरी जीवन यात्रा, भाग–2, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 406

11. हिमालय परिचय, भाग–1, गढ़वाल–राहुल सांकृत्यायन पृ.– 61

12. हिमालय परिचय–भाग–1 गढ़वाल, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 62

13. हिमालय परिचय, भाग–1, गढ़वाल, राहुल सांकृत्यायन, पृ.– 63–64

– सी/ओ भूपाल सिंह कंडारी, आम्रकुंज, श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखंड–246174

❑❑❑

सिनेमा की भाषा और उसका सौंदर्य

डॉ. विजय कुमार मिश्र

प्राचीन गुफा–चित्रों से लेकर आधुनिक संवादात्मक फिल्मों तक, मानव ने दृश्य कहानी कहने की दृष्टि से उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। सिनेमा अपेक्षाकृत नया माध्यम है जो सभी भौगोलिक सीमाओं को पार कर जाता है। चलती–फिरती तस्वीरों की शुरुआत के बाद से सिनेमा दुनिया भर में बोली जाने वाली भाषा के रूप में विकसित हुआ है। सौभाग्य से इस सार्वभौमिक भाषा को सीखना किसी विदेशी भाषा को सीखने की तुलना में कहीं अधिक आसान है।

सिनेमा की व्यापक प्रभाव क्षमता और उसके विस्तार की अस्मिता से प्रभावित होकर लोगों का उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। सिनेमा बीसवीं सदी के सर्वाधिक चमत्कारिक आविष्कारों में से एक है। आज सिनेमा निर्माण और सिनेमा लेखन एक बड़े ही ग्लैमरस क्षेत्र के रूप में उभरा है। साहित्य और सिनेमा के बीच भी परस्पर आदान–प्रदान की प्रकिया को महसूस किया जा सकता है। किंतु यहाँ यह जानना जरूरी है कि सिनेमा की भाषा, साहित्य की भाषा से इतर होता है, उसके उपकरण भिन्न होते हैं।

"फिल्म में बिंब निर्माण संवेदन पर आधारित न होकर एक मशीन द्वारा निश्चित स्थान और समय में अभिलिखित (रिकार्डेड) होते हैं। इसलिए फिल्म की भाषा की संपूर्णता कैमरा, ध्वनि यंत्र (माईक) और इन दोनों के संकलन (एडीटिंग) पर निर्भर होती है। सिनेमा की भाषा वही है जो इन तीनों साधनों के माध्यम से निखर कर आती है। अतः फिल्म, लेखन और मशीन के समन्वय द्वारा निर्मित कला रूप है।"[1]

सिनेमा लेखन के क्षेत्र में कदम रखने वालों के लिए यह जानना आवश्यक है कि दर्शकों के साथ संवाद के लिए सिनेमाई भाषा, सिनेमा लेखन के तरीके और इस संबंध में उसकी परंपराओं का ज्ञान और उपयोग बेहद आवश्यक है।

एक अच्छी फिल्म में, दर्शक उस कहानी को समझते हैं जो फिल्म निर्माता उन्हें दिखाने की कोशिश कर रहा है, वह उस चीज को महसूस करता है जो निर्माता उन्हें महसूस कराना चाहता है। एक सफल फिल्म निर्माता बनने के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि फिल्म दर्शकों तक संप्रेषित हो, विभिन्न तकनीकों के उपयोग की आवश्यकता होती है। उसे यह जानने की जरूरत होती है कि यदि वे किसी शॉट को किसी खास तरीके से फ्रेम करते हैं तो उसका क्या प्रभाव होगा? वह जो दिखा रहा है, उसे बेहतर ढंग से दिखाने के लिए ध्वनि का किस तरह से बेहतर उपयोग किया जा सकता है? दृश्यों को उपयुक्त अनुक्रमों में रखने के लिए शॉट्स को किस तरह से संपादित किया जा सकता है?

सिनेमाई भाषा के तत्वों कैमरा एंगल्स, फोकस और मूवमेंट्स, मिस–एन–सीन, लाइटिंग, साउंड एंड म्यूजिक, एडिटिंग और परफॉर्मेंस आदि से परिचित होना भी जरूरी है। सिनेमा लेखन के क्षेत्र

में रुचि रखने वालों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सभी प्रकार की सिनेमाई भाषा से परिचित हो और उसका ध्यान रखे। उसके लिए इस चीज का बोध होना अपरिहार्य है कि वह जिस दृश्य को लिख रहा है उस दृश्य में वह क्या चित्रित करना चाहता है?

"गत्यात्मक–छायाचित्र सिनेमा की अस्मिता के आधार बिंदु हैं। छायाचित्र स्थिर–फोटोग्राफी और उससे भी पहले चित्रकला से होता हुआ सिनेमा तक पहुँचा। छायाचित्र में गति पैदा करना एक यांत्रिक युक्ति है। इन सबने मिलकर सिनेमा को पैदा करने में जो सहयोग दिया उसके कारण ही सिनेमाई भाषा को समझने के लिए हमें इन माध्यमों के पास जाना होता है। परंतु सिनेमा केवल गत्यात्मक–छायाचित्रों का ही समूह नहीं है वरन् वह अन्य माध्यमों साहित्य, अभिनय (नाटक), संगीत आदि का भी मिश्रण है। अतः इन कला माध्यमों के स्वभाव को भी देखना होता है।"[2]

यहीं पर यह जान लेना भी जरूरी है कि विजुअल साक्षरता की अवधारणा बहुत चर्चित भले न हो किंतु यह सर्वथा नई भी नहीं है। गाहे–बगाहे इस पर बातें होती रही हैं और आज भी हो रही हैं। सिनेमाई भाषा के ऐतिहासिक, तकनीकी और सांस्कृतिक महत्व को समझना बहुत ही रोचक एवं शानदार अनुभवों से गुजरने जैसा होता है। सिनेमाई भाषा की समझ न केवल बेहतर फिल्म निर्माण के लिए आवश्यक है बल्कि सिनेमा निर्माण की जटिल प्रक्रिया की रोचकता से रूबरू होने की दृष्टि से भी यह बेहद रोमांचक होता है। फिल्म को एक 'पाठ' की तरह देखना और उसे पढ़ने में सक्षम होना आज के दौर में बहुत ही महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक, तकनीकी, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से और उस रूप में सिनेमाई भाषा किस तरह से महत्वपूर्ण है इसका ज्ञान होना समय की माँग है।

सिनेमा एक टीम वर्क (सामूहिक निष्पादन) है और सिनेमा के प्रत्येक शॉट/दृश्य में ऐसे अनेक घटक समानांतर रूप से जुड़कर कार्य करते हैं कि अगर उन्हें ध्यान से देखा जाए तो पता चलेगा कि इसमें से एक भी कमजोर पड़ जाए तो सिनेमाई भाषा की गढ़न में कमजोरी आ जाएगी। सिनेमा विविध कला रूपों का संगम है। इसलिए यदि किसी एक घटक के उपयोग से अर्थ ठीक से संप्रेषित न हो सके तो वहाँ दूसरे कला रूप से संबंधित घटकों का उपयोग किया जा सकता है।

"परंतु यह इतना आसान नहीं है जितना दिखाई देता है। अगर फिल्मकार बहुआयामी अभिव्यक्ति–विधाओं का धनी है तब भी सिनेमा में निहित इन विभिन्न कला–घटकों को ठीक तरह से, संतुलित रूप में, सिनेमाई भाषा में समाहित करके उसे एक समेकित रूप देना तपस्या की माँग करता है।"[3]

आज के फिल्म निर्माता और दर्शक काफी हद तक विजुअल साक्षर हैं, लेकिन सभी दर्शकों के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती है। प्रायः दर्शक सिनेमा के नाटकीय घटनाक्रमों, दृश्यों और संगीत में ही उलझे रहते हैं। जब हम पर्दे पर ब्रेकअप के दृश्य देखते हैं या दो करीबी लोगों के बीच की लड़ाई को देखते हैं तो हम दुखी और परेशान हो जाते हैं, लेकिन हम यह महसूस नहीं कर पाते हैं कि फिल्म में क्लाइमेक्स की ओर ले जाने वाले बहुत सारे नाटकीय पल, दृश्यों के उपयोग के माध्यम से बनाए गए होते हैं। दरअसल सिनेमाई भाषा को समझने का अर्थ है पंक्तियों के बीच की चीजों को पढ़ना और समझना।

किसी विचार को संप्रेषित करने के लिए जिस तरह लिखित भाषा अक्षरों, शब्दों, वाक्यों और अनुच्छेदों का उपयोग करती है उसी तरह सिनेमा शॉट्स, शॉट सिक्वेंस, दृश्यों और नाटकीय दृश्यों का उपयोग करता है। सिनेमा की भाषा शॉट से शुरू होती है। फिल्म और वीडियो में एक शॉट, स्थिर छवि फ्रेमों की शृंखला होती है जो एक निर्बाध अवधि के लिए चलती है। शॉट दृश्य भाषा का सबसे छोटा टुकड़ा होता है। अपने तत्वों के आधार पर, कोई शॉट पूरी कहानी या सिर्फ उसका एक छोटा सा हिस्सा बता सकता है। इन तत्वों में शॉट की अवधि, कैमरा कोण और गति, ध्वनि, प्रकाश व्यवस्था और उत्पादन के सभी दृश्य

डिजाइन आदि शामिल हैं। यदि कोई अभिनेता या अभिनेत्री शॉट में हैं, तो उनका शारीरिक प्रदर्शन और उनकी भावनाएँ भी संवाद से अधिक संवाद कर सकती हैं। सिक्वेंस शॉट्स का एक संग्रह होता है जो विचारों को संप्रेषित करता है, जैसे शब्दों का संग्रह एक वाक्य बनाता है, जैसे वाक्य में शब्दों का क्रम मायने रखता है, वैसे ही सिनेमाई वाक्य रचना में छवियों का क्रम महत्वपूर्ण होता है।

सिनेमाई संरचना अलग–अलग शब्दों (शॉट्स) से शुरू होती है जो वाक्यों (शॉट सिक्वेंस) में संयुक्त होती है। शॉट सिक्वेंस एक विचार का संचार करता है, जबकि एक सीन अथवा दृश्य कहानी की कथात्मक घटना को दर्शाता है। यदि एक शॉट सिक्वेंस एक लिखित वाक्य के बराबर होता है, तो एक दृश्य एक पैराग्राफ होता है। एक नाटकीय सिक्वेंस नाटकीय रूप से जुड़े दृश्यों का संग्रह होता है जो एक संपूर्ण कथा विचार को संप्रेषित करता है। यह पैराग्राफ की एक शृंखला या किसी किताब के एक अध्याय के बराबर होता है। कहानी कहने के लिए अलग–अलग लोकेशन और किरदारों के सीन इंटर कट किए जाते हैं। सिनेमा की दृश्य भाषा में चार मूल तत्व होते हैं : शॉट, शॉट सिक्वेंस, सीन और ड्रामेटिक सिक्वेंस। शॉट फिल्मी भाषा की सबसे छोटी इकाई है। एक कथा फिल्म के दृश्यों और शॉट्स को शायद ही कभी उस क्रम में शूट किया जाता है जिस क्रम में वे स्क्रिप्ट या अंतिम फिल्म में दिखाई देते हैं। फिल्म निर्माण में शामिल खर्च, समय और श्रम के कारण, एक स्क्रिप्ट को प्रमुख स्थानों, कैमरा कोणों, शॉट्स के अनुसार विभाजित और पुनर्व्यवस्थित किया जाता है। संपादन ऐसी प्रणाली है जो हमें आश्वस्त करती है कि अलग–अलग शॉट्स, जब एक साथ काटे जाएँ तो वह सुचारू और निरंतर समय, गति एवं स्थान का भ्रम दे।

"सिनेमा की कला, उसके अनिवार्य गुण, उसकी अभिव्यक्तिमूल रूप से कैमरे पर निर्भर है और इस बात पर भी कि फिल्म निर्माता कैमरे की क्षमताओं का किस तरह उपयोग करने में समर्थ होता है। सिनेमा संबंधी अनुभव का अद्‌भुत स्वभाव इससे बनता है कि फिल्म निर्माता किस प्रकार कैमरे के द्‌वारा विभिन्न तस्वीरों को जोड़कर कहानी कहने में सफल होता है।"[4]

एक बार जब कोई सिनेमाई भाषा के मौलिक सौंदर्य और वैचारिक सिद्‌धांतों से परिचित हो जाता है, तो वह लिखित पटकथा को एक कहानी में बदलने के लिए तैयार हो जाता है, जो छवियों और ध्वनियों में बताई जाती है, जो एक स्क्रीन पर चलती है। एक फिल्म की कल्पना करने के लिए तीन आवश्यक उपकरण माने जाते हैं : शूटिंग स्क्रिप्ट, ओवरहेड डायग्राम और स्टोरीबोर्ड। ये उपकरण फिल्म की दृश्य शैली और शॉट चयन को पूरे निर्माण दल तक पहुँचाने के लिए भी महत्वपूर्ण होते हैं। सिनेमैटोग्राफर व्यावहारिक तकनीकों और तकनीकी क्षमताओं के जानकार होते हैं। प्रोडक्शन मैनेजर, असिस्टेंट डायरेक्टर, एसोसिएट प्रोड्यूसर सभी फिल्म की व्यावहारिक, वित्तीय और तार्किक व्यावहारिकता एवं प्रगति के पर्यवेक्षक के रूप में कार्य करते हैं।

सिनेमाई भाषा का सिनेमा प्रस्तुत करने के ढंग, उसके लिए उपयोग में लाए जाने वाले उपकरणों से संबद्‌ध होता है। प्रायः इसे दृश्य कहानी कहने के तरीके के रूप में भी जाना जाता है। हालाँकि सिनेमा में उसकी भाषा, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि व्यवस्था, सिनेमैटोग्राफी, संपादन आदि अनेक साधनों के माध्यम से उभरकर सामने आती है। साहित्य में हम अर्थ तक पहुँचने के लिए शब्दों का सहारा लेते हैं। प्रायः अर्थ को चित्रित करने और संप्रेषित करने के लिए प्रतीकात्मकता जैसी साहित्यिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है। पटकथा लेखन में भी ऐसा ही किया जाता है, लेकिन सिनेमाई तकनीकों के साथ। इसमें किसी दृश्य के मूड्‌स को इंगित करने के लिए प्रकाश और रंग का उपयोग किया जाता है। संवाद वातावरण को संप्रेषित करने का कार्य करते हैं। कपड़े चरित्र और विषयों को व्यक्त कर सकते हैं। यही सिनेमाई भाषा है।

सिनेमाई भाषा साहित्य की भाषा से बिल्कुल अलग होती है। साहित्यिक भाषा में शब्द महत्वपूर्ण

है, शब्दों के माध्यम से ही वहाँ हम अर्थ तक की यात्रा करते हैं। सिनेमा की स्थिति इससे भिन्न है।

"सिनेमाई भाषा संदेशों का समुच्चय होता है जिसकी अभिव्यक्ति पाँच ट्रैक या चैनल से मिलकर होती है –चलती हुई फोटोग्राफिक छवि, रिकॉर्ड की गई फोनेटिक ध्वनियाँ, रिकॉर्ड किए गए शोर, रिकॉर्ड की गई संगीत ध्वनि, और लेखन।"[5]

सिनेमा निर्माण के लिए शूटिंग के दौरान कई शॉट लेते हैं, फिर उसे दूसरे शॉट के साथ जोड़ते हैं, और फिर अपनी विशेष दृष्टि से एक तीसरी छवि का अनुभव करते हैं, जो वास्तव में उन दो अन्य छवियों में मौजूद नहीं है, यही फिल्मी भाषा है। सिनेमाई भाषा अलग–अलग रूपों में मौजूद हो सकती है। कैमरा एंगल और फ्रेमिंग हमें बता सकते हैं कि किसी चरित्र के बारे में कैसा महसूस करना है। उदाहरण के लिए, यदि कैमरा किसी पात्र को न्यून कोण से देख रहा है, तो यह दर्शाता है कि चरित्र महत्वपूर्ण या शक्तिशाली है। यदि कैमरा उच्चकोण से देख रहा है, तो यह दिखा सकता है कि चरित्र छोटा और कमजोर है। इसी तरह प्रकाश और रंग की भी अपनी विशिष्ट भाषा है। एक अंधेरा और नीरस सेटिंग बता सकती है कि हमें तनाव या डर महसूस करना चाहिए। एक हल्की और रंगीन सेटिंग हमें खुश और उत्तेजित महसूस करने के संकेत देती है।

किसी भी अभिनेता का प्रदर्शन पूरी फिल्म में उनकी भावनाओं को समझने की कुंजी है। वे इसे चेहरे के भाव, हाव–भाव, गति और स्वर के माध्यम से कई तरीकों से संप्रेषित कर सकते हैं। पटकथा लिखते समय, सिनेमाई भाषा का एक सिद्धांत होता है, जिसे हमेशा दिमाग में रखना होता है। कैमरा निर्देश और संपादन तकनीक स्पष्ट रूप से पटकथा लेखक की प्राथमिक जिम्मेदारी नहीं है। लेकिन पटकथा के मूल में सिनेमाई भाषा होनी चाहिए।

पटकथा में सिनेमाई भाषा के महत्व को समझने हेतु पटकथाकार के लिए यह जानना जरूरी है कि क्या वह अपने दर्शकों के साथ संवाद स्थापित कर पा रहा है? पटकथाकार को कोई भी दृश्य लिखने से पहले यह पता होना चाहिए कि वह क्या कहना चाहता है? वह जिस दृश्य को लिखने जा रहा है उसका अर्थ भी लिखना सिनेमाई भाषा की दृष्टि से बेहद उपयोगी हो सकता है। सिनेमा में दर्शकों से बेहतर संवाद फिल्म के संबंधित दृश्य के प्रभाव को बढ़ाने का काम करता है। इसके माध्यम से पटकथाकार सिनेमाई भाषा के माध्यम से अपने अर्थ को संप्रेषित कर पाता है। समुचित संवाद के अभाव में दृश्य तनाव पैदा होने का खतरा रहता है।

"संवाद, सिनेमाई भाषा का अटूट हिस्सा है। अगर यह अटूट हिस्सा न होता तो हमें सवाक फिल्मों की आवश्यकता ही न पड़ती। परंतु सिनेमाई संवाद केवल भाषिक तत्वों की संरचना ही नहीं है वरन् वह उससे भी परे की चीज है और न ही सिनेमाई संवाद थिएटर का संवाद है, क्योंकि सिनेमा थिएटर भी नहीं है। फ़ोटोग्राफी सिनेमा को गति और चित्रात्मकता प्रदान करती है, परंतु सिनेमा फोटोग्राफी भी नहीं है। फिल्म भाषाविद क्रिश्चियन मेत्ज सिनेमा को फोटोग्राफी और रंगमंच के बीच की चीज मानते हैं।"[6]

यदि फिल्म में प्रतीकात्मकता के उपयोग के जरिए दर्शकों तक पहुँचने के शिल्प को स्वीकार किया गया है तो फिर पटकथा में रंग पर पर्याप्त ध्यान देना अनिवार्य हो जाता है। पटकथाकार जिस दृश्य को लिख रहा होता है, उसकी शुरुआत में मिसे–एन–सीन की रूपरेखा, दर्शकों को तुरंत उस दृश्य के माहौल और भावना से परिचित करा देती है। ऐसे दृश्यों का विधान जो अतार्किक अथवा असंगत व्यवस्थाओं से युक्त हो, जहाँ भ्रम का संचार कर सकता है वहीं एक खुला मैदान स्वतंत्रता का संदेश संप्रेषित कर सकता है। इसी तरह किसी दृश्य का तेज, धीमा होना यह बताता है कि फिल्म को किस मूड में प्रस्तुत करना है।

सिनेमाई भाषा की समझ विकसित करने के कई तरीके और तरकीब हो सकते हैं किंतु अधिक से अधिक फिल्में देखना और उसकी पटकथा को पढ़ना सर्वाधिक प्रभावशाली तरीका माना जाता है। सिनेमाई भाषा से संबंधित कई बिंदु ऐसे भी होते हैं

जो पटकथा में शामिल नहीं होते हैं, लेकिन फिल्मों में उसके संचरण की प्रक्रिया को समझना जरूरी है। ऐसा जान लेने से पटकथा लेखन और बेहतर हो सकता है। सिनेमाई भाषा ही किसी भी पटकथा को विशिष्ट बनाती है, सिनेमाई भाषा ही किसी पटकथा को उसके अपने प्रारूप में सही ठहराती है।

सिनेमा भी प्रारंभिक रूप में आधुनिक युग के विज्ञान की प्रगति के आधार पर एक तकनीकी साधन (डिवाइस) के रूप में सामने आया। यह छायाचित्र से चलचित्र तक के वैज्ञानिक आविष्कार के साथ जुड़े हुए हैं। परंतु कालांतर में डेविड वार्क ग्रिफिथ से लेकर सत्यजीत राय तक अनेक सिने–मनीषियों ने इस तकनीकी–साधन का ऐसा कलात्मक इस्तेमाल किया कि कैमरा, कूची या कलम बन गया और स्क्रीन कैनवास जहाँ सिनेमाई भाषा के अक्षरों, शब्दों और वाक्यों ने जन्म लिया और संपादन टेबल/मोंताज ने कलात्मक निखार देकर उसे एक भाषाई रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सिनेमा के शिल्प और उसकी भाषा के संदर्भ में अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग ढंग से अपनी राय व्यक्त की है। सत्यजीत राय के अनुसार जिस प्रकार लेखक द्वारा कहानी की रचना होती है, उसी प्रकार फिल्म निर्माता द्वारा बिंब और शब्द की। इन दोनों के संयोग से जो भाषा बनती है, उसके प्रयोग में यदि कुशलता का अभाव रहे तो फिर अच्छी फिल्म नहीं बन सकती है। उनके अनुसार यह ठीक है कि फिल्म में विभिन्न शिल्प साहित्यों के लक्षण हैं तथापि यह उन सबसे भिन्न और विशिष्ट है।

"सिनेमा कहानी प्रस्तुत करने का एक जरिया है, इसलिए फिल्म एक जुबान है, भाषा है। कहानी कई तरीकों से प्रस्तुत की जा सकती है– बोले हुए शब्दों में, लिखे हुए शब्दों में, नृत्य में, कविता में, गीत में, हाव–भाव में, तस्वीरों में। सिनेमा में यह सब समा जाते हैं। सिनेमा सब जरियों का एक समूह है। सिनेमा सिर्फ कला नहीं है, कलाओं में महान कला है। सिनेमा एक बौद्धिक माध्यम नहीं है और न ही वह निषेध लेखन है, यह कविता है, एक नाटक है।"[7]

कुल मिलाकर देखें तो सिनेमा की भाषा सिनेमा से संबंधित विविध पहलुओं, उसकी संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए फिल्म के सभी तत्वों के उपयोग और उसके संगठन से है। उन तत्वों में इमेज कंपोजिशन, ब्लॉकिंग, शॉट्स, कैमरा मूवमेंट, एडिटिंग, लाइटिंग, साउंड, म्यूजिक, कॉस्ट्यूम, सेट और भी ऐसी बहुत सी चीजें शामिल हैं। किसी भी फिल्म में बड़ी संख्या में तकनीकों और परंपराओं का संयोजन शामिल होता है, जिसका उपयोग कहानी या कथा को इस तरह से व्यक्त करने के लिए किया जाता है कि दर्शकों को वह अपनी उम्मीद से अधिक आकर्षक लगे। फिल्मी भाषा कथात्मक अभिव्यक्ति की एक विधि है, जो कथा और कथानक के विकास को बढ़ावा देती है। फिल्म निर्माण में फिल्मी भाषाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं, जब इसका सही ढंग से उपयोग किया जाता है तो वे फिल्म की सफलता को सुनिश्चित करते हैं। फिल्म निर्माता फिल्मी भाषाओं का उपयोग फिल्म को सौंदर्य–मूल्य प्रदान करने के लिए करते हैं। फिल्म निर्माताओं के लिए फिल्मी भाषाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। जब इसका ठीक से उपयोग किया जाता है तो फिल्म निर्माता अपने दर्शकों को अप्रत्याशित सौंदर्य और आनंद का अनुभव कराते हैं। अंत में डेविड लिंच के शब्दों में–

"सिनेमा एक भाषा है। यह बड़ी, अमूर्त बातें कह सकता है, और इस कारण मैं इसे प्यार करता हूँ। मैं हमेशा शब्दों के साथ अच्छा नहीं होता। कुछ लोग कवि होते हैं और उनके पास शब्दों के साथ बातें कहने का एक सुंदर तरीका होता है। लेकिन सिनेमा की अपनी भाषा होती है। इसके साथ आप बहुत सी बातें कह सकते हैं, क्योंकि आपके पास समय और क्रम है, आपके पास संवाद है, आपके पास संगीत है, आपके पास ध्वनि प्रभाव है। आपके पास बहुत सारे उपकरण हैं। आप एक भावना, एक विचार व्यक्त कर सकते हैं जिसे किसी अन्य तरीके से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। यह एक जादुई माध्यम है। मेरे लिए, समय

और क्रम में एक साथ बहने वाली इन तस्वीरों और ध्वनियों के बारे में सोचना बहुत सुंदर है, कुछ ऐसा बनाना जो केवल सिनेमा के माध्यम से ही किया जा सकता है। यह सिर्फ शब्द या संगीत नहीं है– यह तत्वों की एक पूरी श्रृंखला है जो एक साथ आ रही है और कुछ ऐसा बना रही है जो पहले मौजूद नहीं था। यह कहानियाँ सुना रहा है। यह एक ऐसी दुनिया, एक ऐसा अनुभव तैयार कर रहा है, जो लोगों के पास तब तक नहीं हो सकता जब तक वे उस फिल्म को नहीं देखते। जब मुझे किसी फिल्म के लिए कोई विचार आता है, तो मुझे सिनेमा से इसे व्यक्त करने के तरीके से प्यार हो जाता है। मुझे ऐसी कहानी पसंद है जिसमें अमूर्तता है, और यही सिनेमा कर सकता है।"[8]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुरेंद्र नाथ तिवारी, साहित्यिक कृति के फिल्म में रूपांतरण की समस्या – शतरंज के खिलाड़ी के संदर्भ में

2. किशोर वासवानी, सिनेमाई भाषा और हिंदी संवादों का विश्लेषण, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, वर्ष 1998, पृष्ठ 55

3. ऋत्विक घटक से बातचीत, नेत्र सिंह रावत, दिनमान, 16 मार्च, 1975, पृष्ठ 42

4. निर्मल्य सामंत, फिल्म अध्ययन क्या है? (ई–कंटेंट) जीवन पर्यंत अध्ययन संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय

5. Robert Stam, Robert Burgoyne and Sandy Flitter man Lewis, New Vocabularies in Film Semiotics : Structuralism, Post-Structuralism and Beyond (London : Routledge, 1992), Page - 37

6. किशोर वासवानी, सिनेमाई भाषा और हिंदी संवादों का विश्लेषण, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, वर्ष 1998, पृष्ठ 91

7. चेतन आनंद, धर्मयुग, 4 सितंबर, 1996, पृष्ठ–39

8. डेविड लिंच, कैचिंग द बिग फिशः मेडिटेशन, कॉन्शियसनेस एंड क्रिएटिविटी, किंडल संस्करण

– यू–89, परिवार अपार्टमेंट, अपर ग्राउंड फ्लोर, सुभाष पार्क, उत्तम नगर, दिल्ली–110059

❑❑❑

देश के प्रमुख गीतकार अश्विनी कुमार आलोक से शोधार्थी संजय सिंह यादव का साक्षात्कार

संजय सिंह यादव

संजय : अध्ययन, मनन के और भी क्षेत्र थे, लेकिन उस तरफ न जाकर, साहित्य का पथ आपने चुना। किसी विशेष सुझाव, विशेष कारण या किसी से प्रेरित होकर आपने इस ओर रूख किया?

आलोक : अक्षर और शब्द के ज्ञान के साथ ही मैं लेखक बन गया था। मैंने साहित्य का पथ चुना नहीं, बल्कि साहित्यपथ ने स्वयं मुझे अपनी ओर खींच लिया। तीसरे दर्जे की पढ़ाई के दिनों में मैं नाटक और कविताएँ लिखने लगा था। मेरे पूर्वज संगीतज्ञ रहे, मेरे पिता अच्छे कवि, नाटककार और उद्घोषक हैं। इस तरह साहित्य मुझमें सांस्कारिक तौर पर आया। नवीं कक्षा की पढ़ाई के दिनों से पत्रिकाओं में छपने भी लगा। मैट्रिक की परीक्षा देते–देते मैं संपादक बन गया और उसके बाद ढाई दर्जन से ऊपर पत्र–पत्रिकाओं का संपादक रहा।

संजय : साहित्य में अन्य विधाओं की अपेक्षा नवगीत ही आपकी प्रतिनिधि विधा क्यों है?

आलोक : मैंने नाटक लिखने से लेखन आरंभ किया, पर नाटक छूट गया। कविताएँ लिखता रहा, छंदयुक्त कविताओं ने मुझे आकर्षित किया। छंदरहित कविताएँ भी लिखी, लेकिन कम। छंदरहित कविताओं में मनुष्य की आर्थिक स्वतंत्रता, जीवन में जटिल व्यवधानों से मुक्ति, जीविका के साधनों का विकास एवं लोकतंत्र में सभी के अधिकारों की बातें मुक्तछंद की कविताओं के विषय बन रहे थे। इन विषयों को कविता अर्थात् छंदयुक्त और लयनियोजित कविता में उठानेवाले लोगों ने कविता के क्षेत्र में यह प्रवर्तन लोकहितैषिता के रूप में स्वीकार किया। तभी मैंने भी अपने गीतों में ये विषय उठाए और नवगीत लिखने लगा।

संजय : जब गीत स्वयं में एक विधा थी और नवगीतकार भी यह मानते हैं, गीत की जानकारी के बिना नवगीत नहीं लिखा जा सकता। तब, नवगीत नामकरण की क्या विवशता थी, इसे गीत रूप में ही रहने दिया जाता?

आलोक : यह तर्कपूर्ण तथ्य है कि साथ के साथ समाज की मान्यताएँ भी बदलती हैं, संस्कृति में भी परिवर्तन आते हैं। लेकिन, उन्हें व्यक्त करनेवाली साहित्य विधाओं के स्वरूप बदलने के बावजूद उनके नाम कम ही बदलते हैं। गीत कविता की पृष्ठभूमि पर लय की संगति से स्थापित हुए। नवगीत को वर्ण्य की दृष्टि से जनभावों या जन–अपेक्षाओं की ओर अधिक उत्तरदायी माना गया। किसानों, मजदूरों के जनगीतों एवं स्वतंत्र भारत में सामान्य लोगों की परेशानियों को व्यक्त करनेवाले गीतों ने मिलकर 'नवगीत' की पृष्ठभूमि गढ़ी। अर्थात् ग्राम्य अवसरों, शब्दावलियों एवं प्रभावों ने गीत की नव्य विधा या गीत के अधुनातन स्वरूप का सृजन किया। गीत ने नवगीत का समर्थन ही किया, विरोध नहीं। यहाँ यह भी स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि गीत नवगीत का आधार है, हम गीत की शाश्वत उपस्थिति के बिना नवगीत के प्रयोगात्मक स्वरूपों की कल्पना नहीं कर सकते।

संजय : क्या आपके जन्म से लेकर आज तक नवगीत के शिल्प और कथ्य के संदर्भ में परिवर्तन आए हैं?

आलोक : लोकभूमि पर स्वेद के स्वाद और परिश्रम के प्रभाव को आदर देते हुए नवगीत जन्मे। अर्थात् सिर्फ वर्ण्य में अंतर और आपसी व्यवहारों की अंतरंग सूचना को गीतों से अलग हटकर नवगीतों ने प्रकाश दिया। नवगीत सार्वजनिक संवेदनाओं के आग्रह से जन्मे। लेकिन बाद के वक्त में ये निजी अस्थिरताओं एवं कठिनाइओं को भी व्यक्त करने लगे। बानगीस्वरूप मेरा ही एक नवगीत देखें–

कैसे खाली हाथ खड़ा है
यह उदास दिन।
संबंधों के भ्रम ने कैसी
ठेस लगाई
जिसकी–जिसकी याद नहीं
आनी थी, आई
छू–छूकर बहका जाता है
अमलतास दिन।

संजय : आज लिखे जा रहे नवगीत की चुनौतियाँ क्या हैं, क्या वह अपनी समकालीन चिंताओं को सीधी तरह स्वर दे पा रहा है, जैसे हिंदी के अन्य समकालीन काव्य रूप दे रहे हैं?

आलोक : नवगीत के कई महत्वपूर्ण हस्ताक्षर विधा को समृद्ध कर रहे हैं। नवगीत वास्तव में गीत का नव्य रूप है। गीत की पहली शर्त उसकी गेयता है नवगीतों में गेयता बचाए या बनाए रखना उसकी चुनौतियों में प्रमुख है। फिर, जिस सार्वजनिक हित के स्वर को प्रधान मानकर नवगीत का प्रवर्तन किया गया, आवश्यक है कि वह स्वर अपनी अपेक्षाओं पर खरा उतरे।

संजय : युगबोध के विविध आयाम क्या हैं, क्या युगबोध की संकल्पना को संपूर्णता में लाने में सक्षम है, यह विधा?

आलोक : युग समय की अनेक इकाइयों, वातावरण और सामाजिक संरचनाओं का समेकित रूप है अतः यही आयाम है। इनके अनेक प्रतिरूप हो सकते हैं। सभी वर्ग के लोगों के अधिकारों की बात करनेवाले नवगीत में वास्तव में शिल्प के स्तर पर गीत से भिन्नता है। नवगीत अपने शिल्पीय मानकता पर अनेक प्रमुख नवगीतकारों के माध्यम से खरा उतर रहा है। यह युगबोध की उस संकल्पना को संपूर्णता में लाने में सक्षम है, जिसकी इससे अपेक्षा की गई है।

संजय : आपकी दृष्टि में युगबोध में किस प्रकार की संभावनाएँ निहित हैं?

आलोक : युग समय के अनेक पूर्ववर्ती स्वभावों एवं परवर्ती संभावनाओं का ज्ञान रखता है। युगबोध पुरातन एवं अधुनातन परिस्थितियों के अध्ययन का अवसर देता है। किसी साहित्य लेखक का युगबोध से स्वाभाविक ही संबंद्ध हो जाता है। तभी वह परिस्थिति से समझौता करने के बदले मनुष्य को अपनी रचनाओं के माध्यम से पारिस्थितिकी निर्माण के लिए प्रेरित करता है।

संजय : वर्तमान में इक्कीसवीं सदी के नवगीतों को आप बीसवीं सदी के नवगीतों से किन आयामों पर भिन्न मानते हैं?

आलोक : सूचना–क्रांति इक्कीसवीं सदी का प्रमुख स्वभाव एवं परिचय है। जनसमस्याओं के भी स्वरूप बदले हैं, जीविका के संसाधन भी अलग प्रकार से विकसित हुए हैं। बीसवीं सदी में कई ऐसी शब्दावलियाँ नहीं थी, जो इक्कीसवीं सदी में हैं। नवगीतों ने इस प्रकार के परिवर्तनों को अपने शिल्प में गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है।

संजय : हिंदी कविता की मुख्य धारा में नवगीत की उपस्थिति के क्या मायने हैं?

आलोक : हिंदी कविता–क्षेत्र में इन दिनों मुक्तछंद की कविताओं की अधिकता है। कविता छंद–योजना प्रतिभा संस्कार भरती है। यह विशेषता मुक्तछंद की कविताओं में नहीं है। गीतों ने कविता की शाश्वत पद्धति की रक्षा की है। हिंदी कविता की मुख्य धारा में कविता के लिए नवगीत की उपस्थिति विश्वसनीय और उपयोगी है।

संजय : नवगीत का लोकधर्मी अथवा जनसंवादी रूप हमारे सामने क्यूँ नहीं आ पा रहा है और वर्तमान नवगीत जनता से सीधा संवाद क्यों नहीं कर पा रहे हैं?

आलोक : एक प्रकार से जनगीत का परिष्कृत स्वरूप नवगीत के रूप में उभरा। जनगीत लय की स्वाभाविक गति पर बढ़ते हैं, उनमें छंद की सावधानी नहीं होती। छंद की सावधानी नवगीत को जनगीत से अलग करती है इस प्रकार नवगीत शास्त्रीय हो गया। जनता अब भी पुस्तकों एवं साहित्य के बहुत करीब नहीं आ पाई है। इसलिए नवगीत जनसंवादी नहीं हो पाया। परंतु, कई नवगीतों को जनता की जुबान मिल भी गई है।

संजय : क्या नवगीत एक सीमित, बौद्धिक समाज तक ही सिमट कर रह गया है?

आलोक : न यह धारणा पूरी तरह सत्य है, न नवगीत के आम जनगीतों या नारों की तरह सार्वजनिक होने की कोई संभावना है। नवगीत शास्त्रीय है, स्वाभाविक है इसमें शब्द–शक्तियों का समावेश होगा। शब्द–शक्तियों की समझ आम जनता की नहीं होती। बौद्धिक समाज में सीमित होना भी नवगीत की विशेषता ही कही जाएगी।

संजय : हिंदी कविता की मुख्य धारा की आलोचना नवगीत का मूल्यांकन करने से क्यों बचती रही?

आलोक : हिंदी कविता की मुख्य धारा क्या है, पहले यह स्पष्ट होना चाहिए। कविता का शाश्वत स्वरूप छंदानुशासन में प्रतिभा संस्कार से रची गई कविताएँ हैं। कुछ लोगों को छंदसंगति इसलिए भी रास नहीं आती कि उनमें प्रतिभा संस्कार या छंदज्ञान का अभाव होता है। लोग सीखना भी नहीं चाहते। तब, छंदानुशासन में लिखी गई कविताएँ उन्हें एक प्रकार से पुरातन, संकीर्ण और परतंत्र लेखन लगती हैं। जो लोग छंद का ज्ञान नहीं रखते, वे छंदयुक्त कविताओं को मुख्य धारा का मान ही नहीं सकते; क्योंकि उनकी आलोचना करना उनके लिए संभव नहीं। मुक्तछंद के कवियों एवं मुक्तछंद की कविताओं के आलोचकों की भीड़ है। भीड़ में सही लोग शामिल नहीं होते। नवगीत के साथ भी यही बात है।

संजय : समकालीन कविता और नवगीत के बीच इतनी विभेदक रेखाएँ क्यों खींची गई हैं? क्यों उसे आलोचना जगत ने बहिष्कृत किया?

आलोक : बताया न, नवगीत को समझनेवाले आलोचकों के लिए आवश्यक है कि वह यति, गति, लय, ताल, छंदयोजना आदि को समझें, पढ़ें और यह परिश्रम कोई नहीं करना चाहता। नवगीत ऐसे आलोचकों की परवाह नहीं करता। जैसे सदियों पूर्व की रचना 'रामचरितमानस' आज भी अपना अस्तित्व और आदर बचाए हुए है, नवगीत भी बचा रहेगा।

संजय : हिंदी साहित्य के विकास एवं प्रचार–प्रसार में पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, परंतु नवगीत पर केंद्रित पत्रिकाओं का अभाव क्यों है?

आलोक : यहाँ भी वही बात है। मुक्तछंद के कवियों की भीड़ है, मुक्तछंद की कविताओं को छापनेवाली पत्रिकाएँ भी उसी अनुपात में अधिक हैं। कुछ श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के संपादक नवगीत की समझ रखते हैं, इसलिए वे नवगीत छापते हैं। नवगीत की विशिष्ट पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं, विशेषांक भी निकल रहे हैं।

संजय : नवगीत की आलोचना को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए और क्या किया जाना चहिए?

आलोक : नवगीत के गीतकारों को अपना सृजनकर्म जारी रखना चाहिए। आलोचना या विज्ञापन के फेरे में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कुछ गद्यलेखक जो नवगीत भी लिखते हैं, वे नवगीत की समालोचना में लगे हुए हैं।

संजय : नवगीत परंपरा को प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय आप किसे देते हैं?

आलोक : नवगीत नाम के अधिष्ठाता हो सकते हैं, नवगीत के कथ्य तो स्वाभाविक साहित्य–अपेक्षा की उपज हैं। इसे प्रतिष्ठा देनेवाले अनेक गीतकार हुए हैं। कुँवर बेचैन, महेश अनघ, महेश्वर तिवारी, नचिकेता, मधुकर गौड़, हृदयेश्वर, सत्यनारायण जैसे लोगों ने अपने स्तरीय लेखन से इस विधा को प्रतिष्ठा दिलाई है।

संजय : अपनी छह दशकों की यात्रा में नवगीत को महिला साहित्यकारों का साथ क्यों नहीं मिल पाया?

आलोकः महिला साहित्यकारों ने प्रगतिशीलता के नाम पर सिर्फ महिला से जुड़े विषयों को ही उठाया। उन्होंने सामान्य लोगों, कृषकों, मजदूरों के जीवन को कम ही रेखांकित किया। महिला कवयित्रियों ने अपनी रचनाओं में प्रेम, महिला–विमर्श आदि को ही प्रकट किया। महिला साहित्यकारों ने जनधारा से अलग अपनी धारा रची।

संजय : इक्कीसवीं सदी के नवगीतों में युगबोध किस प्रकार व्यक्त हो रहा है?

आलोक : यह स्वाभाविक संवेदना है। कोई भी साहित्य अपने युगबोध से अलग नहीं रह सकता। नवगीत ने अपने युगबोध को संपूर्ण सावधानी एवं शालीनता के साथ व्यक्त किया है।

संजय : आधुनिक युगबोध में सम्मिलित तत्व तथा वैश्वीकरण, उत्तर आधुनिकतावाद, बाजारवाद, महामारी, राष्ट्रवाद आदि को नवगीत किस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं?

आलोक : नवगीत संशय के मनुष्यत्व, विघटन के प्रभाव, परिवार के विखंडन और जीवन पर इन सभी के असर से जुड़े हुए हैं। आधुनिक युगबोध के दायरे से ये अलग नहीं हैं।

संजय : दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्शों में नवगीत का क्या स्थान है? क्या यह वर्तमान विमर्शों को व्यक्त कर पा रहा है?

आलोक : नवगीत से कोई भी विषय अलग या अछूता नहीं है।

संजय : वर्तमान नवगीतकारों के नवगीतों को दृष्टिगत रखते हुए आपको नवगीत विधा का भविष्य कैसा प्रतीत होता है।

आलोक : संशयरहित, प्रशस्त और जनभावनाओं के सापेक्ष।

संजय : अनेक महाविद्यालयों/विश्व–विद्यालयों में नवगीतों पर हुए शोध/हो रहे शोधकार्य को आप नवगीत के विकास में कितना अहम मानते हैं?

आलोक : यही तो सही मूल्यांकन है। आलोचना से संबंधित जो चिंता आपने व्यक्त की थी, वह यहीं निर्मूल होती है।

संजय : नवगीतों पर कार्य कर रहे शोधार्थियों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

आलोक : विश्वास से शोध करें, एक पवित्र और प्रशस्त काव्यविधा की प्रतिष्ठा में उनका योगदान सराहा जाएगा।

– मकान नं. ए–57, राठ नगर, अलवर, राजस्थान–301001

❑❑❑

ऑस्ट्रेलिया दिवस, डैडिनांग और चेस्टन कैपिटल

प्रो. फूलचंद मानव

ऑस्ट्रेलिया दिवस, छब्बीस जनवरी, 2011, इत्तेफाक से इस बार हम मेलबर्न में हैं। राष्ट्रीय छुट्टी के कारण बंटी और शंटी आज फ्री हैं। पिछले दो माह से इनका आग्रह रहा है कि एक पूरा दिन ये हमारे साथ बिताएँगे। यों भी कह सकते हैं कि जहाँ हम चाहें दोनों परस्पर सहमति से हमें घुमा पाएँगे। एक सैलानी को इससे ज्यादा चाहिए भी क्या? कोई साठ किलोमीटर की ड्रॉइव करके दोनों युवा ठीक वक्त पर सुबह हमें आ मिलते हैं। माऊँट बेवर्ली से आविंगटन ड्रॉइव तरुंगिना तक अपनी गाड़ी से ये मौसम का महोत्सव मनाते आए हैं।

मेलबर्न सिटी, पार्लियामेंट हॉउस से सदन क्रॉस स्टेशन और फ्लींद्र स्ट्रीट से लेकर विक्टोरिया परेड तक आबाद, भीड़ भरा शहर है। गति, गरिमा, हलचल और हंगामे में इसका कोई सानी नहीं। फिलहाल हम पंजाबी, नाश्ता छककर, पर्वतीय यात्रा पर निकलते हैं। माऊँट डैडिनांग रेंज का आकर्षण हमें लुभा रहा है। मौसम शांत था, गुदगुदाने लगा है। हवाएँ छू रही हैं। बरसात की बूँदें कार के अगले शीशे पर हाजिरी लगवा रही हैं। पीछे मस्ती मनाते युगलों, उत्साहपूर्वक अपने देश का दिन मनाते ऑस्ट्रेलियाई नागरिकों के हुजूम को लांघते हम माहौल का लुत्फ लेते आगे भागते जा रहे हैं। 100 की रफ्तार कहीं 80–60 पर भी करनी पड़ जाती है। बंटी–सौरभ स्टेयरिंग पर, मैं अगली सीट पर, पीछे साहिल,– बंटी और योगेश्वर हैं।

केयर फ्री ड्रॉइव का आनंद लेते बंटी कुछ जरूरी, चर्चित जगहों की जानकारी देते हैं। नमकीन, सॉफ्ट ड्रिंक्स, चाकलेट, चिप्स आदि पर्याप्त मात्रा में हमारा संबल है। साथ वाली लेन और पास वाली लेन से कुछ गाड़ियाँ स्पीड का ध्वज फहराती आगे निकल रही हैं। चेहरे भरपूर उल्लास के प्रदर्शन में हैं। पहाड़ियों के नीचे और ऊपर भी बादलों ने डेरा डाला, रोमांचक लग रहा है। एक टुकड़ा बादल हमारे मेज से सटता उतर आया, भला सा लगा ऐलिना पार्ले बगलवाली कॉफी टेबल पर हमारे लिए तस्वीरें खींचने लगती हैं। सहयोग, सद्भाव की अभिव्यक्ति हम थैंक्स में ही नहीं करते, उनके परिवार के साथ, बगलगीर फोटो खिंचवाते हैं। डैंडिनांग माऊँट सच में एक नशा है, एक मस्ती या उल्लास जिसमें हर उम्र के पर्यटक, दर्शक शामिल है। दो टीमें शूटिंग के लिहाज से आसपास अपना काम कर रही हैं। अपने में मस्त व्यस्त लोग सिगरेटों के धुएँ और गर्म कॉफी की भाप के साथ गपियाते, मुस्कुराते मोहक हो चले हैं। ऊर्जा और आनंद का यह आलम प्रेरणा देने वाला है।

एक तथ्य यह भी कि ऑस्ट्रेलिया के लोग खान–पान, सैर–सपाटा, आराम–विश्राम, संगीत –कला प्रकृति के बेहद शौकीन हैं। स्काई हाई रेस्तरां से ही आभास होने लगा कि लंबी–छोटी ड्रॉइव के बाद, कॉफी सनेक्स जरूरी हैं। फिर पार्क गार्डन, क्राफ्ट गैलरी, एंटीक सेंटर, क्लाउड

हिल रेस्तरां, क्रीम शॉप, कुक्कू, फ्लावर पैच, हाउस ऑफ कॉफी से लेकर लेडी हाक, ओलिंडा गोल्फ हाउस, पार्क विक्टोरिया, वूल स्टोर, द माऊँट डैडिनांग होटल। ओक जैसे निहारनीय स्थल जानने और जीने की जगह है जहाँ नवविवाहित दंपत्ति से लेकर पारिवारिक माहौल में कोई भी आनंद ले सकता है।

छतरी, जर्सी, शूज़, बेल्ट या ऐसा ही अन्य सामान। पानी, ड्रिंक्स चश्मे पास हों तो कहीं सहारे–संबल की भी जरूरत नहीं। कैमरे करिश्मा दिखाने लगते हैं। युगल कसे–कसाए, परस्पर बाहों में आने लगते हैं और कुछ संस्कारशील भारतीय या ऐसे ही अन्य देशों के लोग, महज कल्पना कर रह जाते हैं।

लो, इस मॉडल को देखिए। पत्थर के एक बड़े टुकड़े पर औंधी टेढ़ी लेटी पोज देने लगी है। मन की लहर और मस्ती का कहर यहाँ दिन में है। फुलझड़ियों की तरह खिलता, मुस्कुराता मन तरंगित कर जाता है।

नफरतों का सफर, एक कदम दो कदम
हम भी थक जाएँगे, तुम भी थक जाओगे।

चेरस्टन कैपिटल। फैशन की दुनिया की राजधानी। दो मंजिला सुपर बाजार, विश्वस्तरीय कंपनियाँ। एक से बढ़कर एक। केवल विंडो–शॉपिंग के मूड में है आप, तो भी कई दिन चाहिए इसके मर्म को समझने के लिए। दुकान, बाजार, शॉपिंग सेंटर का भी अपने में एक अलग धर्म होता है। हँसते इनसान के मर मरने मिट जाने तक। कभी पर्स, कभी जेब, डालर्स क्रेडिट काड्र्स से आगे इच्छा पूर्ति तक, इसकी एक अलग केमिस्ट्री है।

विक्टोरिया का सबसे बड़ा बाजार कहलवाने वाली इस महामार्केट में हजारों की तादाद में पार्किंग की सुविधा है। गाड़ियाँ करीने से लगाएँ, ऑटो मशीन पर डॉलर टिकट कटवाएँ और खरीदारी पूरी होने तक मस्त हो जाएँ। लिफ्ट से ऊपर या नीचे, रैंप, सीढ़ियाँ अथवा आते–जाते एसक्लेटर्स आप ही की सुविधा के लिए हैं। अपंग, महिलाएँ, पुरुष या सभी को शौच–सुविधाएँ साफ माहौल में सुलभ हैं। हाथ धोने से सुखाने तक रोलिंग नेपकिन हर समय आपके लिए हैं। शुद्धता, सुरक्षा शारीरिक हिफाजत। एक राष्ट्र और भला क्या दे सकता है।

किससे कहें कि घर की मुंडेरों से गिर पड़े
हमने ही खुद पतंग उड़ाई थी शौकिया

इन परिस्थितियों में यहाँ यायावर बार–बार घिरता, निकल आता है। कंधे का झोला बेंच पर टिकाता, आराम पाता, आगे सरक जाता है आलदी, फ्रेश फूड, वूलवर्थ–जेविड जेम्स, यूम कॉयर, टारगेट से शुरू करके लोबिसां जिम्मी, चू लूइस बुदटने, स्पीडो कि–कि–के प्रादा, गूसी तक ही नहीं आप चाहें तो क्यू–क्यू, सुस्सन, फुट लॉकर (लंदन) बास, आमेगा चौनल, करीन मिलेन, सवा में कहीं भी हो आएँ। आपसी प्यास जगेगी, भूख लगेगी। मन महकेगा और संगी के साथ आँखें मिलाकर एक बार तो वहीं का ही रहने को मन हो आएगा।

पेड़ों का आकर्षण कवर्ड महामार्केट में कैसा जादू दिखता है, कैमरापर्सन ही बता पाएँगे। शीशे और स्टील का खिंचाव, इस्पात और ग्लास से संभली–सजी दुकानें। शोरूम आपको हिलने नहीं देंगे। लेकिन भई, घर तो जाना है न! फूड कोर्ट का तिलिस्म आपको चौंका सकता है। माँसाहारी के वास्ते बीसियों देशों का खाना और पकवान आपके इंतजार में है। चुस्ती–दुरुस्ती और चहेता साथ आपके आनंद को दोगुना कर देता है।

थाई, इटेलियन, जापानी, चीन का जायका चखकर भी मन न भरा हो तो पीज़ा, बर्गर केरसीकम टैफ, बटर चिकन, मटर मशरूम तक, सब पेट की भूख शांत कर सकते हैं। पर मन की भूख की खातिर आप फिर आगे ही जाने की सोचते हैं। शंटी–बंटी की अपनी पसंद है, हमारी च्वाइस सिंपल, हल्की खुराक। भारी पेट, मन को भी टैक्स लगाएगा। ठीक–ठाक शरीर भी सोने के लिए सुस्ताएगा। नैनडोज, टुक अब मैकडोनाल्ड से शुरू करके आप चालीस–पचास डॉलर में मनचाहा भोजन पाकर तृप्त हो लीजिए। आगे का रास्ता आसान हो जाएगा।

कहीं पे धूप की चादर बिछाके बैठ गए
कहीं पे शाम सिरहाने लगा के बैठ गए
लहूलुहान नजारों का जिक्र आया तो
शरीफ लोग उठे दूर जा के बैठ गए।

बीच बाजार में घास, हरी दूब सी चमक रही है। गोरा परिवार तीन छोटी बेटियों के साथ यहीं से चादर समेटते उठ खड़ा हुआ है। बाँधने–समेटने का यह क्रम भी मनुष्य को कहाँ–कहाँ ले जाता है। माऊँट बेबर्ली होते हुए हम साहिल–सौरभ का लिविंग हाउस देख आए हैं। इच्छा है बंटी की कि वह रमेश–आशा को मेलबर्न दिखाए लेकिन पहले अक्तूबर–नवंबर में मुहूर्त निकल आए तो। पत्नी के साथ वह अपना घर बना पाएगा। मकान से घर तक की यह यात्रा हर युवक को अपनी तरह से तय करनी पड़ती है। माता–पिता का कुछ समय तो स्थानीय नियमानुसार बंटी साथ रख ही पाएगा। हमारा आर्शीवाद और दुआएँ यहाँ दोनों के साथ हैं।

रियाल्टो क्राऊन की चर्चा हमारी पहली विजिट में भी होती रही। यारा दरिया के साथ–साथ दोनों ओर आबाद साऊंत गेट अपनी तरह का मंजर पेश करता है। सैलानियों का आकर्षण, प्रेमी जोड़ों का मिलन स्थल। पिकनिक स्पॉट, कला भवन। आर्ट गैलरी के साथ–साथ पुल और पुलों की आरोही अवरोही मुद्दा। ठिठके थमे चेहरे एक बार तो अपना आप भी भूल जाते हैं। सीनियर सिटीजन यहाँ पेय पदार्थों का आनंद यारां के सामने वाले कहवा घरों तक ले रहे हैं। डॉलर की खनक ने ऑस्ट्रेलिया को फिर एक बार विश्वस्तर पर ऊपर उठाया है।

क्राऊन की रौनक आज भी हैरतअंगेज है। ऑस्ट्रेलियन डे की छुट्टी। बुधवार। गणंतत्र दिवस की शाम और मचलता, महकता युवा मन। सबको ऊपर–नीचे, नीचे–ऊपर क्राऊन में देखने और दिखाने को तैयार हैं। कैसिनो होटल्स, रेस्तरां कैफे, शोरूम, विश्वस्तरीय कंपनियों–दुकानों के डिस्पले शोरूम, अंदर तक हरियाली लहलहा रही है। एक चक्कर तो पोकी घर का भी लगाया। सैकड़ों नहीं, हजारों की तादाद में हर उम्र का हृदय जीतता–हारता, यहाँ से बाहर हो जाता है। गेम, जुआ। जल्दी अमीर होने की हसरत। कभी–कभार तो अठारह हजार डॉलर तक का जैकपॉट दे जाता है। फिर आदत, लत यों ही तो हावी होती हैं।

टाम की फ्री सवारी की गति पाकर हम पैदल फ्लींडर स्ट्रीट से ऐलिजाबेथ, स्वानिंस्टन स्ट्रीट, वर्क स्ट्रीट से 89वीं मंजिल टॉवर यूरेका, स्काई डेक के ऐज्ज की ऊँचाई से रात सवा नौ बजे, पंद्रह मिनट की भरपूर आतिशबाजी का आनंद उठाते, लाखों डॉलरों की रंगीनी–रोशनी देखकर हम क्राऊन के पार्किंग एरिया में दूसरे तले से गाड़ी उठा रहे हैं।

– 239, दशमेश एन्क्लेव, ढकौली, जीरकपुर, जिला मोहाली, पंजाब–160104

❑❑❑

पागल पत्नी

देवेंद्र कुमार मिश्र

विभा को यह अच्छा नहीं लगा कि मैं अपनी पहली पत्नी साधना की तस्वीर को दीवार पर टाँग कर रखूँ। न जाने क्यों उसे तस्वीर अपनी सौत प्रतीत होती थी। इसका कारण तो वही जाने। क्योंकि वह कभी उसके सामने न थी और न है। फिर भी न जाने क्यों तस्वीर को दीवार पर टाँगते ही मुझसे झगड़ने लगती थी। घर में शांति का माहौल बना रहे, इसलिए न चाहते हुए भी तस्वीर को दीवार से हटाना पड़ा और उसे अपनी अलमारी में सुरक्षित रख दिया था।

एक लंबे समय, शायद बीस वर्षों के बाद अचानक ही मन में साधना का विचार उभर आया तो मैं तस्वीर में उसकी एक झलक देखने के लिए उतावला हो गया। फलस्वरूप मैंने अलमारी से चुपचाप तस्वीर निकाली और ध्यानपूर्वक देखने लगा। मुझे ऐसा लग रहा था कि यदि और कुछ देर तक तस्वीर को देखता रहा तो साधना तस्वीर में साक्षात् प्रकट हो मुझसे बातें करने लगेगी। मेरा मन भावुकता से भर उठा।

अभी तस्वीर को देख कर मेरा मन पूरी तरह भरा नहीं था कि मेरी बीस वर्षीय पुत्री साधना ने पीछे से चुपचाप आकर मुझसे प्रश्न किया, "पापा! ये कौन हैं.....? जिन्हें आप इतने ध्यान से देख रहे हैं....?"

पुत्री साधना के शब्दों ने मेरी तंद्रा भंग कर दी और मैं सूनी–सूनी आँखों से उसकी ओर देखते हुए बोला, "बेटी! ये मेरी पहली पत्नी और तुम्हारी बड़ी माँ की तस्वीर है..."

"लेकिन पापा! कभी–कभी मम्मी तो इनके बारे में थोड़ा बहुत बताती भी हैं, परंतु आपने तो कभी इनके बारे में कुछ नहीं बताया।" पापा! "बताओ न हमें भी बड़ी माँ के बारे में...." साधना के स्वर में बच्चों वाली हठ के साथ एक अनुरोध भी था।

हमारी बातों को सुन कर विभा भी हमारे पास न जाने कब आ गई थी। इसका हमें पता ही नहीं चला। बेटी के अनुरोध पर मुझे अपने जीवन के पुराने पन्ने पलटने पड़े और मैं जैसे अपने अतीत में पहुँच गया।

"धोखा दिया है आप लोगों ने मुझे और मेरे माता–पिता को....इतने पवित्र रिश्ते की बुनियाद ही आपने इतने बड़े झूठ पर रखी है।.....आप लोग धोखेबाज हैं....मक्कार हैं..... बेईमान हैं...." और भी न जाने क्या–क्या कहा था मैंने, "आप लोगों ने अपनी पागल बेटी को धोखे से मेरे सिर मढ़ दिया है..... हमें इस बारे में कुछ बताया तक नहीं....."

मैं आप बीती बता रहा था। जैसा कि मेरे साथ हुआ था। गुस्से से मैं अपने पर काबू खो चुका था, "आप लोगों ने यह तक नहीं सोचा कि आपके इस झूठ का जब मुझे पता चलेगा तो मेरा क्या हाल होगा.....? अरे! कमीनों..... कभी यह भी सोचा है कि पागलपन कभी झूठ बोलने से छिप नहीं सकता है? अरे! झूठों..... जिसे तुम्हें पागलखाने में भर्ती कराना चाहिए था। उसे तुमने धोखे से शादी के नाम पर मेरे गले बाँध दिया...."

मेरे चीख भरे शब्दों में कड़वा सच सुन कर मेरे ससुर बोले थे, "मैं मानता हूँ, मैंने आप लोगों को इस बारे में पहले नहीं बताया था कि मेरी बेटी पागल है। यह झूठ मैंने सिर्फ अपनी बच्ची के लिए बोला था..... अपनी फूल सी बच्ची को पागलखाने भेजने की हिम्मत नहीं थी मुझमें...."

"तो क्या मुझे पागल बनाने की हिम्मत थी तुम सभी में...." मैं चीख पड़ा था ये शब्द सुन कर, "अपनी फूल सी बच्ची के सुखद भविष्य के लिए मुझे बलि का बकरा बना दिया आप सब ने....." मैं समझ नहीं पा रहा था कि आगे क्या बोलूँ?

मेरे शब्दों को सुन और क्रोधित रूप को देख कर सास ने मेरे पैर पकड़ लिए और गिड़गिड़ाते हुए बोली, "हम अपनी गलती मान रहे हैं बेटा! अब वह जैसी भी है... है तो तुम्हारी पत्नी ही...."

मेरे अलावा मेरे माता–पिता ने भी उन्हें न जाने क्या–क्या कहा था। कुछ दिनों तक मामला गरमाता रहा। दोनों ओर से रिश्तेदार एक–दूसरे को समझाने के लिए आते–जाते रहे। कुछ इसे धोखा मानते थे तो कुछ इसे भाग्य का लेखा। इस बीच साधना भी कुछ दिनों के लिए हमारे घर आ जाती। उसके माँ–बाप उसे छोड़ जाते और बाद में हमारे घर से कोई न कोई उसे छोड़ आता था।

इस बीच मुझ में एक परिवर्तन यह अवश्य हुआ था कि मेरा गुस्सा धीरे–धीरे कम होता चला गया और जब मैं बिल्कुल नॉर्मल हो गया तो साधना के बारे में ठंडे दिमाग से सोचता।

परिणाम यह हुआ कि बला की सुंदर साधना ने मेरे दिल में जगह बना ली और मैंने उस पागल लड़की को अपनी पत्नी स्वीकार कर लिया। क्योंकि मैंने भी तो अग्नि को साक्षी मानकर उसके साथ सात फेरे लिए थे। जिसके लिए अब मैं अपने आप को बराबर का गुनहगार मानने लगा था। क्योंकि मैं केवल उसकी सुंदरता पर मोहित हो गया था। क्यों नहीं उसके बारे में और अधिक जानकारी एकत्र की थी? शादी का संबंध पक्का होने से पहले ही।

जहाँ तक मेरी पत्नी साधना की सुंदरता का प्रश्न है। निःसंदेह ही वह बला की खूबसूरत थी। मासूस चेहरा। दूध जैसा सफेद रंग, कद भी मेरे कद के अनुरूप लगभग साढ़े पाँच फुट, बड़ी–बड़ी काली–काली आँखें जो काजल लगाने से ऐसी लगती थी। जैसे साधना के मुँह से बिना बोले ही ये आँखे सभी कुछ कह देंगी, मोती जैसे चमकते दाँत, हँसती थी तो फूल से झरते थे। भले ही वह उसकी पागलपन की हँसी थी।

उसकी एक और विशेषता थी कि वह एक अमीर घराने की इकलौती संतान थी। बस! एक यही कमी थी कि वह पागल थी। यदि वह पागल नहीं होती तो शायद इतनी सुंदर और अमीर घर की लड़की मेरे नसीब में नहीं होती। निश्चय ही उसके माता–पिता अपनी बेटी के लिए कोई सपनों का राजकुमार ढूँढ़ते। मेरे जैसे साधारण और अदने से लड़के के साथ शादी करने की वे सोचते भी नहीं।

मैंने जब साधना की पहली झलक देखी तो मन ने एकदम निर्णय ले लिया था। मुझे उनके घर–परिवार की शान–शौकत से कुछ भी लेना–देना नहीं था। जब साधना की माँ उसका हाथ पकड़ कर लाई थी। तुरंत ही उसे उसी प्रकार वापिस भी ले गई थी। तब ही मैंने और मेरे माता–पिता ने उसे देखा था। उसका कुछ भी नहीं बोलना सामान्य रूप से इसे शर्म ही माना था हम सभी ने।

इस प्रकार मेरी और साधना की शादी हो गई। उसके पागलपन का पता मुझे तब लगा। जब सुहाग–सेज पर जोर–जोर से अकारण ही हँसने लगी थी और लगातार हँसती ही रही तो मैंने उसे झंझोड़ सा दिया। इससे वह एकदम चुप तो हो गई, लेकिन अचानक ही वह मुझ से लिपट कर रोने लगी। उसके इस प्रकार रोने से मैं सकपका सा गया। मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि इस समय मैं करूँ तो क्या करूँ?

मैं सुहाग–सेज पर चुपचाप लेटकर साधना के व्यवहार के बारे में सोचते–सोचते न जाने कब सो गया। मुझे इसका पता ही नहीं चला। लेकिन जब सुबह आँख खुली तो देखा कि साधना बड़े ही इत्मीनान और प्यार से मेरे पैर के अंगूठे को चूस रही थी। शायद इससे ही मेरी नींद टूटी थी।

धीरे–धीरे सारे मोहल्ले में साधना के पागल होने की खबर फैल गई। माँ ने उसके माँ–बाप को खूब कोसा था। मेरे माता–पिता ने भी अपना सिर पीट लिया। साधना की ही तरह मैं भी अपने माता–पिता की इकलौती संतान था। उनके सारे के सारे अरमान धरे रह गए थे।

जब भी साधना हमारे घर आती तो मोहल्ले वाले चुप–चुप और छिप–छिपकर उसे देखने आते थे।

जब भी साधना पागलों जैसी हरकतें करती तो मैं गुस्से में भर कर सास–ससुर के पास जाता और अनाप–शनाप बक अपने मन की भड़ास निकालकर चला आता।

मेरी माँ ने स्पष्ट कह दिया, "मैं अपने बेटे की दूसरी शादी करूँगी.... उन सब ने हमारे साथ धोखा किया है... इसे हम सहन नहीं करेंगे...."

माँ के इरादे से पिताजी भी सहमत थे। केवल मैं ही ऐसा था कि इस बारे में कोई फैसला नहीं कर पा रहा था। इसका कारण शायद साधना की खूबसूरती, मासूमियत या मेरी उदारदिली थी। यदि वह पागल है तो इस सब में उस बेचारी का क्या दोष? मुझे अपनी माँ का उसके माँ–बाप को कोसना भी अच्छा नहीं लगता था मोहल्ले वाले उसे लुक–छिप कर देख कर हँसते तो मैं उन्हें धमका कर भगा देता था।

इसी बीच मेरा अन्यत्र तबादला हो गया। मुझे अपनी ड्यूटी पर जाना पड़ा। माँ पगली साधना को अपने पास रखने को तैयार नहीं थी। मजबूर होकर उसे मुझे अपने ही साथ ले जाना पड़ा। यहाँ आकर सब की नजरों में वह मेरी पत्नी थी। लेकिन पत्नी वाले सारे काम मुझे ही करने पड़ते थे। मैं ही खाना बनाता। पहले उसे खिलाता, बाद में खुद खाता था।

इतना ही नहीं। सुबह उठ कर उसके दैनिक कार्यों से लेकर दातून कराना, नहलाना, कपड़े बदलना जैसे कार्य भी मुझे ही करने पड़ते थे। वह चुपचाप एक आज्ञाकारी की तरह मेरे कहे अनुसार अपने सभी कार्य चुपचाप कर लेती थी। मैं भी संतुष्ट था कि यहाँ पर मेरे सहकर्मी अथवा आस–पड़ोस में मेरी पत्नी के पागल होने का किसी को पता नहीं था।

मैं उसको खाना वगैरह खिला कर घर को बाहर से ताला लगा कर ऑफिस चला जाता और शाम को आकर उसके साथ बच्चों की तरह खेलता था। वह भी एक बच्ची की तरह व्यवहार करती थी। यदि कभी उससे कोई गलती हो जाती और मैं भूल से उसे डाँट देता था तो वह रोने लगती थी। उसे चुप भी मुझे ही कराना पड़ता था। उसके साथ ऐसा व्यवहार करने में मुझे बहुत ही आनंद सा आने लगा था।

धीरे–धीरे साधना के पागल होने की बात घर से बाहर आ गई तो मित्रों ने मुझे इसके लिए शाबाशी दी कि एक पागल पत्नी के साथ मैं पति धर्म अच्छी तरह से निभा रहा हूँ। मेरी जगह यदि कोई और दूसरा होता तो वह उसको छोड़ कर दूसरा ब्याह कर लेता। यही कारण था कि मोहल्ले की बुजुर्ग औरतों के साथ अधेड़ आयु की औरतें भी मेरे साथ सहानुभूति रखने लगीं थी।

यदि कोई आदमी, औरत या बच्चा साधना को गलती से पागल कह देता था तो मुझे बहुत गुस्सा आता और मैं उन्हें दोबारा ऐसा न करने की हिदायत दे देता था। यह मेरा प्यार ही था जो साधना के खिलाफ कुछ भी जायज–नाजायज सुनने को तैयार नहीं होता था।

कभी–कभी मैं उसे शाम को हाथ पकड़कर घुमाने के लिए ले जाता। उसे नई जगह के बारे में बताता। वह भी आज्ञाकारी की तरह चुपचाप सुनती थी। उसे अपने हाथ से आइस्क्रीम खिलाता। कभी–कभी चाट भी खिलाता। इसका कारण शायद यही था कि मैं उसे अब मन की गहराईयों से चाहने लगा था।

इधर घर से माँ की चिट्ठियाँ लगातार आ रही थीं। जिनमें बस एक ही बात लिखी होती थी, "इस पगली को पागलखाने भेज दो या इसके माँ–बाप के पास छोड़ आओ। मैंने तुम्हारे लिए एक बहुत ही सुंदर लड़की देख रखी है।" लेकिन मैं उन चिट्ठियों का कोई जवाब नहीं देता था। क्योंकि साधना तो अब जैसे मेरी जिंदगी का हिस्सा बन चुकी थी।

एक शाम जब मैं ऑफिस समय के बाद घर के लिए चला तो मैंने अपनी जेबें टटोली। किसी भी जेब में घर की चाबी नहीं थी। मैं परेशान हो उठा और सोचने लगा कि चाबी कहीं खो तो नहीं गई। जब दिमाग पर जोर डाला तो याद आया कि आज सुबह तो घर का ताला लगाना ही भूल गया था। मुझे अपने आप पर गुस्सा आने लगा कि मैं ऐसी भयंकर भूल कैसे कर बैठा? अतः तेज कदमों से घर की ओर बढ़ चला। मन शंकाओं से भर गया था।

मैं तेज कदमों से चलता हुआ घर में घुसा और साधना को आवाज देने लगा। घर का कोना–कोना देख लिया, लेकिन साधना कहीं भी नहीं थी। शीघ्रता से बाहर निकलकर चारों ओर देखा तो वह कहीं भी दिखाई नहीं दी। किसी से इस बारे में पूछना भी निरी बेवकूफी ही थी। मैं परेशान होकर उसे ढूँढ़ने निकल पड़ा। रास्ते में मुझे दो–एक हितैषी मिले तो मैंने उन्हें सच्चाई बताई। वे भी मेरी मदद के लिए बढ़ चले।

काफी आगे चलने के बाद जब मेन रोड पर आया तो देखा कि एक लड़की दूर सड़क के पार पुलिया पर बैठी इधर–उधर देख रही है। मैंने गौर से देखा तो वह साधना ही थी। हाँ साधना ही थी। मैं भी लगभग दौड़ते हुए कदमों से उसकी ओर बढ़ चला। दोनों के बीच की दूरी अब बहुत कम रह गई थी। और हम दोनों सड़क के दोनों ओर थे।

मैंने पास पहुँचकर उसे आवाज दी, "साधना. ..." अपना नाम सुनकर साधना ने मेरी ओर देखा तो वह उतावली हो पुलिया से उठ दोनों हाथ फैला कर मेरी ओर दौड़ी। सड़क पर ट्रैफिक काफी था। मैंने उसे रुकने के लिए जोर से कहा। क्योंकि एक ओर से एक ट्रक बहुत तेजी से आ रहा था।

ट्रैफिक के शोर में उसने आवाज नहीं सुनी अथवा मुझसे मिलने की चाह में वह बिना रुके सड़क पार करने के लिए दौड़ पड़ी, लेकिन हाय रे दुर्भाग्य। इससे पहले कि साधना सड़क पार कर पाती कि तेजी से आते हुए ट्रक ने उसे अपने पहियों तले कुचल दिया और एक चीख के साथ उसका शरीर निर्जीव हो गया। साधना की लाश को देख मैं उससे पागलों जैसा लिपट गया। मैं अपने होश खो बैठा। जब मैं होश में आया तो अस्पताल में था।

समाचार मिलने पर मेरे माता–पिता और साधना के माता–पिता सभी आए, लेकिन उनके आने की मुझे कोई खुशी नहीं थी। मेरी उदासी देख मेरी माँ भी उदास हो गई।

जब मैंने साधना को अग्नि के हवाले किया तो मेरा दिल ही जानता है कि मैं कितना टूटा हुआ था अंदर से। घर आकर मैंने उसकी तस्वीर को अपने सीने से लगाया। तस्वीर में उसकी आँखें ऐसी लग रही थी जैसे वे अभी बोल उठेंगी। रात को सोते में मुझे ऐसा लगता कि साधना अभी बैठी मेरे पैर का अँगूठा चूस रही है। मेरी पूर्व पत्नी साधना की कहानी सुनकर पत्नी विभा के मन के संदेह तो मिट गए थे। लेकिन मेरा मन एक टीस से भर उठा था। मेरा दर्द आँसुओं के रूप में बाहर आने को छटपटाने लगा था। इससे पहले कि मेरी आँखों से आँसू बाहर निकलते। मेरी बेटी साधना रुआँसे स्वर में बोल उठी, "पापा....! इसीलिए आपने मेरा नाम साधना रखा है...."

"हाँ बेटे....." मैं अपने आँसू रोकते हुए बोला।

विभा की आँखों में भी आँसू आ गए। आगे बढ़ कर उसने साधना की तस्वीर मेरे हाथों से ले ली और उसे दीवार पर लगा दिया।

– पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदन गाँव, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश–480001

❑❑❑

ऑटो खाली है

मनीष कुमार सिंह

यह शहर शुरू से तो ऐसा नहीं होगा। क्या पता कि यह शुरू से ही ऐसा था। मेहताब इस प्रकार की बातें बेहद आशावादी बनकर सोचता तो अगले ही पल आशाओं को क्षणभंगुर होते देखता। शहर पहुँचने पर कुछ रातें रेलवे प्लेटफार्म पर बितानी पड़ी थीं। बाद में एक कमरा उसके बूते के हिसाब से मिल गया। फिर ऑटो चालक बनने की प्रक्रिया को पार करने में वह कामयाब रहा।

"ऑटो....।" उसने देखा कि सड़क के किनारे धूप का चश्मा लगाने के बाद भी अपनी हथेली को आँखों के ऊपर छज्जे की तरह इस्तेमाल करती हुई एक युवती रुकने का इशारा कर रही है। "नेहरू नगर चलेगा"? "जी मैडम।" उसने मीटर नीचे किया। युवती पहले ऑटो के पीछे गई और अपने मोबाइल से नंबर प्लेट की फोटो खींची। मेहताब ने उसके बैठने पर ऑटो स्टार्ट की। शीशे में उसने देखा कि युवती के कान पर मोबाइल लगातार चिपका हुआ है। कुछ शब्द जो सुनाई दे रहे थे वे थे– ममी डोंट वरी, राहुल तुम बड़े शक्की हो। ऑफिस में कल प्रेजेंटेशन है, वगैरह।

सहसा युवती चिल्लाई। "अरे क्या करता है तू। इधर से मुड़ना था।" मेहताब की समझ में नहीं आया कि मोबाइल पर इतनी मशरूफ होने के बावजूद वह सतत जाग्रत कैसे है।

"वहीं तो जा रहा हूँ मैडम। फिक्र न कीजिए इधर से भी रास्ता उतना ही पड़ेगा। पहली बार नहीं आया।" गंतव्य तक पहुँचती युवती ने उसे किराया थमाया और निस्संग भाव से चल दी। मेहताब को उसका तू संबोधन अखरा। उसने तो कुछ उलटा बोला नहीं और न ही किराए को लेकर झिकझिक हुई फिर यह बदजुबानी क्यों? ऑटो वाले गलत बोले तो उन्हें सभी बुरा कहेंगे लेकिन पब्लिक कुछ भी कहे तो चलेगा। अभी पिछले हफ्ते की बात थी। पुरानी दिल्ली के पास उसकी जान–पहचान वाले ऑटो की एक मोटरसाइकिल से टक्कर हो गई। गलती मोटरसाइकिल वाले की थी जो जबरन बीच में आ गया। लेकिन उस पर सवार दो युवकों ने ऑटो वाले को रोडरेज में मारपीट कर चोटिल कर दिया। हमारे नंबर प्लेट की फोटो खींच लेते हैं लेकिन उन्हें कौन पकड़ेगा?

लौटते वक्त वह मार्केट की ओर मुड़ गया। चाय पीने की गरज से एक स्टॉल पर रुका। गर्मागर्म चाय की चुस्की लेते हुए उसका ध्यान सामने पटरी पर देवी–देवताओं की तस्वीरों पर गया। साईबाबा, गणेश जी, दुर्गा माता से लेकर ईसामसीह का सलीब वाला चित्र, चाँद–सितारा, फिल्मी हीरो–हिरोइन सभी के चित्र मौजूद थे। जिसे जैसी जरूरत हो वह वैसी तस्वीर खरीद सकता है। उसकी गाड़ी में किसी का चित्र नहीं है। उसका नाम भी कैसा रखा गया है– मेहताब। लोग समझेंगे की मुसलमान है और तो और यह भी समझ सकते हैं कि बंगलादेशी है। यह बात वह

किस–किस को बताएगा कि वह मेहताब सिंह है। गाँव में जानने वाले हैं। यहाँ भले अजनबी हो। किसी दिन दंगे में घिर गया तो कैसे अपनी पहचान करवाएगा। गाँव में जातीय तनाव उसने खूब देखे हैं। लेकिन दंगा–फसाद शहरी विकृति है।

"आज कितनी कमाई की भाई?" रेलवे स्टेशन के पास जमा चार–पाँच ड्राईवर एक–दूसरे को टटोल रहे थे। "खाने भर निकाल लेता हूँ।" एक ने कहा। "और पीने के लिए उधार से काम चलाते होंगे।" दूसरे को ठिठोली सूझ रही थी। "यार ओला और उबेर के जमाने में हम टिके हुए हैं यह कम बड़ी बात है। घर में एकमुश्त रकम बीबी को देने पर वह अंदर आने देगी।" मेहताब लगातार विजातीय की भाँति वार्तालाप से पृथक था। पर सुनकर उसे भी हँसी आ गई।

"मेहताब तेरी कोई सहेली बनी की नहीं अब तक?" किसी ने उसे अलग खड़ा देखकर हँसी–मजाक में शामिल करने की गरज से पूछा। संकोच शायद कर्ण के कवच–कुंडल की तरह सहजन्मा था। बस मुस्कुराकर रह गया। "घबरा मत गाँव से माँ–बाबूजी देखने नहीं आ रहे हैं।" बात हँसी में कही गई थी लकिन गाँव की बात से उसे याद आया कि पैसे उधार लेकर फसल बोई गई है। सब कुछ ठीक रहा तो उधार चुकाने के बाद भी कुछ पैसे हाथ में बच जाएँगे। इधर वह हर महीने कुछ न कुछ गाँव भेज रहा है। माँ–बाप कहते हैं कि खाने पर ध्यान देना। माँ एक बात की बारंबार आवृत्ति करती–चढ़ता लहू है, भूख ज्यादा लगती होगी। बाबूजी का कहना था कि दिनभर सड़क पर गाड़ी दौड़ाने में बड़ी मेहनत है। सावधानी से चलना। अखबार में रोज ऐसी–वैसी खबरें पढ़ने को मिलती हैं। वह मन ही मन एक विद्रूप हँसी हँस पड़ा। सच कहते हैं वे। यहाँ सड़क पर खतरा या साफ–साफ कहें कि मौत घूमती है। गाँव में पैसा नहीं है। काम की कमी है। यहाँ काम करने वाले के लिए काम है। खाने–कमाने के अलावा चार पैसे घर भेजे जा सकते हैं।

एक रोज उसकी गाड़ी किसी कार से जरा सा टकरा गई। कारवाला अपनी गाड़ी पर डेंट देखकर आपे से बाहर हो गया। उसने मेहताब का कॉलर पकड़ लिया। "हमारी गलती कैसे थी साहब? आपने कोई इंडिकेशन नहीं दिया था।" एक–दो थप्पड़ खाने के बाद उसने भी उस सफेदपोश का गला थाम लिया। शारदीय आकाश समान शांत रहने वाला मेहताब कालबैशाखी सदृश्य बेकाबू हो गया। पुलिस आई। वह उसे हवालात ले गई। एक बुजुर्ग ऑटो वाला अपने कुछ साथियों के साथ आया। बातचीत, चेतावनी और सुलह–समझौते की प्रक्रिया के बाद उसे छोड़ दिया गया। मेहताब ने घर पर बात की। अनपढ़ और सरल पिता ने दृढ़ता से कहा। बेटा लव–कुश अकेले रामचंद्र की लंका जीतने वाली फौज से भिड़ गए थे। कलेजे में हिम्मत होनी चाहिए। दुनिया में जीना है तो मुँहदुबर होने से काम कैसे चलेगा? यह घर तुम्हारा है। तुम जब चाहो आ सकते हो लेकिन डर के गाँव लौटने की जरूरत नहीं है।

दब्बूपन की हद तक सीधे पिता का उवाच सुनकर वह दंग था। पिता जानते थे कि शहर में औलाद के लिए नूतन संभावनाएँ बंकिम चितवन के साथ मुस्कुरा रही हैं। जबकि गाँव में तरक्की के दरवाजे पर प्रवेश निषेध की तख्ती दिखाता लाठी लिए द्वारपाल खड़ा है। और माँ...। घर के हर डिब्बे–कनस्तर को धूल–मिट्टी में खेलकर लौटे अपने बच्चे की देह की तरह प्यार से पोछने वाली माँ क्या उसे कुछ हो जाए तो सहन कर लेगी? बाबूजी हालात ज्यादा बेहतर समझते हैं। एक समय उसका गाँव ही नहीं बल्कि पूरा जिला सूबे में धान के मीठे कटोरे में रूप में मशहूर था क्योंकि वहाँ धान के साथ ईख भी खूब होता था। समय के साथ सब कुछ बदला। हर दूसरे घर का कम से कम एक सदस्य बाहर गया है। जब पिता को शास्त्रीय और लौकिक दृष्टि से उसका शहर में रहना उचित लग रहा है तो यही सही। मानसरोवर में विचरण करने वाला सौम्य हंस अगर छुरी जैसी पैनी चोंच वाले मछलीमार किंगफिशर में तबदील हो जाए तो समझिए कि सामने वाले की गत बना देगा।

दिनभर ऑटो चलाते हुए कई लोगों और कई तरह के व्यक्तियों से वास्ता पड़ता है। बाहर

से आए अनजान शहर में सकपकाए से लोग जो किराए को लेकर कुछ बोलने में डरते हैं। कॉलेज के लड़के–लड़कियाँ, मार्केट से सामान के थैले अस्त–व्यस्त ढंग से लिए घरेलू महिलाएँ और रेलवे स्टेशन पहुँचने की जल्दी में यात्री।

गाँव के आदमी को शहरी पोशाक अजीब लगते हैं। वह आदमियों से निपट सकता है। बहस और हाथापाई में कुछ खरोंचे ही आएगी ना। लेकिन बुरा बोलने और गलत समझने वाली युवतियों व औरतों से कैसे निपटे? मेहताब किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता। जो भी समझ में आए दे दीजिए मैडम से लेकर मीटर यही दिखा रहा है तक उसके बोल सीमित रहते।

"तुम लोग कीड़े हो।" एक रोज प्रसाधनों से सराबोर आधुनिका उसकी पहचान के ऑटो चालक वाले पर जोर से चिल्लाई। उसने बाद में सुना कि औरत ने ऑटो वाले पर हाथ उठा दिया था। बदले में उसने भी उस पर हाथ छोड़ दिया। भीड़ इकट्ठा हो गई। युवती ने कॉल करके पुलिस बुला ली। लोगों से ऑटो वाला बोला। "जाने दीजिए बाबूजी। हम लोगों के साथ यह पहली बार नहीं है। हम लोग किसी और मिट्टी के बने हैं।" मेहताब को जुगुप्सा हो आई। क्यों हमारे बारे में ऐसी धारणा है। शायद लड़की का दीर्घपोषित संशय ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा होगा। लेकिन ऑटो वाले की भी गलती रही होगी। फिर उसे लगा कि अभी बहुत कुछ सीखने की जरूरत है। छुई–मुई बनकर कब तक रहेगा। अपने तरफ ननद–भाभी, साली के रूप में परिहास सुख देने वाली स्त्रियाँ थी तो कुटुंब में नियमपूर्वक व्रत–उपवास करने वाली बुजुर्ग चाची–ताई, दादी भी थीं। इस बदले परिवेश में बदलना लाजिमी है। लोग कीड़ा समझे तो यह उनकी सोच है। पाँवों तले कुचले जाने वाले कीड़े सृष्टि के सभी जीवों के विनाश के बाद भी बचे रहेंगे।

"संत बनने से कोई फायदा नहीं है बच्चा।" उसे पुलिस के चंगुल से छुड़ाने वाले बुजुर्ग ऑटो वाले ने समझाने वाले अंदाज में कहा। "यहाँ तुम्हें एक से एक लोग मिलेंगे। बिगड़ैल, मजबूर, खुराफाती और...।" बड़ी मूँछों और बेतरतीब दाढ़ी वाले एक चालक ने पूछा। "कितना टाइम हो गया तुझे आए हुए? अब तक तुझे बन–बिलाव से बढ़ते–बढ़ते बाघ हो जाना था।"

"हमें गलत कपड़े पहनने वाले खराब लगते हैं।" वह सोच कर बोला। लेकिन इतना सोचने के बाद भी क्या बोल गया वह। एक–दो चालक तो उसे घूरने लगे। उसका ध्येय छिछली आधुनिकता का सत्यनाशी पक्ष दिखाना था। मजमे को लगा कि वह एक साथ भोग और मोक्ष की कामना कर रहा है।

"देखो यार ज्यादा पढ़े–लिखे हम भी नहीं है।" एक ने आत्मीयता से उसके कंधे पर हाथ धरा। "लेकिन गाँव–देहात में लोग एक–दूसरे से जैसे पेश आते हैं जरूरी नहीं कि यहाँ भी वह सब चले। इन सबकी आदत डालनी पड़ेगी। जो आदत नहीं डालेगा उसे जीना नहीं आएगा।"

तो क्या बदलने की जरूरत उसे है? मेहताब फिलॉसफर ज्यादा लगता है। यहाँ एक दुनियादार की जरूरत है। "इधर घूँघट वाली तूझे नहीं मिलेगी बेटा।" उम्रदराज हमपेशा ने पुनः कहा। "ताऊ सही कह रहे हो।" एक ने टुकड़ा जोड़ा।

"और सही न भी कह रहा हूँ तो बड़े की बात सुनते हैं। फायदा ही होगा।" बुजुर्ग बोला। हँसी–ठ्ठठा करने वाले मजमे की ओर मुखातिब होकर बुजुर्ग ने कहा। "मजा लेना मँहगा पड़ सकता है।"

"कमाल करते हैं आप चचाजान। एकाध कंकड़ मिलने के डर से क्या कोई छप्पनभोग का स्वाद नहीं चखेगा?" एक ने मजाक में कहा। मेहताब ऐसा बगुला भगत नहीं जो अर्घ्य देती रमणियों से नयनाचार जैसा कृत्य करे। यहाँ खाने–कमाने आया है। बेवजह की बातों में उलझने नहीं।

"हमारी तरफ औरतें खेती–बारी, खाना बनाना, खाली बैठकर चुगलखोरी और गपबाजी करना सब करती है लेकिन परदा भी है।" बुजुर्ग चालक बोला। फिर उसने तफसील से बताया कि कैसे भाय–भाय करने वाले मार्ग उच्च घनत्व के यातायात कोरिडोर में तबदील हो गए।

पेट्रोल–डीजल के भाव फिर बढ़ गए। एक सामान्य चिंता जाहिर की गई। "मेरा एक जानने

वाला है। कहता है कि पेट्रोल–डीजल सब पेट्रोलियम से बनता है। सबसे पहले उसके गंदे सामान से सड़क बनाने के लिए तारकोल बनता है। फिर डीजल बनेगा और फिर पेट्रोल। अजी ढेर सारे आइटम एक–एक करके निकलते हैं। जैसे हम मुर्गे की टाँग, कलेजा, सर सब खाते हैं वैसी बात यहाँ भी है।" मेहताब ने अपने ज्ञान की पूरी गगरी सबके ऊपर उड़ेल कर दम लिया। भई तू तो हम सबमें सबसे जानकार निकला। सबने तारीफ की।

इस प्रकार के संवाद आंचलिक परिदृश्यों और महानगरीय ध्रुवांतों के मध्य का सेतु बन जाते। सभी पेट की खातिर इधर आए हैं लेकिन सच तो यह है कि जिंदगी जन से गुलजार होती है धन से नहीं।

रात को लौटते हुए करीब दस बज गए होंगे। वह डेरे पर लौटने की जल्दी में था। पान की एक गुमटी देखकर रुक गया। सिगरेट की तलब लगी थी। यह आदत यहीं आकर लगी थी। गाँव में छिप कर एकाध बार बीड़ी पी थी। पास के बस स्टॉप पर एक युवती बैग लिए बस के इंतजार में खड़ी थी। तीन–चार शोहदे उसे लक्ष्य करके फिकरे कस रहे थे। चूँकि आसपास लोग नहीं थे इसलिए उनके हौसले बढ़ते जा रहे थे। खतरा भाँपकर लड़की वहाँ से चल दी। मेहताब बिना सिगरेट लिए अपनी ऑटो पर बैठकर चल दिया। पीछे से वे लोग चले आ रहे थे। "ऑटो खाली है मैडम।" वह युवती के बगल में ऑटो रोककर बोला। घबराई लड़की ने क्षण भर के लिए उसे भी उन शोहदों का साथी समझा। वह तेजी से दूर जाने लगी। लेकिन पीछे आती आफत से बचने के लिए वह त्वरित बुद्धि से काम लेकर उसके ऑटो में बैठ गई।

थोड़ी दूर निकल जाने पर वह बोला। "हर ऑटो वाला ऐसा नहीं होता है मैडम जी। जब हम किसी औरत और बुजुर्ग को बैठाते हैं तो उनकी हिफाजत की जिम्मेवारी हमारी है। छोटी जगह से शहर में आकर मैं भी काफी बदला हूँ। यह देखिए हमने ऑटो में देवी–देवताओं की तस्वीर नहीं लगाई है।" वह स्टियरिंग के पास रखी फोटो दिखाने लगा। "यह मेरे माँ–बाबूजी और छोटी बहन की फोटो है। गलत बात ख्याल में न आए इसलिए इनकी सूरत अपने सामने रखता हूँ।"

युवती निःशब्द उसकी बातें सुनती रही। उसकी बताई जगह पर मेहताब ने ऑटो रोक दी। बिना मीटर पर ध्यान दिए उसने हिसाब से ज्यादा रकम निकालकर उसे पकड़ाने के लिए हाथ बढ़ाया। "इस बार पैसे नहीं लूँगा मैडम। आपको ऑटो में किराए की खातिर नहीं, किसी और वजह से बैठाया था।"

उसने ऑटो आगे बढ़ा दी।

– एफ–2, 4/273, वैशाली, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश–201010

❑❑❑

पिता

रमेशचंद्र पंत

(एक)

ओ, पिता
हमारा आना आपके जीवन में
जैसे बोझ का आना था
जिसे ताउम्र
ढोते रहे आप खुशी–खुशी।

(दो)

जब मैं
किलकारियाँ मारता था।
तो जैसे
हजारों–हजार
स्वर्गों का सुख
दीपित हो उठता था
आपके चेहरे पर
आपके रोते ही
बेचैन हो उठते थे आप
कहीं भीतर आत्मा तक।

(तीन)

उँगली पकड़कर
जब चलना सीखा मैंने
तो आपको लगा
जैसे सात समुंदर
लाँघ जाने की
शक्ति आ गई है मुझमें
और आप
भर उठे थे
एक अनिर्वचनीय सुख से।

(चार)

क्या–कुछ नहीं किया आपने
हम सबके लिए
समय के साथ–साथ
झुक गए आपके कंधे
और कमर भी
लेकिन आपने
कभी उफ़ तक नहीं की।

(पाँच)

हमारे आने के बाद
आपने–अपने लिए
कुछ भी तो नहीं किया
आपके दृष्टि–केंद्र में
बस हम–ही–हम थे
और थी
हमारे भविष्य की चिंता।

(छह)

हमें जरा–सी भी
तकलीफ होने पर
निकल जाती थी आपकी जान
और दिन–रात
एक कर देते थे
जब तक नहीं हो जाते थे हम ठीक।

(सात)
लेकिन आपको क्या मिला?
उम्र के अंतिम पड़ाव पर
बहुत कमजोर हो गए थे आप
रात बैठे–बैठे ही काट देते थे
दमा जो हो गया था
ऊपर से आपका खाँसना
खलल डालने लगा था दिनचर्या में।
(आठ)
आप बस असहाय भाव से
देखते रहते थे
कहते कुछ नहीं थे
न जाने कैसा दर्द
उभर आता था
आपके चेहरे पर रह–रह कर।
(नौ)
आपकी उपस्थिति
हमें भार–सी लगने लगी थी
पत्नी 'ओल्ड एज होम' की
बात करने लगी थी
पेंशन तो मिल ही रही है
कुछ देना भी नहीं पड़ेगा।
(दस)
असमंजस में था मैं
आत्मा गवाही नहीं दे रही थी
ऐसा करने के लिए
लेकिन एक दिन आप
खुद ही चले गए थे
न जाने कहाँ
मैंने चाहकर भी ढूँढने की
कोशिश नहीं की
ओ पिता क्षमा करना मुझे।
(ग्यारह)
नहीं जानता
कैसी विवशता थी यह मेरी
आपकी दुआ और आशीषों से ही
जी रहे थे हम वैभवपूर्ण जीवन
लेकिन मौन रहे
हाँ, इतना जरूर है एक–न–एक दिन
बूढ़ा होना है हमें भी ओ पिता!

– विद्यापुर, द्वाराहाट, अल्मोड़ा, उत्तराखंड–263653

❑❑❑

चाह

हेमंत गुप्ता

वह नहीं जानती
स्वयं को अभिव्यक्त करना
व्यक्तिगत स्वतंत्रता का महत्व
समाज के सापेक्ष
अपना स्थान
वह
कुछ नहीं जानती
उसने
कर दी है व्यतीत
अपने बचपन से
अधेड़ होने तक की उम्र
घर का
चूल्हा–फूँकने
आँगने–बुहारने
और पोछने में
मगर
वह चाहती है
अपनी बिटिया को पढ़ाना
बहुत–बहुत पढ़ाना
ताकि वह
घर से बाहर
हो सके मुखर
अभिव्यक्त हो सके
उसका व्यक्तित्व संपूर्णतः
जान सके
स्वतंत्रता का महत्व
कर सके
समाज में
अपना स्थान सुनिश्चित
बना सके
अपनी अलग पहचान
खड़ी हो सके
अपने पाँवों पर
इस नारी–शोषक
पुरुष–प्रधान समाज के
विरुद्ध
खम ठोक कर।

ए-101, जयश्री विहार, घेगड़ा पुलिया के पास, कैथून रोड, कोटा (राज़)–324003

❑❑❑

तो भी क्यूँ

राम जैसवाल

मेरे वर्तमान को
बार–बार ही
मृत अतीत की भस्म
अनिवार्य वस्त्रों की
तरह
आवृत्त कर लेती है,
मैं
अपने अतीत से
अग्रसर वर्तमान नहीं हूँ,
अतीत से उपेक्षित
समय हूँ,
मेरे पास इस छण
वर्तमान
के अतिरिक्त
अतीत का
कुछ भी नहीं है,
तो भी क्यूँ, बार–बार,
वर्तमान के दरवाजों पर
अतीत के चेहरे
मेरे मन को राख
उढ़ाने आते हैं,
अतीत
कितनी ही राख
मेरे वर्तमान को पहनाए,
मैं
संन्यासी नहीं बन सकता,
विवश हूँ,
अभी भी, वर्तमान की कारा में
मेरा मन
छद्म संबंधों के
संबोधनों में
अपनों के चेहरे
तलाशता रहता है।

– 'कला–लक्ष्मी सदन', न्यू कॉलोनी, रामगंज, अजमेर–305003

❑❑❑

अनूदित खंड
ओड़िया कहानी

चाँदनी रात की कहानी, खत्म नहीं हुई

तरुणकांति मिश्र

अनुवाद : एनी राय

माँ ने रसोईघर से ही बड़े प्यार से आवाज़ लगाई, "बच्चों आ जाओ, खाना निकाल चुकी हूँ।"

माँ जब पहले खाने के लिए बुलाती थी उसकी आवाज़ में इतनी मिठास नहीं होती थी। उल्टा ज़ोर से चिल्लाकर कहती, "जल्दी से आ जाओ खाना निकाल चुकी हूँ" या फिर कहती थी "बंद करो अपना शोर–शराबा और चुपचाप खाने के लिए आ जाओ।"

बच्चे मतलब हम तीनः बनु चाचा, पिंकी दीदी और मैं। उस समय अगर बाबूजी दुकान से आ चुके होते तो वह भी।

आँगन में साँझ की बत्ती अभी बुझी ही नहीं, चाँद, फिर भी बनु चाचा के कत्थे के पेड़ की टहनियों के बीच लटका हुआ है। खाने पर आने के लिए माँ आवाज़ लगा रही थी।

इतनी जल्दी हम खाना नहीं खाते लेकिन आज हमें जल्दी सो जाना होगा। तड़के सबेरे जो उठना है। कल हमें इस घर को छोड़कर किसी दूसरी जगह जाना है।

माँ ने फिर से आवाज़ लगाई– "बच्चों आ जाओ खाना निकाल चुकी हूँ।"

हम सभी बैठने ही वाले थे कि मुझे अचानक कुछ याद आया।

दीदी।

क्या बे?

तूने फिर से मुझे "बे कहा?"

गलती हो गई। मुँह से निकल गया। क़सम खाती हूँ अब नहीं कहूँगी।

चल मेरे साथ।

मैं आगे–आगे जा रहा था और मेरे पीछे पिंकी दीदी। हम दोनों ने पाँच केले के पत्ते लाकर धोए, उसके बाद रसोईघर के सामने के चबूतरे पर खाने के लिए बैठ गए। उसमें से एक पत्ता बनु चाचा का, एक पिंकी दीदी का और एक मेरा। बचे हुए पत्ते पापा और माँ के लिए।

रोज़ हम केले के पत्ते में नहीं खाते। लेकिन आज अलग बात थी। सारा बर्तन पैक हो चुका था। पलंग, अलमारी, कपड़े पहले से ही पैक हो चुका था। जैसे–तैसे आज की रात निकालनी थी।

बनु चाचा प्लास्टिक ग्लास में सबके लिए पानी लेकर आए। हम माँ के इंतजार में बैठे हुए थे।

माँ ने आवाज़ लगाई– "सुनिए, खाना लगा रही हूँ।"

पास के कमरे से पापा ने वैसे ही चटाई पर लेटे–लेटे जवाब दिया– "मैं नहीं खाऊँगा। भूख नहीं है।"

मुझे कुछ ग़लत–सा लग रहा था। दिनभर आज पापा घर पर हैं। दुकान भी नहीं गए। भाग–दौड़ करके सामान पैक किया। दोपहर को भी कहा था खाने का मन नहीं है। अब भी कह रहे हैं भूख नहीं है।

मैं जानता हूँ पापा क्यूँ दुखी हैं।

माँ ने कहा "आज ज़्यादा कुछ बनाई नहीं, सिर्फ चावल और आलू की भुजिया है, उसी से काम चला लेना।

खाने के मामले में पिंकी दीदी के सौ नख़रे। यह नहीं खाना, वह नहीं खाना। पराँठा बने तो कहेगी पूड़ी खानी है, पूड़ी बनी तो कहेगी धोकले खाने हैं। आम की चटनी खाकर कहेगी ज़्यादा मीठी है, आम का आचार दो तो कहेगी ज़्यादा खट्टा है।

लेकिन आजकल वह भी किसी चीज़ में कोई नख़रे नहीं कर रही है। जो भी दो चुपचाप खा लेती है। माँ जो भी बनाती है खूब तारीफ करती है।

खाना खाती हुई पिंकी दीदी ने कहा, "माँ, आलू की भुजिया खूब अच्छी बनी है।"

पास आकर माँ ने पूछा, "और चाहिए?"

दीदी ने कहा, "नहीं, बहुत है। उसे भी मत दो, उसका भी बहुत है।"

पहले की बात होती तो पिंकी दीदी मना नहीं करती। दो–दो और भी दो। इतना भर–भर के आइसक्रीम लेगी, चिकन लेगी, खीर लेगी और बिना खाए सब छोड़ती थी।

लेकिन आजकल वैसा नहीं कर रही है। आजकल घर पर भी इतना सारा खाना नहीं बनता, खाना बनाने के लिए पांडव भैया भी नहीं हैं। माँ खुद खाना बनाती हैं। कभी–कभार खुद बर्तन भी धोती हैं। काफ़ी दिनों से कपड़े भी खुद साफ करती हैं।

"केक आधा खाकर क्यूँ फेंक दिया।" अभी कुछ दिन पहले मेरे जन्मदिन पर पिंकी दीदी मेरे ऊपर ज़ोर से चिल्लाई थी।

पिछली बार मेरा जन्मदिन 'अर्किड' होटल में मनाया गया था। दो सौ के करीब लोग आए थे, मुझे अच्छे–अच्छे गिफ्ट मिले थे, "हैप्पी बर्थडे टू शिपुन" कहकर सभी ने मुझे बधाई दी थी।

इस बार मेरा जन्मदिन घर पर ही मनाया गया। किसी को नहीं बुलाया गया था। सिर्फ मामा, मामी, बनु चाचा के अलावा उस दिन कोई नहीं आया था। पापा मेरे लिए सिर्फ एक टी–शर्ट लाए थे जो मुझे पसंद भी नहीं आया।

"केक आधा खाकर क्यूँ फेंक दिया?" दीदी ने पूछा था।

मैंने कहा, "केक बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा। अजीब–सा स्वाद था।"

मैंने जैसे कुछ बुरा बोल दिया हो, मेरी बात सुनकर दीदी चौंककर माँ–पापा की ओर देखने लगी। माँ–पापा किसी काम में उलझे हुए थे। उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी थी।

दीदी हमेशा मुझे यह हिदायत देती थी, "देख, खाना बर्बाद मत कर, पेन मत खोना, नए जूते के लिए जिद्द मत करना, आइसक्रीम के लिए जिद्द मत करना, पंखे ज़्यादा मत चलाना।"

"पंखे कैसे ना चलाऊँ! पहले तो ए. सी. था, अब पंखें भी ना चलाऊँ तो पढ़ाई कैसे करूँ?

दीदी समझाने की कोशिश करती थी कि अब पापा के पास पैसे नहीं है।

"अगर पैसे नहीं है तो दुकान में ज्यादा–ज्यादा सामान क्यूँ नहीं बेचते?"

"लॉस हो रहा है।"

"लॉस? मतलब?"

मैं समझ गया लॉस का क्या मतलब है।

लॉस का मतलब ग़रीबी। हम ग़रीब हो चुके हैं।

तीसरी कक्षा से जब चौथी कक्षा में गया, मतलब साल भर में देखा घर का बहुत कुछ बदल चुका है। अब हम छुट्टियों में पुरी या बैंगलोर क्या यहाँ तक कि नंदन कानन भी नहीं जा रहे हैं। हमारी गाड़ी बिक चुकी है, फ्रिज कब से खराब है। लेकिन अभी तक नया फ्रिज नहीं लाए, रही मेरे जन्मदिन की बात वह तो पहले बता चुका हूँ।

चार महीनें पहले पांडव भैया के आँखों से आँसू निकल आए। उन्हें देखकर माँ की आँखों से भी थोड़े आँसू छलक आए।

बाबूजी ने कहा–नहीं पांडव, तुम गाँव चले जाओ। अब तुम्हारा यहाँ रहना मुश्किल है।

पांडव भैया ने कहा था– "नहीं मामा जी, (एक ही गाँव के होने के कारण वह बाबूजी को मामा बुलाते थे) ऐसे मत कहिए। जैसे–तैसे मैं आपके यहाँ गुज़ारा कर लूँगा। मुझे कोई दिक्कत नहीं है।"

"नहीं पांडव। तुम गाँव चले जाओ। तुम्हारे आठ महीने की तनख़्वाह बाकी है, देने में मैं लाचार हूँ, ऊपर से घर का खर्चा भी चलाना मुश्किल हो रहा है, घर में एक बंदा रहने से....।

पांडव भैया ने अपने आँसू पोंछे। उसके बाद माँ, पापा के पैर छूकर अपना पुराना लोहे का बक्सा लेकर घर से निकल गए। उस बक्से में पापा के कुछ पुराने पैंट–शर्ट, माँ की कुछ पुरानी साड़ियाँ और मेरा एक पुराना खिलौना था।

पहले की बात होती तो मैं अपने पुराने खिलौने के लिए सर पीट लेता, बहुत रोता लेकिन ना जाने मेरे मन में क्या आया, मैं चुप रहा।

पांडव भैया को ऐसे अकेला दुखी होकर जाते देखकर माँ की आँखों में आँसू आ गए। उन पर घर के काम का बोझ ज़्यादा पड़ेगा यह सोच कर नहीं, माँ के लिए पांडव भैया मेरे जैसे ही थे।

पिंकी दीदी ने और एक बार कहा, "माँ, आलू की भुजिया बहुत अच्छी बनी है। नहीं, नहीं, मुझे और नहीं चाहिए, शिपुन को भी नहीं चाहिए।"

हम दोनों भाई–बहन इशारों में बात करते हैं जो किसी को समझ नहीं आती। दीदी ने इशारे में कहा, "आलू की भुजिया मत माँगना। आलू की भुजिया अब खत्म हो चुकी है।

खाना खाकर आँगन में हाथ धो रहा था कि मेरी नज़र आसमान पर खिले हुए चाँद पर पड़ी। बहुत ही सुंदर। मुझे लगता है हमारे आँगन में खिला चाँद सिर्फ हमारा है किसी और के लिए नहीं बल्कि पुरी के समंदर पर दिख रहे चाँद, बगीचे से दिख रहा चाँद, स्टेशन पर दिख रहा चाँद, सभी अलग हैं।

मुझे दुख लगा कि इस आँगन को, इस चाँद को छोड़कर हम हमेशा के लिए चले जाएँगे। फिर कभी वापस नहीं आएँगे।

बनु चाचा जी के जन्म से पहले यह घर हमारे दादाजी ने बनाया था। बाबूजी ने इस घर में थोड़ा–सा मरम्मत करके इसे और भी सुंदर बना दिया था, नए कमरे, नए बगीचे, नई बालकोनी। बहुत ही सुंदर था हमारा घर।

कुछ दिनों से माँ कह रही थी हमें यह घर छोड़कर जाना होगा।

"क्यूँ"? मैंने पूछा था।

"क्यूँ"? बताओ ना माँ। दीदी ने पूछा था।

"यह घर बिक चुका है।"

"लेकिन क्यूँ?"

माँ की आँखें नम थी। मुस्कुराने की कोशिश करते हुए कहा, "जिस नए घर में हम जाएँगे उसके सामने पार्क है। आप सबका स्कूल भी पास है और पापा की दुकान भी।"

धीरे–धीरे हमें समझ आया वह नया घर बहुत ही छोटा है, एक ही बाथरूम है। वहाँ ना तो आँगन है और ना ही बगीचा।

रात को ना पापा ने खाना खाया और ना ही माँ ने। दो केले के पत्ते ऐसे ही पड़े रहे। आँगन में चाँद अकेला था।

बाबूजी पूरे घर के एक कमरे से दूसरे कमरे में परेशान घूम रहे थे जैसे कुछ ढूँढ रहे हो। लाइट जलाकर कुछ देखते और फिर लाइट बुझा देते थे।

पूरे घर में देखने के लिए अब कुछ नहीं था। घर खाली था। जो भी सामान था वह सब अच्छे से पैक होकर दरवाज़े के पास वाले दो कमरों में रख दिया गया था। कल सुबह ट्रक आएगा। हमें जल्दी–जल्दी तैयार होना पड़ेगा।

माँ भी पापा के पीछे–पीछे साए की तरह चलती थी। ड्राइंग रूम, स्टडी रूम, बेड रूम और पूजा के कमरे में।

पापा चुपचाप आकर बेड रूम के पास खड़े हुए। जैसे मन ही मन किसी का इंतजार कर रहे हों।

पीछे से माँ ने कहा, "याद है शादी के अगले दिन इस घर में आप मुझे अकेले देखकर कैसे...."

माँ मुस्कुराने की कोशिश कर रही थी, जैसे वह कभी–कभी ऐसे मीठी मुस्कुराती थी। लेकिन वह मुस्कुरा ना सकी, उनकी आँखों से दो बूँद आँसू गिरे। वहाँ से वह हट गई। पूजा के कमरे की ओर गई।

यह पूजा का कमरा दादाजी का पसंदीदा कमरा था। रोज सुबह यहीं ध्यान करते थे। रात में गीता, भागवत पढ़ते थे। जब से दादी का साथ छूटा था तब से माँस–मछली छूते नहीं थे। दो

जोड़ी धोती, चादर में उनका गुजारा होता था।

दादाजी बहुत ही अमीर थे। सच कहें तो दादी अमीर थी। रुपए, पैसे, गहनों की भरमार दादी के पास थी। इस घर की ज़मीन दादी को अपने मायके से मिली थी।

दादी के जाने के बाद समझो दादाजी घर में रहकर बाबाजी बन गए हों। देर तक बगीचे में रहते थे और बाकी समय पूजा के कमरे में।

मैंने माँ से सुना है दादाजी खुले दिल के थे। दूसरों का दुख–दर्द उनसे देखा नहीं जाता था। लेकिन जो भी दान धरम करते थे छुपा–छुपाकर करते थे। इसकी भनक माँ–पापा को नहीं होने देते थे।

दादाजी हमेशा माँ से कहते थे– "बहू रोज़ ठाकुरजी की पूजा करना। इनके चरणों में ही तेरी किस्मत है।"

माँ रोज़ पूजा करती थी।

पापा कहते थे, दान धरम कर रहे हैं अच्छी बात है लेकिन हमसे छिपाते क्यूँ हैं? मैंने तो कभी उनको रोका नहीं।

इसके उत्तर में माँ जो कहती थी उसका मतलब है लोगों को दिखाकर–सुनाकर दान करने से पुण्य नहीं मिलता है।

"यह तुम्हारे ईश्वर हैं, तुम्हारे मधुसूदन!" जिस दिन बड़ी अदालत में केस हार गए थे, उस दिन मायूसी भरी आवाज़ में पापा ने माँ को पूजा के कमरे में पूजा करते हुए देखकर कहा था।

बिना कुछ बोले माँ–पापा की ओर देखने लगी। शांत नज़रों से, जिसमें प्रार्थना के सिवा और कुछ नहीं था।

उस मुकदमे में हारने के बाद घर की हालत और बिगड़ती गई। गाड़ी बिक गई, साथ में माँ के गहने भी।

कभी–कभी रात को सोते समय माँ की सिसकियाँ सुनाई देती थी, "पिंकी के लिए कुछ नहीं जोड़ पाई।"

पापा भी कैसे बुझे–बुझे से रहने लगे थे। चेहरे पर हँसी नहीं थी, आँखें अंदर धँसी हुई थी।

पूजा के कमरे के बाहर माँ खड़ी थी। गुमसुम। आँगन में चाँद भी अकेला। धीमे से पापा पास आए। कहा "पूजा के कमरे का सामान पैक नहीं करोगी! सुबह इतना वक्त नहीं होगा।"

माँ ने सोचा था सुबह नहा–धोकर पूजा के बाद ही सारा सामान समेटेगी। लेकिन कुछ सोचकर कहा, "मैं सोचती हूँ अभी सामान समेट लूँ। मुझे लग रहा है कल सुबह तक मेरी शायद...."

पापा ने कहा "अगर ऐसा लग रहा है तो अभी खत्म कर दो। देर मत करो।"

पापा सामने के कमरे की ओर निकल गए, जो पहले ड्राइंग रूम था। वहीं पर वह अपना कुछ फाइल वगैरा संभालकर एक गत्ते में भर रहे थे।

अंधेरे में मुझे देखकर कहा– "शिपुन रात बहुत हो चुकी है सो जाओ। पिंकी को भी कहो वह सो जाए। सुबह जल्दी उठना है। गरमी लग रही है। उसे पंखा चलाने के लिए बोल देना।"

माँ पूजा के कमरे में गई। वह श्रीकृष्णजी के सामने ऐसे बैठी जैसे वह उनकी बेटी हो! उदास थी। पल्लू से आँसू पोंछ रही थी।

माँ ने एक सुंदर–सी साड़ी पहनी हुई थी। शायद बहुत कीमती भी। बहुत ही पुरानी जो जगह–जगह से फटी हुई थी। फेंककर जाने से पहले आज पहनी थी।

आज ना जाने क्यूँ मुझे बहुत रोना आ रहा है! माँ ने इतनी सुंदर–साड़ी पहनी हुई है, पूजा के कमरे की नीली रोशनी में वह इतनी सुंदर लग रही हैं, ठाकुरजी की गद्दी पर बैठे मधुसूदन की मूर्ति भी चमक रही थी, मुझे क्यूँ रोना आ रहा है।

एक दिन पापा ने गुस्से से कहा, "तुम दिन–रात सिर्फ पूजा करती रहो। क्या कहा था बाबूजी ने? रोज़ पूजा करना, इन्हीं के चरणों में तेरी किस्मत है।"

मैं आँगन की ओर देखने लगा। अब चाँद कहीं दूर चला गया है, सेमर के पेड़ के उस पार किसी अनदेखे आसमान की ओर, पेड़ की टहनी पर एक उल्लू बैठा रह–रहकर सिसकियाँ ले रहा है, पुराने दिनों को याद करते हुए।

पूजा के कमरे में माँ अकेली बैठी अपने आप मधुसूदन, अखंडलमणि, शिव–पार्वती की मूर्ति, फोटो निकालकर एक गत्ते में रख रही थी। दादाजी पहले एक बड़े संदूक पर मखमली कपड़ा बिछाकर

ठाकुरजी की पूजा–पाठ करते थे। अब माँ भी वही करती है। संदूक पर ठाकुरजी की गद्दी थी।

लोहे का बहुत बड़ा संदूक था। बहुत ही भारी। पापा ने कहा– "इसे खोलने की ज़रूरत नहीं है। वैसे ही उठाकर ले चलेंगे।"

बड़ी श्रद्धा से माँ बाहर से ही संदूक को पोंछने लगी। जो भी हो हमारे दादाजी की अमानत है ना! इसी समय रसोईघर से कुछ आवाज़ आई किसी ने नहीं सुना लेकिन मैंने सुन लिया।

मैं रसोईघर की ओर भागा।

देखा तो रसोईघर में पिंकी दीदी अकेली खड़ी थी, डर के मारे काँप रही थी।

नीचे एक काँच का बर्तन टूटा पड़ा था, जिसमें माँ ने दही जमाई हुई थी, कल सुबह थोड़ा–थोड़ा दही चखकर हम घर के बाहर कदम रखते।

दही का वह बर्तन नीचे टूटा पड़ा था। फर्श पर काँच के टुकड़े बिखरे हुए थे।

दीदी ने सोचा था, मैं भागते हुए माँ–पापा को इस बात की शिकायत करूँगा। इसी डर से वह सकपकाती हुई बिना बोले मेरी ओर देखने लगी।

मैं उसके पास आया

सिसकती हुई दीदी ने कहा.....।

नहीं, दीदी के बिना बोले ही मैं समझ गया। माँ को थका हुआ देखकर पिंकी दीदी सारे बर्तन साफ़ कर रख रही थी, गैस के चूल्हे को साफ किया, बेसिन भी। यह वही पिंकी दीदी थी जो पहले पानी पीकर अपना ग्लास खुद धोने के लिए राजी नहीं होती थी।

धुले हुए बर्तन छज़े पर रखते समय काँच का डोंगा नीचे गिर पड़ा, जिसमें माँ ने दही जमाई थी।

फर्श पर काँच और दही बिखरी पड़ी थी। एक बूँद खून भी।

काँच का टुकड़ा समेटते समय दीदी के पैरों में चुभ गया था। पैरों से खून भी निकलने लगा। दिखाओ दीदी? यह कहकर मैं दीदी के पैरों के पास झुक गया।

नहीं ज़्यादा नहीं, सिर्फ एक बूँद।

मैंने कहा– "रूको! मैं मलहम लेकर आता हूँ। माँ–पापा को कुछ पता नहीं चलेगा।"

उसी समय माँ ने पूजा के कमरे से आवाज़ लगाई।

"सुनते हो!"

एक बार तो लगा माँ डरी हुई है लेकिन दूसरी बार माँ ने आश्चर्य के साथ आवाज़ लगाई और तीसरी बार लगा माँ जैसे जंगल में या किसी अनजान रास्ते में कही भटक गई है।

हम सब एक–एक करके पूजा के कमरे की ओर गए। पापा, मैं और दीदी।

माँ लोहे के संदूक के पास बैठी थी। जैसे मंत्र पढ़कर उन्हें किसी ने पत्थर बना दिया हो।

उनके सामने लोहे का संदूक खुला पड़ा था। दादाजी का लोहे का संदूक।

ठाकुरजी की मूर्तियों को निकालकर एक कागज़ के गत्ते में रखने के बाद माँ की नज़र इस लोहे के संदूक पर पड़ी। दादाजी का पुराना लोहे का संदूक। माँ बड़ी श्रद्धा से तौलिया लाकर संदूक को ऊपर से साफ करने लगी, फिर कुछ सोचकर उसकी चिटकनी खोल दी।

अंदर दादीजी की कुछ पुरानी साड़ियाँ रखी हुई थी। उसके नीचे उनकी एक फोटो रखी हुई थी जिसमें शरारती नजरों से वह कहना चाह रही हो और दादाजी ने उन्हें कहने से मना किया हो। जब माँ ने वह फोटो हटाई तो उसके नीचे जो था उसे देखकर माँ चौंक गई।

हाँ उनकी आँखे खुली की खुली रह गई थी। जब मैं पूजा के कमरे में गया माँ वैसे ही पत्थर की मूर्ति जैसी बैठी थी और पापा बिना बोले संदूक में से एक–एक करके सारा सामान निकाल रहे थे, जैसे ठाकुरजी का आदेश और दादाजी के हुकुम का पालन कर रहे हो।

संदूक में से एक–एक करके सोने की मोहर, तरह–तरह के कीमती पत्थर शायद हीरे, मोती, माणिक, तरह–तरह के गहने।

मुझे अच्छे से पता है कि अगर पहले की बात होती तो पिंकी दीदी इन गहनों पर झपट पड़ती और उसमें से एक पहनने की ज़िद करती

लेकिन अब उसने ऐसा कुछ नहीं किया। मैजिक शो देखने की तरह वह चुपचाप देख रही थी, संदुक में से निकलता हुआ एक–एक सोने, हीरे, मोतियों के गहने।

मैं उसके पास गया।

चुपके से कहा, "दीदी!"

ऊँ?

"चल मैं तेरे पैरों में दवाई लगा दूँ, नहीं तो कल ज्यादा दर्द करेगी।"

एक दूसरे का हाथ थामें हम दोनों आँगन की ओर निकल आए।

आज आँगन में चाँद नहीं था। नहीं है तो क्या लेकिन कल तो ज़रूर उससे मुलाकात होगी, इस आँगन में नहीं तो और कहीं।

– तरुणकांति मिश्र, 137, लेविस रोड, बी जे बी नगर, भुवनेश्वर–751014
अनुवादक – 46, गुलमोहर एन्क्लेव, नई दिल्ली–110049

❑❑❑

ग्वालिन

कंचनलाल मेहता 'मलयानील'
अनुवाद : प्रो. (डॉ.) नलिनी पुरोहित

वो बहुत ही सुंदर आकर्षक युवती थी। बहुतों में वसंत की आभा चौदह साल की उम्र में ही नजर आ जाती है तो किसी की लालिमा में निखार सत्रह या अठारह वर्ष में आता है और इसने पंद्रहवें साल में ही कंठ को कोयल बना कुहुकना शुरू कर दिया था। बाल–सुलभ मासूमियत मानो विदा लेना चाह रही थी। बाल–भाव यौवन में रूपांतरित होने को तत्पर था और तो और यौवन स्वेच्छ से इस कार्य के लिए रास्ता दिखा रहा था। खिलती कली फूल बनने के अहसास से मुखरित थी।

पढ़ी–लिखी न होने के बावजूद चतुराई की सक्षमता थी, शहर की न होने के बाद भी व्यक्तित्व में सौजन्य था, दूध सी उज्ज्वल न होकर भी अच्छी खासी गोरी थी।

सर पर पीतल के चमकते घड़े के साथ उसका गाँव से निकल शहर में प्रवेश करते ही ऐसा आभास होता मानो स्वयं लक्ष्मी ही आ गई हो। दूध लेना है भाई दूध की मधुर ध्वनि से गली में एक सुखद हलचल सी मच जाती थी। सुबह–सुबह दातुन मुँह में लिए पुरुष वर्ग मानो इसी घड़ी का इंतजार करते थे, और महिला वर्ग अपने पतियों का बदलता रुख देख ईर्ष्या से जल जाती थीं। पुरुषों के लिए जहाँ ये शुभ शगुन था, स्त्रियों के लिए वही ईर्ष्या थी।

ये गुजराती ग्वालिन थी, सुबह के प्रथम प्रहर में ही अपने गाँव के तालाब से नहा धोकर ताजे दुहे हुए दूध के साथ शहरवासियों की सेवा में प्रस्तुत होती थी। सभी उसके दूध के दीवाने थे इसलिए उसी से दूध लेना पसंद करते थे। "दूध लेना है भाई दूध" सुनते ही मुहल्ले की औरतें झट बिस्तर से उठ जाती थीं। वो हमेशा लाल रंग की, पीले बोर्डर और काले पल्लू की साड़ी ही पहनती थी। उसके हाथों में चाँदी का कड़ा, पैरों में चाँदी का कल्ला (लच्छा) और हाथ के ऊपर बाहों में भुजबंद पहनती थी जो हाथी दाँत में बनी चाँदी की पट्टी से सजी रहती थी। सिर पर आधा घूँघट रहता था जिसके कारण उसकी माँग कैसी होगी, उसका पता ही नहीं चलता था। वो बाल तो बनाती ही होगी, पर कैसा बाल बनाती होगी माँग भरती होगी कि नहीं, इन बातों की कल्पना करके उसकी अनदेखी खूबसूरती खुद–ब–खुद बढ़ जाती थी।

मैं उसके आने के समय पर ही दातुन करने बैठ जाता था और उसके आते ही ठगा सा एक टक उसे सामने देखता रहता। वो शर्माती नहीं थी। पर नजर नीची कर, धीमे कदमों से आगे बढ़ जाती थी और फिर वही आवाज गलियों में गूँज जाती थी, "दूध ले लो भाई दूध....."

मैं अपनी पत्नी को रोज कहता, इस ग्वालिन से दूध क्यों नहीं लेती तुम? वो बेचारी हर दिन, हर सुबह "बहन दूध लेना है?" बोल कर अपना मुँह दुखा जाती है, पर हद है, तुम्हारे चेहरे पर शिकन भी नहीं आती।

परंतु न जाने क्यों मुझे उस ग्वालिन से एक तरह का अनुराग हो गया था। इतनी खूबसूरत

फिर भी ग्वालों के कुल में जन्म क्यों? ईश्वर भी देखे बिना रूप बाँट देते हैं।

न जाने क्यों उस दिन मुझे लगा, काश मेरा जन्म ग्वालों के कुल में हुआ होता तो कितना अच्छा होता। मुझे बाँसुरी बजानी आती होती तो कितना अच्छा होता। अपनी धुन में गाँव के सरहद समीप मुख्य दरवाजे में, गाय–भैस चराते हुए मैं बाँसुरी बजाता तो मुझे कितना अच्छा लगता।

बारंबार उसका सौंदर्य देखते–देखते मेरा मन भी बदलते रहता। उसकी गंभीर पर तीक्ष्ण पैनी आँखों के पीछे मेरा दिल रोज़ दौड़ता। उसके पीछे मैं गली–गली भटकता बस यही देखने वो किस गली में जा रही है, फिर कहाँ जाएगी और दिल में साथ जाने की योजना करते रहता।

आठ बजने का जब घंटा बजा, तब एक दिन मैं आवेश में उठ बैठा और गाँव के मुख्य दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया। दूध बेचकर घर जाने के लिए इसी मुख्य दरवाज़े से होकर जाएगी तब मैं उसके पीछे–पीछे जाऊँगा और पूछूँगा तुम कौन हो? तुम्हारी आँखों में क्या है, तुम्हारे ग्वालिन जाति में सब तुम्हारी ही जैसी परियाँ होती हैं क्या?

इन्हीं प्रश्नों को दिमाग में रखे, मैं वहीं खड़ा था, इतने में हाथ में रखे पैसे गिनते वो आई। मुख्य दरवाजे से बाहर निकली, गर्दन सीधी किंतु नजरे नीची कर वो चलने लगी और मैं उसके पीछे–पीछे खींचा सा चलता गया।

बैलगाड़ी के चलने से जो निशान बनते थे उन निशानों के मध्य से वो चलने लगी। चलते–चलते पैरों से धूल उड़ने के कारण, उसके पैरों का कल्ला फीका पड़ने लगा। सामने से आ रही सूर्य की किरणों की वजह से मैं पूरी आँख खोल नहीं पा रहा था। फिर भी आँखें छोटी कर, उसके रूप, तरुणई में डूबा, जहाँ–जहाँ वो जाए उसका पीछा करता हुआ, मैं जाने लगा। दिल में सिर्फ एक तमन्ना थी कि किसी तरह मैं उसके साथ बातचीत कर सकूँ। उसके चरित्र को दूषित करना था इस तरह की कुछ भी भावना मेरे दिल में नहीं थी, परंतु उसके प्रसंगों में आना–जाना कर सकूँ वो मेरे साथ बातें करे, बस इसी इच्छा में मन न जाने कैसा आतुर सा बन गया था।

उसे कुछ वहम सा हो गया था। थोड़ी दूर जाए, फिर पीछे मुड़ कर देखे, तुरंत मैं अटक जाता था, फिर जैसे ही वो सामने देखती, मैं चलना शुरू कर देता था।

आधा ही मील गया था कि वो अटक कर रुक गई वहाँ बरगद वृक्ष की फैली हुई शाखाएँ थी। वहीं प्रवासियों के विश्राम के लिए एक खपड़ा जैसा लगा दिया था। जहाँ ऊपर–ऊपर कोयल की कूक, नीचे गाय, भैंस, बछड़े इधर–उधर दौड़ते हुए दिख जाते थे। बड़ा ही सुंदर नजारा था, उस पर ग्वालिन की सुंदरता। प्रकृति की रमणीयता में, देह की खूबसूरती मानो घुल–मिल गई थी।

खपरैल के बाहर आकर उसने घड़ा उतारा और रास्ते के एक तरफ जैसे ग्वाले सब उकडू बैठते हैं, उसी अंदाज में सामने घड़ा रख कर बैठ गई।

मैं असमंजस में पड़ गया। चला जाऊँ कि खड़ा रहूँ, या उसके साथ बातें करूँ, गजब की स्थिति मेरी हो गई थी। दिल भी धड़कने लगा था। हिम्मत करके मर्द तो बना था पर इस गोरी ग्वालिन ने मेरी सारी ताकत छीन ली थी। मेरी इस स्थिति को वो अच्छी तरह से समझ चुकी थी। मैं उसी के पीछे आ रहा था, यह भी वह बखूबी जानती थी। मेरी गली में बार–बार प्रायः हर रोज दूध देते समय उससे मेरा सामना तो होता ही था, वो इसलिए मुझे अच्छी तरह से पहचान चुकी थी।

विचार करके मैं उसी रास्ते में चलने लगा, उसे पार करके दो कदम चला ही था कि उसने पुकारा "संदन भाई, उस तरफ कहाँ जा रहे हो"। मन में सोचा, वाह अच्छा हुआ, मुझे बोलने का मौका मिलेगा। मैं वहीं खड़ा रहा और धड़कते दिल को मजबूत कर बोला "तुम्हारा गाँव कहाँ है?" मुझे वह देखना है।

"अरे इसमें क्या देखना, लो साहेब ये दूध पीवो, मेरी कसम"। ऐसा बोल करके आधा सेर दूध नापने वाले प्याले में दूध निकाल कर बोली।

"लीजिए साहेब मेरी बहन तो कभी मेरा दूध लेती नहीं पर आज मेरी इस तंदुरूस्त भैंस का दूध पीकर स्वाद तो बताना"। ना बाबा, जवाब दिया मैंने, तुम्हारा दूध ऐसे ही कैसे पी सकता हूँ, पैसे

लेने पड़ेंगे तुम्हें। अरे पैसे! क्या कह रहे हो बाबू? इसके पैसे लिए जाते हैं भला! खड़े ही रहोगे क्या, इस तरफ आओ, चखो तो सही बाबू। शांति महसूस हुई मुझे कि उसकी मरजी के विरुद्ध तो कुछ नहीं कर रहा। मुझे तो लग रहा था कि शायद डाँटेगी, गाली–वाली देगी कि दुष्ट, बदमाश मेरे पीछे–पीछे यहाँ तक आ गया, पर यहाँ तो उल्टा ही हुआ। न शक्कर थी, न दूध गर्म था फिर भी उसकी तदुंरूस्त भैंस का दूध मैं पी गया। मैं उसे दूध का तीन गुना पैसा देने लगा पर उसने न लिया। जब मैं बेचने आऊँ तो पाई–पाई का हिसाब करूँ, पर आप जैसे जब मेरे यहाँ आए और रुपिया भी खर्च हो तो हम नहीं लेते बाबू। बहुत बातूनी है, इसलिए अच्छा है, ठीक रहेगी मैंने सोचा। उसकी गंभीरता रहेगी ही नहीं। मैंने पूछा "दूध वाली तुम्हारी जाति क्या?"

"हम लोग भला गाय–भैंस चराने वाले रबारी जात"

"तो तुमने किसके साथ शादी की है।"

"संदन भाई क्या पूछ रहे हो" जैसे शरमाई हो उस अंदाज में हँसी।

"नहीं नहीं फिर भी"

"वो भी हम जैसे रबारी ही हैं, बाहर के लोग के साथ शादी थोड़ी होती भला।"

मुझे तो अपनी सुध ही न थी, क्या पूछना क्या नहीं पूछना उसका भान ही न था। इसलिए मैं नीचे लिखे इन सवाल–जवाब में उलझा रहा–

"तुम प्रेम क्या ये समझती हो"

"क्या?"

"तुम स्नेह क्या ये जानती हो, तुम्हे तुम्हारा पति कभी आवाज लगाकर बुलाता है, तब क्या होता है?"

"सदंन भाई, पागल हुए हो क्या, से सब क्या बोल रहे हो तुम।"

"तुम बोलो तो सही। सच कहूँ तो मैं तेरे पीछे ही यहाँ तक आया हूँ। गली में बात कैसे हो, इसीलिए गाँव के बाहर खड़ा रहता था।"

"हाय–हाय, मैं अपनी टोकरी भूली, तुम मेरी मटकी देखना यहाँ नहीं बैठ सकते क्या? बैठो– मैं तो गायों को चारा देनेवाली टोकरी ही भूल कर आ गई। इस खपरैल के नीचे घड़ी भर शांति से नहीं बैठ सकते। मैं जा रही हूँ पर तुरंत आती हूँ कुछ भी बात हो तो कहने में झिझकना नहीं।"

उपकार चढ़ाने का इससे सुंदर भला क्या रास्ता हो सकता था। मैं उसकी मटकी (घड़ा) अंदर रखकर इत्मीनान से पैर फैलाकर बैठ गया।

"वाह रे गोरी? तुम्हारे गाँव की भाषा की मधुरता के क्या कहने? बस आज लगता है दसों बार नया सवाल उससे पूछता जाऊँ, उसे सुनता जाऊँ, पता नहीं क्या कर दिया है उसने मुझे। अगर उसने पारदर्शी साड़ी पहनी होती, माथे पर गजरा लगाया होता, शहरी भाषा उसे भी बोलनी आती होती और जैसी उसकी मदमाती चाल है वैसे ही वो चलती होती और तो और मैं भी उसका ही होता तो मुझसे न जाने कितने लोग ईर्ष्या करते होते।"

खूबसूरती की देवी ग्वालिन चली गई, लेकिन मेरे मगज, दिमाग को अस्थिर, चंचल बना गई, मानो मुझे सम्मोहन में वशीभूत कर भ्रमित कर गई।

मैं उसके घड़े पर जो नाम लिखा था, उसे पढ़ने की कोशिश करने लगा। मसा "दली" ही लिखा दिखा, शायद दली ही नाम होगा, किंतु ये स्त्री का नाम कैसे होगा? मैके से ससुराल जाते समय यह पीतल की गगरी उसे दहेज में आई होगी। उसके नाम के उच्चारण में जरा भी सौम्यता न थी बल्कि कर्कशता ही थी, किंतु उसका चेहरा, उसकी ग्राम्य मासूम निर्दोषता, उसका दूध ले लो भाई दूध की मधुर ध्वनि। यही सब मैं बैठे–बैठे मन ही मन विचार कर रहा था। मेरे पीछे जहाँ बैठा था, एक खिड़की थी जिसके ऊपर ईख का घना छप्पर, यही सब देखता समय प्रसार कर रहा था, कि इतने में वो आई।

"बैठे हो"? पूछा उसने।

"तुम्हारा काम जो कर रहा हूँ बैठूँ नहीं क्या? टोकरी लाई?" "ना रे भई" चार–पाँच घर में पूछ कर आई, पर कहीं न मिला, पता नहीं मैं किसके घर में छोड़ आई, इतना बोलकर वो वहीं बैठ गई। "दली!"

दली सुनते ही आश्चर्यचकित हो बोली, मेरा नाम तुम्हें कैसे पता चला। "देखो इस गगरी पर लिखा है, जो तुम्हें अपने मैके से शादी के समय मिला होगा।"

मैं तो उसमें इस हद तक खो गया था कि उसकी हर एक चीज पर अनुमान लगाना शुरू कर दिया था। उसके गले में 'शोक' चिह्न देखा। उससे इतना अनुमान तो लगा लिया कि यह घर उसका, उसके दूजे ब्याह से है। शरीर पर रेशमी ब्लाउज, नाक की लौंग, कानों में कर्णफूल, मानो मुस्कुराकर उसका रूप बढ़ा रही थी। मैं तो उसके नजदीक बैठा विस्तार से उसका अवलोकन कर रहा था, लग रहा था मानो मुझमें पागलपन का दौरा ही आया हो।

"तुम प्यार क्या होता है, जानती हो? तुम और तुम्हारा पति एक दूजे को खूब चाहते हो!"

"अब जाने दो न बोलती तिरछी नजर डाल हँस पड़ी।"

"ना, ना बोलो तो सही"

"तुम क्या पूछ रहे हो साहेब, वो तो मैं नहीं समझी पर मैं खूब सबेरे उठ जाती हूँ और फिर हम दोनों दूध दुहते हैं, मैं भैंस दुहती हूँ, ये गाय। दूध मटके में डाल हम दोनों ही शहर में बेचने निकल जाते हैं। भोर के प्रथम प्रहर में ही रस्ते में मिलते तालाब में नहाते हैं, कपड़ा धोते हैं और गाँव के दरवाजे तक दोनों साथ जाते हैं"। ये दूध बेचने जाता और जब तक आता नहीं मैं उसका इंतजार करती हूँ।"

अचानक मुझे डर लगा विचार कर कि कहीं उसका रबारी पति आ जाए और मुझे उसके साथ बैठा देख गाय चराने वाली शीशम की लाठी से ही मुझ पर बरस पड़े तो? मेरी आबरू तो जाए ही जाए, साथ ही मुझ जैसा शिक्षित व्यक्ति उसके सामने कितना हल्का हो जाएगा, यही सब विचार करते मेरे चेहरे पर चिंता और भय छाने लगा, जो शायद उसे दिखने लगा। यह देख वो मेरी मनःस्थिति अच्छे से समझ गई।

तुम जरा भी चिंता मत करना आज तो मैं बहुत पहले आ गई हूँ, अभी तो उसके आने का बहुत समय है। मेरे मन को सकून मिला और मैंने बात फिर से जारी रखी।

"तुम्हारा प्रियतम बाँसुरी में क्या बजाता है? मैं भी अगर तालाब के ऊपर खड़ा होकर बाँसुरी बजाने की कोशिश करूँ तो मुझे बजाने आएगी क्या?"

"हाँ हाँ सब को आती है पर तुम को साहेब हम जैसा क्यूँ अच्छा लगता है सब।"

"तुम्हारे लिए दली" मैं बोला, तुम खाओ तो मैं खाऊँ, तुम्हारे ज्वार–बाजरे की रोटी को मैं पचाऊँ। तुम्हारी गायों को मैं चराने ले जाऊँ, मेरे मन में ऐसा ही हो गया है दली। अब तुम्हारा गाँव और कितना दूर है?"

"ये चार–पाँच खेत जो दिख रहे हैं, उसी के बाद वो जो छपरा दिख रहा है वही। एई..... तुम मेरी झोपड़ी में रह सकते क्या! हम तो जमीन में सो जाते हैं। बाहर जहाँ गाय भैंस बाँधते हैं, वहाँ खटिया बिछा कर सोते हैं, तुम जैसों को साहेब, वो अच्छा लगेगा क्या?

अभी तक जितनी बातें हुईं, उसके आधार पर मैं यही मानने लगा कि वो मेरे पर कुर्बान हैं, मैं उसके दिल को चुरा लेने में समर्थ हूँ और अब शायद वो हमेशा ही मुझे अपने दिल की बातें सुनाएगी।

फूल ज्यूँ धीरे–धीरे खिले, वैसे ही मेरा दिल खिलता गया। जैसे झरना निरंतर बहे वैसी ही मेरी कल्पना सृष्टि रची जाने लगी। जैसे केतकी डोलती है वैसे ही मेरा हृदय भी डोलने लगा। तीली हाथ में लिए नीचे झुक कर जमीन पर वो आड़ी–तिरछी रेखाओं से मानो कमान बना रही हो चित्र बनाती रही। फिर तिली तोड़ती, फिर उसी से बनाती, फिर तोड़ती यूँ नीचे झुकी वो खेली जा रही थी। जरा भी घबराहट, शर्म, झिझक बिना, एक दोस्त की तरह मेरे से वार्तालाप किए जा रही थी। घड़ी भर हम दोनों के बीच शांति बनी रही। इतने में जैसे बादल के बीच बिजली चमके और बालक का दिल डर से धड़क उठे, खेत में जैसे भँवरा आ जाए और मालती के होश–हवाश उड़ जाए वैसे ही उस छप्पर के नीचे अचानक खुली हुई खिड़की

से मेरी पत्नी ने झाँका। उसे देखते ही मैं थरथर काँपने लगा। उसकी आँखों में गुस्से से पानी भर गया था, क्या कहूँ क्या न कहूँ वैसी मेरी स्थिति हो गई थी और उसका बोलना शुरू हो गया था, क्या बोलना चाहिए क्या नहीं उसका ख्याल तो वो भूल ही चुकी थी, उसे उसका भान ही न था और चतुर ग्वालिन दली साड़ी मुँह में दबाए हँसी जा रही थी।

चित्रकार के यहाँ तीन चित्र बनाने थे। एक काली का, दूजा जादूगरनी का और तीसरा एक बेवकूफ का।

– ए–81, राधा कृष्ण पार्क, अकोटा गार्डन समीप अकोटा, वडोदरा, गुजरात–20

❑❑❑

अऋतु ऋतु

डॉ. फनी महांति

से ऋतुर नाआँ कण कह गायत्री, जेउँठि
बसंत नथिब किंतु, बाहारर भीड जमिथिब

से ऋतुर नाआँ कण कह गायत्री, जेउँठि प्रेम
नथिब किन्तु,
बिरहानले माटिघट शरीर भीतरे भीतरे जलिपोडि
जाउथिब।

एमिति ऋतुटे ये मर्त्यमंडलरे अछि कि,
गायत्री, जेउँठि संभोग नथिब किन्तु, संन्यास
थिब। आशा नथिब किन्तु, निराशार बालुचर
माइल माइल जाएँ लंबिथिब।
मिलनबिरह राहु परि बलका आयुषतक पलपल
नष्ट करुथिब।

कह गायत्री, से अजब ऋतुर नाआँ कण?
अजणा अतिथी परि केबे से ऋतु
एठि आसि मुँह देखाए?
आँसू न आसुणु अधा बाटु पुणि
बाहुडि जाए। जाए जे जाए
बर्ष बर्ष ता'र आउ देखा नथाए।

से ऋतु कि 'किचिरिमिचिरि शब्द करुथिबा
नीडहरा पक्षी शाबकंक
ऋतु? ना, सद्य बिधबार डहलबिकल गहन
विषम ऋतु?
से ऋतु कि कुलशीलहीन अक्षम जनर स्मृति
जरजर रसोतीर्ण्ण ऋतु?
कण तार रूपरेख, बर्ण्ण ओ बैभब जणाथिले
जणाथिब केबल तमकु।

से ऋतु कि 'कनिअर कदंबर?
अदेह देहर घमाघोट ऋतु? से
ऋतु कि 'बज्र वर्षा तडितर
घनाघन ऋतु?
से ऋतु कि 'नीलमेघी पाटशाढि पिन्धा प्रथम
प्रेमीकार रुकरुक अपासोरा ऋतु? ना, नालि
गुलुगुलु साधबबोहूर घनघोर घटाटप अऋतुर
ऋतु?

जणाथिले जणाथिब गायत्री,
केबल तमकु।

– पुष्पधानु, प्लॉट नं.–220/2039, बोमीशाली, भुवनेश्वर–751010

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

अऋतु ऋतु

डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु

बोलो गायत्री, उस ऋतु का नाम? क्या है जहाँ नहीं होगा वसंत?
परंतु बहार की भीड़ जमी होगी।

बोलो गायत्री, उस ऋतु का नाम क्या है जहाँ नहीं होगा प्रेम?
परंतु विरह की अग्नि में यह माटी की देह भीतर–भीतर जल रही होगी।

गायत्री, क्या ऐसी कोई ऋतु इस मृत्युलोक में है?
जहाँ नहीं होगा संभोग, परंतु संन्यास होगा।
नहीं होगी आशा, परंतु निराशा का रेगिस्तान मीलों तक पसरा होगा।
मिलन और विरह, राहु की तरह बचे–खुचे आयु को हर–पल ग्रस रहे होंगे।

बोलो तो गायत्री, उस अजीब ऋतु का नाम क्या है?
जो अनजान अतिथि की तरह कभी–कभार यहाँ आकर मुँह दिखाती है?
आते–जाते आधे रास्ते से फिर लौट जाती है।
जाती है तो बस चली ही जाती है।
सालों तक उसका पता नहीं चलता

वह ऋतु कौन–सी है
जो चहचहा रहे नीड़ विहीन चूजों की है?
या जो विधवा नारी की विलाप–सी गहरी विषम है?
क्या वह कुलशीलहीन अक्षम लोगों की स्मृति में जर्जर, रसविहीन ऋतु है?
क्या है उसकी रूपरेखा, वर्ण और वैभव
पता होगा तो केवल तुम्हें ही पता होगा।

वह ऋतु क्या कनेर और कदंब की है?
अदेह और देह की जुड़वा ऋतु है?
वह क्या वज्र वर्षा व बिजली की घनघोर ऋतु है?
क्या वह नीले बादल के रंग की साड़ी पहने प्रथम प्रेयसी के रुक–रुक न भूल पाने वाली ऋतु है?
या फिर लाल रानी कीटों की घनघोर घटाटोप अऋतु की ऋतु है?
गायत्री, अगर किसी को पता होगा
तो केवल तुम्हें पता होगा

– ओड़िया अध्यापिका, सरकारी, एस. एस. डी. एच. एस. एस. विज्ञान महाविद्यालय,
बालिशंकरा, सुंदरगढ़, ओडिशा

❑❑❑

कोंडमारा

प्रो. सौ. कांचन थोरात

या कोषातून बाहेर यायचंय,
आतमध्ये गुरफटून,
आतमध्ये गुरफटून,
थकवा आलाय मला...[2]
गुरफटून गेलेय मी,
विकारांच्या तंतूमध्ये,
आतमध्ये
होतोय माझा कोंडमारा,
पण–
कुठंतरी वाटतस मला;
मी बदलून जाईन,
या कोषातून बाहेर पडेन तेव्हा[2]
–आणि असेन,
एक सुंदर फूलपाखरू,
जे फिरेल स्वच्छंदी, आकाश भरून[2]
म्हणूनच...
या कोशातून बाहेर यायचंय,
आतमध्ये गुरफटून
थकवा आलाय मला...[2]

– 'श्रीदत्त प्लाझा' रूम नं.–20, तिसरा मजला, आगाशिव नगर, मलकापूर, ता. कराड,
जि. सातारा, महाराष्ट्र–415539

❑❑❑

विवशता

प्रो. शौकात आतार

इस कोश से बाहर निकलना है,
भीतर उलझकर,
काफी थक गई हूँ मैं...!
उलझ गई हूँ मैं,
विकारों के तंतुओं में,
भीतर,
हो रही हूँ विवश,
लेकिन
कहीं तो लग रहा है मुझे;
मुझमें परिवर्तन होगा,
इस कोश से बाहर आऊँगी तब!
और हो जाऊँगी,
एक सुंदर तितली,
जो घूमेगी मनमौजी होकर, पूरे आसमान में!
इसलिए...
इस कोश से बाहर आना है मुझे,
भीतर उलझकर,
काफी, थक गई हूँ मैं...!

– हिंदी विभाग प्रमुख, आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज,नागठाणे, ता.जि. सातारा, महाराष्ट्र–415519

❑❑❑

संघर्ष के हथौड़ों में टूटती चट्टानें

डॉ. वामंती रामचंद्रन

डॉ. शुभदर्शन, 'सभ्या प्रकाशन' का नवीनतम प्रकाशन, 'काव्य संग्रह' संघर्ष के लमहे (अप्रैल 2021) जिसमें कवि ने अपनी बात पाठकों की अदालत में प्रस्तुत की है। कविता संग्रह मानो मरूभूमि की मटमैली रेत है, वो रेत जो बरसों पहले चट्टान थी जिस पर समय–समय पर संघर्ष के हथौड़े पड़े, पड़ते चले गए, फिर एक दिन वह चट्टान भुरभुरी रेत में तब्दील हो गई। कविताओं की संख्या कुल 63 हैं। इन कविताओं में जिज्ञासा और अनुभूति नहीं अनुभव जनित संवेदनाएँ हैं, भीतर ही भीतर उफनता आक्रोश है, पल–पल उभरती मिटती आस्थाएँ हैं। कविता में उठती संवेदनाएँ कहीं न कहीं मन को झकझोरती हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए पाठक का उस स्थान तक पहुँचना सहज है, और उसी माहौल में रच बस जाने की संभावना उत्पन्न हो जाती है। कविताओं में कुछ उर्दू और पंजाबी शब्द हैं जो हिंदी में लिखे गए हैं, जिसे समझना कठिन नहीं

साजिश, पृष्ठ–संख्या 18–19

दीवारों के रोशनदानों में झाँकती आँखें

.....

लकवाग्रस्त सोच की

रात भर हो रही साजिशों से

घबराया नहीं, उक्ता गया हूँ मैं

नितांत अकेले, रात के अंधकार के अरण्य में आसपास घटती, मन को चोट पहुँचाती घटनाओं की तड़प को दर्शाती यह कविता, पाठक के अंतर में विवशता की लहर उत्पन्न करती है। अंतिम पंक्ति–घबराया नहीं, उक्ता गया हूँ मैं, लगता है ये बातें कुछ नई नहीं हैं। आज घटी है, कल घटेगी, अंतहीन सिलसिला चलता रहेगा, सदा घटेगी, समाधान के लिए हम ताकते रहेगें।

"खोटा सिक्का हूँ"– पृष्ठ सं. 16–17

विश्व ने तुम्हारा पाठ पढ़ा

.....

रुपए में तुम्हें सजाया

यह क्या कम है....

'आदर्श' जब अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर रुक जाता है, कहीं न कहीं उसे भी थमकर सोचना पड़ता है, इतना कुछ करने के बाद मेरी औकात क्या रह गई है? उसे स्वयं नहीं पता होता कि आज की इस भौतिकवादी दुनियाँ में उसका मूल्य क्या है? वह स्वयं को संदेह की दृष्टि से देखने –परखने लगता है, कि कहीं उसकी उपस्थिति और उसके अपने जीवन की मेहनत और त्याग भरे लमहे बेमानी तो नहीं? इस क्षण उसे किसी और की आवश्यकता पड़ती है। वह जानना चाहता है वह क्या है? इस कविता में शुभदर्शन ने एक आदर्श व्यक्ति के भीतर की तड़प को पहचानने की कोशिश की है।

"चिड़ी बिचारी की करे" पृष्ठ सं. 14–15

संघर्ष के लम्हें (काव्य संग्रह)/ लेखक – शुभदर्शन/ सभ्या प्रकाशन –बी–3/3223, वसंतकुज, नई दिल्ली–110070/ प्रकाशन वर्ष – 2021/कुल पृष्ठ – 144/मूल्य – ₹300/–

वर्तमान में मेहनत करके चुपचाप जीने वाले सीधे–सादे व्यक्ति को अपने ही घर में कोई चैन से जीने नहीं देता, उसके घर को तहस–नहस करके, उसके मासूम बच्चों को नोचकर खाती, राक्षसी दृष्टि डालता समाज! बुलाने पर भी कोई सहायता के लिए आगे नहीं आता। कोई आता भी है तो केवल तमाशा देखकर चला जाता है, बगावत करने पर उसे जीते–जी मार दिया जाता है। इस कविता में शुभदर्शन ने समाज के कठोर रुख की ओर आकृष्ट किया है और यह सच भी है।

'अंध–भक्ति' पृष्ठ सं. 20–21

आदमी मिट्टी के लोंदे हैं

.....

यहाँ सिर्फ राजा का जयघोष है। आदमी मिट्टी के लोंदे हैं, यही सच है, आकारहीन, कीचड़ से बने लोंदे, जिनके अंग–प्रत्यंग स्पष्ट नहीं हैं। जिसने जैसे आकार दिया वैसे ही रह गए। बोलते हैं, देखते हैं, चलते हैं जिसने जो कुछ कहने को मजबूर किया, बोलते हैं, किसी ने कुछ देखने को कह दिया देखते हैं, केवल देखते हैं, प्रतिक्रियाहीन चेहरा लेकर। जो कुछ देखते हैं। वे उनके मस्तिष्क तक नहीं पहुँचती, पैर तो हैं, ही नहीं, बस झूठ का सहारा है, जहाँ लुढ़का दो उसी तरफ लुढ़क जाते हैं। अंध भक्ति का संपूर्ण शुद्ध वर्णन है, जहाँ न अपना मस्तिष्क का उपयोग करना होता है, बस जिह्वा के ऊपरी सतह से किसी के कहने पर, राजा का जयघोष ही तो करना, बस कर्तव्य की इति! ये भी नहीं पता कि राजा कौन है? उन्होंने कहाँ देखा!

"मरी मछलियाँ" पृष्ठ सं. 22–23

छटपटा रही हैं चिड़ियाँ

.....

चिड़ियों का कत्ल कर दो।

पर्यावरण अब वो नहीं जो बरसों पहले था, सुखद था, रहने लायक था। मिट्टी के बने घर तो थे लेकिन छोटे थे, जिनमें अपनेपन की ठंडक थी। लोग मिल–जुलकर रहते थे। अब उनका घर उजड़ गया, रहने का स्थान छिन गया, चारों ओर त्राहि–त्राहि मच रही है। ऐसी अवस्था में उनके निवास–स्थानों को फिर से बसाने की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा, शोर तो मचेगा ही, जो आवाज उठाएगा उसे ही मार गिराने का आदेश दिया जा रहा है, उनका गुनाह है उन्होंने शोर मचाया है। ये कहाँ का न्याय है? चिड़िया को विस्थापित करने के बाद यदि समय दिया जाए तो वो कहीं और अपना बसेरा ढूँढ़ लेती हैं। इसका मौका ही कहाँ दिया जा रहा है। शोर बंद करने के लिए उनका मुँह बंद करना या उनका कत्ल करना समाधान नहीं है, समाधान समय देने में है। नदियाँ, पोखर सूख रहे हैं, हरियाली समाप्त हो रही है, कीचड़ में फँसी मछलियों का दम घुट रहा है, उन मरी मछलियों को घात लगाकर बगुले खा रहे हैं, क्या करें अकाल पड़ा हुआ है भुखमरी की स्थिति है। कवि ने गागर में सागर को भर दिया है, यह केवल कल्पना नहीं यथार्थ है। बड़े व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। जिनके हाथों में शक्ति है, बल है, शासन है वह जनहित के विषय में न सोचकर अंधाधुंध निर्णय ले रहे हैं, उनके हृदय से दया, ईश्वरत्व ये सबकुछ कहीं दूर चले गए हैं। इस कविता की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता।

"वे कौन थे" पृष्ठ सं. 25–26

अपने परिवारों का मोह त्याग

वे लोग कौन थे।

ये प्रश्न बरसों से कई लोगों के मन में उठता रहा होगा, लेकिन शायद ही कोई हो जिसमें ये समाज ये पूछने का धैर्य रहा हो। कितनी मनग्राही पंक्तियाँ हैं–

अपने परिवार का मोह त्याग..... ।

.....

देश के लिए कालेपानी की सजा भुगती, फाँसी के फंदों पर झूल गए। हमें उनमें से कुछ नाम तो पता हैं लेकिन उन्हें कभी प्रत्यक्ष देखा नहीं, उनकी उम्र कुछ भी रही हो, उनके आगे शीश झुकाने का चरण–स्पर्श करने का मन करता है। कवि शुभदर्शन ने आज कितने बरसों बाद उन महान विभूतियों के विषय में अपनी इस छोटी सी कविता के भीतर चर्चा की है। आज जब लोग देश को मिली स्वतंत्रता के विषय में उसके लिए किए गए बलिदानों को लगभग भूल गए हैं, उनकी

भीनी सुगंध उन्होंने मानस–पटल पर फैला दी है। बहुत हृदय स्पर्शी कविता है।

'घुटनों पर सियासत' पृष्ठ सं. 45–46

1947 का एक पूरा काल खंड

.....

खर्च हो रहे हैं लगातार।

कितनी परेशानियाँ झेली हैं जब परिवार के परिवार, लाशों में तब्दील हो रहे थे, बच्चों और समाज को कंधों पर ढोकर बेतहाशा चलते जा रहे थे। मासूमों को न दाना मिला, न पानी, सन् 1947 का वह समय भयभीत करने वाला था, दहशत भरा था लेकिन मन में भारत के आजाद होने की आस थी। यहाँ सुरक्षा, योजना, यातायात का वादा था जो अधूरा ही रहा, सड़क पर उड़ती धूल की तरह लोग दिशाहीन बढ़ते चले जा रहे थे, मंजिल पाने का दूर–दूर तक कोई अंदेशा नहीं था। हमारे अपने लोग, और बिगड़े हुए तंत्र के विषय में सटीक वर्णन, बहुत खूब!

बरप रहा विज्ञान का

.....

बरस रहा लगातार।

किसी को कुछ पता नहीं, कब तक इस त्रासदी को झेलना होगा। हमारा स्तर क्या है, हमारा ध्येय क्या है? किसी को नहीं पता। इस छोटी सी कविता में कितना सार है, कवि ने कटु सत्यों का एक रेखाचित्र खींच दिया है।

'पक्षी' पृष्ठ सं. 98–99

घोंसले से निकले पक्षी

.....

घर की तलाश में....
चिंदी–चिंदी हुई संस्कृति
फटी नज़रों से देखने लगे
डाल–डाल भटक रहे
परदेसी थक कर
आराम का कहीं ठिकाना ढूँढने लगे
तो अपने घोंसले को कायम रखना

वर्तमान में हर घर की, माँ–बाप की यही स्थिति है जिन्हें घोंसले से निकले पक्षियों के कारण अकेलापन झेलना पड़ रहा है। बूढ़े माँ–बाप मन पक्का करके, कुछ उपाय होने के कारण अकेले रह रहे हैं। 'कोई हमारा नहीं' की स्थिति से समझौता कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति के उड़ते चिथड़ों को देखकर, मन आहत तो होता है लेकिन चुप है। माँ–बाप की ममता उन वृद्धों का पीछा नहीं छोड़ती, सोचते हैं शायद डालरों का बंधन छोड़ किसी दिन बच्चें भटकें तो उनसे देखा नहीं जाएगा, मरने से एक क्षण पहले भी यही सोचते हैं यदि अपने जाए, अपने देश वापिस लौटकर रहने का ठिकाना ढूँढे तो अपना पुराना घर उनके किए कायम रखा जाए। इस दर्दनाक स्थिति की बारीकियों को कवि ने देखकर उभारा है। शुभदर्शन ने इस स्थिति को कितने करीब से महसूस किया है, कविता के उन चंद शब्दों में समेटा है।

'कंकरीट' पृष्ठ सं. 100–101

कंकरीट की

.....

सच, बलिदान, सौहार्द को दबा लिया है।

वर्तमान मे कोई भी कहीं भी सुरक्षित नहीं है, शायद अपने घर की ऊँची–ऊँची दीवारों के भीतर भी। इस कटु सत्य को अनदेखा करना अत्यंत कठिन है।

जर्जर मकान में भी उस समय माँ के आँचल में कितनी सुरक्षा थी। इस कविता को पढ़ते–पढ़ते आँखों में दो अश्रु की बूँद अटककर रह गई, अचानक माँ के हाथों चूल्हें में सिकी रोटी की सुगंध पूरे वातावरण में फैल गई। उसके साथ थाली में परोसी गई, हींग–जीरे में छौंकी दाल तन–मन को सराबोर कर गई। एक बार फिर वहीं लौट जाने का मन करता है, यह कवि की कलम का प्रभाव है, जिन्होंने निश्चित ही वहाँ ले जाकर छोड़ने में सफल हुए।

आज यह आलम है–
तुम्हारे बिना
कंकरीट की ऊँची दीवारों में घिरे
मकानों में भी डर लगता है।

सच है उस समय माँ का आँचल ही सबसे सुरक्षित जगह थी जो पिता की कड़ी नज़र से, मास्टर जी की छड़ी से, शरारत करने पर पड़ोस के चाचा की मार से बचा लेती थी।

"जब रोती है माँ" पृष्ठ सं. 115–116

माँ के त्याग का एहसास जीवन भर तो रहता है माँ के चले जाने के बाद भी! जब बेटा दो जून की रोटी कमाने की खातिर मेहनत करता है, तो उसके शरीर से बहते पसीने को देखकर सुबकती है, खुलकर रो भी नहीं सकती। खुद पर खर्च करने के लिए बेटे की कमाई को एक–एक पैसे से तौलती है, फिर भी खर्च नहीं करती। कवि कहते हैं भगवान बुद्ध भी तो किसी के बेटे थे, जिन्हें जंगल में घोर तपस्या करते हुए, उपवास करते हुए, कंद–मूल खाने की कल्पना से भी तो उनकी माँ को वैसा ही दुःख पहुँचा होगा। शुभदर्शन न जाने कैसे एक माँ के हृदय की तह तक पहुँच जाते हैं, करिश्मा है।

'भूख का फंदा' पृष्ठ सं. 120–121–122

इनकी चहचहाहट के पीछे.....

मनुष्य भी अपने पेट की भूख शांत करने की खातिर दौड़ भाग करता है, कभी सपनों में खो जाता है, कभी कल्पना के पंख लगाकर उड़ता है, पंखों का अभाव है नहीं तो यथार्थ में उड़ जाता। पक्षी भी भोजन ढूँढ़ने की प्रक्रिया के दौरान उड़ते हैं, पेड़ों की टहनियों में झूलते हैं, ऊँचाई में उड़कर बहुत दूर कहीं खो जाते हैं, उनका समय पलक झपकते ही निकल जाता है, सदा प्रकृति के साथ–साथ ही रहते हैं। इस कविता में कवि ने बहुत सुंदर ढंग से चिड़ियों की दैनिक गतिविधियों को चित्रित किया है। कल्पना में अनायास ही पक्षियों का सुबह की कुनमुनी धूप में चहकना, फुदकना दिखाई दे जाता है।

'भूख की ताकत– 1' पृष्ठ सं. 129–130

कभी सिंहासन छोड़

.....

मीरा के सिर पर

नाचती है भूख

इस कविता के माध्यम से कवि ने अनगिनत प्रकार की भूख को, एक के बाद एक पाठकों के आगे बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है युगों से भूख ने विभिन्न स्थितियों में विभिन्न रूप से अपना रंग बदला है। कोई सिंहासन से उतर कर वन की ओर प्रस्थान कर रहा है तो कोई अपने घर–परिवार को छोड़कर दीवानेपन की हद को पार कर रहा है। एक भले इनसान को, पाप बटोरते व्यक्ति में बदल डाला है, कारण? केवल भूख!

भूख पेट की ही नहीं कैसी भी हो सकती है कवि ने भूख को विभिन्न दृष्टिकोण से पारिभाषित किया है। भूख किसी व्यक्ति को सही दिशा में भी ले जा सकती है, गलत दिशा में भी, या फिर दिशाहीन बनाकर भटका भी सकती है। भीतर ही भीतर सुलगती, करवट लेती भूख की इस आग को कवि ने समझा है, इस कविता के माध्यम से इसका रहस्य खोला है।

'भूख की ताकत–2' पृष्ठ सं. 131, 132–133

अन्य देशों से आई चिड़ियाँ

.....

यहाँ के रंग में।

जो पीढ़ी कहीं सुदूर देश में जाकर बस गई है, अपनी अगली पीढ़ी के जीवन में किसी प्रकार का कोई दखल नहीं कर पाते। अगली पीढ़ी को माता–पिता से तो कम लेकिन उनके माता–पिता से कोई संबंध नहीं होता। उनका मन उस सुदूर देश में भली–भाँति रम गया है, यही कारण हो सकता है। सुदूर देश ही अब उनका अपना देश है, वो वहाँ के नागरिक हैं। ये भी एक भूख है, जिसके कारण वहाँ पीढ़ी जाकर बस गई, एक बार भूख ने उन्हें बाँध लिया तो वो छूट नहीं सकते।

इस कविता के द्वारा कवि ने जीवन की उन असंख्य संवेदनाओं के सूक्ष्म तारों को खींच–खींच कर निकाला है। संवेदनाओं के अंतर को स्पष्ट रूप में उभारा है। जैसे–

बहुत फर्क होता है

देश और परदेश में

कुल मिलाकर कवि शुभदर्शन की कविताओं में कुछ है जो हमें अपनी ओर खींचती हैं, सोच–विचार करने को बाध्य करती हैं।

– सी–2–16, सह्याद्रि प्लॉट–5, सैक्टर–12, द्वारका, नई दिल्ली–78

❑❑❑

जीवन के महत्वपूर्ण सरोकारों से टकराती ग़ज़लें

कुसुमलता सिंह

समकालीन हिंदी ग़ज़ल हिंदी काव्य विधा का ही एक रूप है। इसके प्रतिनिधि कवि, अनूठे ग़ज़लकार और अपनी वाग्मिता से हिंदी भाषा को द्विगुणित करने वाले विनय मिश्र का इसी वर्ष 2021 में प्रकाशित 'लोग जिंदा हैं' ग़ज़ल संग्रह चर्चित और लोकप्रिय हुआ है। यह उनका तीसरा ग़ज़ल संग्रह है। इसके पहले 'तेरा होना तलाशूँ' और 'सच और है' संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनके रचनाकर्म पर 'समकालीन ग़ज़ल और विनय मिश्र' नामक चर्चित पुस्तक भी आ चुकी है। समकालीन शब्द में एक सहज अतिव्याप्ति है और ऐतिहासिक, परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने की क्षमता भी है। समकालीन ग़ज़ल कहते ही हमारे समय के महत्वूपर्ण सरोकारों सवालों से टकराती एक विशेष रूप और गुणधर्म वाली ग़ज़ल का चित्र आता है। ग़ज़ल कविता की सर्वाधिक पठनीय व जनप्रिय विधा मानी गई है। विषय वैविध्य और अंतर्वस्तु के विस्तार की दृष्टि से समकालीन कविता में ग़ज़ल की उपस्थिति महत्वूपर्ण है। विनय मिश्र अपने एक साक्षात्कार में ग़ज़ल कविता की एक विधा है या अपने आप में एक पृथक काव्य विधा है पूछने पर कहते हैं कि "कविता की एक ही परंपरा है– कविता की परंपरा। कविता का एक ही वृत्त है जिसकी परिधि में अनेक विधाएँ या काव्य रूप हैं। समकालीन कविता के परिदृश्य में गद्य कविता या मुक्त छंद की कविता, ग़ज़ल, दोहा, गीत और हाइकू आदि विधाओं में महत्वपूर्ण काम हो रहा है, हिंदी कविता का रचना संसार इन सारी विधाओं में लिखी जा रही रचनाओं की ही निर्मिति है। ग़ज़ल समकालीन कविता परिदृश्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा है।"

यह ठीक है कि दुष्यंत के पहले भी हिंदी कविता में ग़ज़ल की एक लंबी परंपरा रही है। निराला की 'बेला' के बाद त्रिलोचन का संकलन आया 'गुलाब और बुलबुल', और फिर शमशेर का भी 'कुछ कविताएँ'। निराला ने जहाँ ग़ज़ल का प्रस्ताव किया था, त्रिलोचन, जैसे एक संकल्प के तहत और प्रायः उर्दू क्लासिकी में लौटाकर, एक तरह से हिंदी उर्दू के बंधनों को ही तोड़ जाते हैं और ग़ज़ल में, कहीं अधिक खुले रूप में अभिव्यक्ति की श्रेष्ठता को ही अपना मानक बना लेते हैं। हिंदी ग़ज़ल का आत्मविश्वास पहली बार फूटकर आया दुष्यंत में और उनकी कृशांगिनी 'साये में धूप' हिंदी ग़ज़ल का पहला विशिष्ट दीवान बना। यहाँ एक बार फिर विनय मिश्र के इस कथन पर गौर करना होगा जहाँ वे कहते हैं कि यह भी है कि दुष्यंत से पहले भी हिंदी कविता में ग़ज़ल की परंपरा रही हैं अमीर खुसरो से लेकर कबीर, भारतेंदु और द्विवेदी युगीन कई कवियों के यहाँ जब तब ग़ज़ल की झलक दिखाई देती है। यह विडंबना ही

लोग जिंदा हैं (ग़ज़ल संग्रह)/ लेखक – विनय मिश्र/ प्रकाशन –लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष – 2021/कुल पृष्ठ – 118/मूल्य – ₹150/

है कि हिंदी आलोचकों ने प्रारंभ से ही इस विधा को अपनी उर्दू कविता परंपरा से जोड़कर देखा और अपने संस्कारों, समझ और सांप्रदायीकरण के अज्ञात भय से इसकी चर्चा से परहेज करते रहे। गद्य कविता के व्यामोह से उबरते हुए दुष्यंत कुमार ने बहुत ईमानदारी से इस बात को स्वीकार किया कि अगर कविता जनता तक नहीं पहुँच रही है तो कविता लिखने का फायदा क्या है? उन्हें यह महसूस हुआ कि उर्दू में ग़ज़ल यह काम बहुत ईमानदारी से कर रही है लेकिन उसकी विषय वस्तु बहुत घिस पिट चुकी है क्योंकि वहाँ कवियों पर एक खास तरह की दरबारी और सामंती संस्कृति की मानसिकता हावी है। दुष्यंत ने पहली बार यह अनुभव किया कि अगर ग़ज़ल जैसी लोकप्रिय विधा को आमजन की जरूरतों, चिंताओं, सरोकारों और दुख तकलीफों से जोड़ दिया जाए तो इसका कायाकल्प हो सकता है, दुष्यंत कविता की पूरी परंपरा में तप कर ग़ज़ल कहते हैं। वह दौर आपातकाल का दौर था, इस दौर के आमजन के पूरे आक्रोश, विरोध, दबाव और तनाव को उन्होंने अपनी ग़ज़लों में व्यक्त किया और पहली बार आमजन के मुहावरे में आमजन की सोच उनकी ग़ज़लों में दिखाई पड़ी। समकालीन हिंदी ग़ज़ल परंपरा के तमाम मानकों पर खरी उतरती 'लोग जिंदा है' नए संग्रह की ग़ज़लों में हो सकता है अनेक सूत्र पिछले संग्रह के छिपे हुए हों पर हर कवि के आगे की लेखन यात्रा हमेशा अलग तरह की ही होती है। कुछ वैसे ही जैसे अपने जीवन की यात्रा में हम जानते हैं कि कहाँ जाना है, जबकि कवि अपनी यात्रा में यह नहीं जानता कि उसे कहाँ जाना है। बल्कि जाना ही जाना है। इसी संदर्भ में 'लोग जिंदा हैं' ग़ज़ल संग्रह की ग़ज़लें उनकी वैचारिकी की यात्रा की ऐसी मिसाल हैं, जहाँ व्यक्ति, समय और समाज के द्वंद्वात्मक रिश्ते की जितनी बारीकी से व्यंजना की गई है वह अद्वितीय है। निर्व्यक्ति ठंडेपन और व्यक्तिगत मानवीय ताप में रची–बसी दोनों ही रूपों में विनय मिश्र की ग़ज़लें अपने समय के जरूरी सवालों और चुनौतियों का सामना करती हैं।

उड़ती चिड़ियों से सीखा है आज़ादी का मतलब हमने,
जिनको है शौक गुलामी का दरबार से होकर गुजरेंगे

अपनी ग़ज़लों में आज के समय के ऐसे प्रश्न और चुनौतियों का सामना करने वाले विनय मिश्र की ग़ज़लों में भारतीय परंपरा के लक्षण दृष्टिगत होते हैं। इसीलिए उनकी ग़ज़लें संवेदना की उज्ज्वल अनुभूतियाँ हैं। वैसे परंपरा कारण और कार्य का सातत्य माना गया है पर यह भी है कि परंपरा शब्द इतनी परिभाषाओं के संपर्क में पड़ा है कि इसका अर्थ ही धूमिल हो गया है। सच तो यह है कि परंपरा कोई आकाशबीर नहीं है वह रस लेती है बाहर से पर उसकी जड़ें होती हैं, और परंपरा का अर्थ प्राचीन से चिपकाव नहीं है क्योंकि परंपरा में स्वीकार और परिहार दोनों चलते रहे हैं कुछ छूटता है तो कुछ जुड़ता भी है पर एकदम लोप किसी भी चीज का नहीं होता। भारतीय परंपरा की विशेषता उसकी अतिक्रामी क्षमता है हमारे देश के प्रसिद्ध संस्कृतिवेत्ता गोविंद चंद्र पांडेय ने 'द मीनिंग एंड प्रासेस ऑफ कल्चर' में लिखा है कि भारतीय परंपरा का रुझान मनुष्य के भीतर अपने अतिक्रमण की संभावना और उस अतिक्रमण की आवश्यकता जगाने की ओर है। ऐसा नहीं कि विनय मिश्र परंपरा की धारा में बह जाते हैं। उनकी ग़ज़लों में भारतीय कविता परंपरा के सभी लक्षण दिखाई तो देते हैं पर इनकी ग़ज़लों में हिंदी कविता के हज़ारों वर्षों की अविछिन्न परंपरा के तत्व उपस्थित हैं। वे अपने गहन परंपराबोध से वे हमारे गुज़रे हुए वक्त और आज के समय के बीच एक पुल बनाते हैं व अपनी प्रखर आलोचनात्मक चेतना से हमारे समय–समाज की सम्यक समीक्षा भी करते हैं। परंपरा के संदर्भ में इतना बहुआयाती रचनाकर्म अन्यत्र दुर्लभ है। विनय मिश्र की 'लोग जिंदा हैं' की ग़ज़लें इसका उदाहरण है कि वे एक साथ परंपरावादी, परंपराभंजक व परंपराशोधी कवि हैं। वे अपनी प्रतिभा के अनुरूप और समय की आवश्यकता के अनुसार नई दिशा की ओर मुड़ते हैं। अतीत को स्वायत्त करने का प्रयत्न करते हुए उसे वर्तमान के प्रकाश में देखते हैं।

हिंदी ग़ज़ल समकालीन कविता का अब प्रमुख स्वर है विनय मिश्र की ग़ज़लों में उनका कोई तख़ल्लुस नहीं मिलेगा एक तो वे समकालीन हिंदी ग़ज़ल के ऐसे ग़ज़लकार हैं जिनकी ग़ज़लें अपने आब–ताब, अपनी पारदर्शिता और मौलिकता के कारण आसानी से पहचानी जा सकती हैं। दूसरे उनका डिक्शन ही उनका प्रतीक बन चुका है। उनकी रचनाएँ ही उनकी पहचान हैं क्योंकि अपने समय का सीधे सामना करने के मामले में, विनय मिश्र की ग़ज़लें बहुत सचेत रही हैं। आज ग़ज़ल के सामने सबसे बड़ी चुनौती फॉर्मेलिटी से निकलकर नेचुरल होने की है जो– 'लोग ज़िंदा हैं' ग़ज़ल संग्रह की ग़ज़लों में दिखाई देता है। समकालीन हिंदी ग़ज़ल के प्रवर्तक दुष्यंत कुमार के तेवर, काव्य भाषा और अंतर्वस्तु को अपने अंदाज़ और दृष्टि बोध से आगे ले जाने में विनय मिश्र का महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान समय में मनुष्य के व्यक्तित्व और चरित्र का जो विकृतीकरण और अवमूल्यन इधर हुआ है उसकी चिंता इनकी ग़ज़लों में दिखाई देती है। कभी–कभी एक साधारण सच्चाई तक पहुँचने के लिए भी बहुत लंबा सफ़र तय करना पड़ता है या यूँ कहें कि एक अंतिम छोर से शुरू करना होता है। विनय मिश्र बार–बार उस सच्चाई को महसूस करते हैं उसे जीते हुए उस छोर को छूते हैं। आज विकसित और विकासशील दोनों ही समाज एक तरह के संकटों में रह रहे हैं पर यह सब विकास के नाम पर मनुष्य का ही तो किया धरा है। इस विकासशील आँधी का प्रभाव हर कदम पर हमारे सामने है चाहे वह जन, जंगल, जमीन पर पड़ते प्रभाव हों या रोज की ज़िदगी पर पड़ने वाला असर हो। यहाँ तक कि कोरोना महामारी भी मानवजनित हैं। तो हमारा दिमागी सफर हमें किस ओर ले जा रहा है–

यह जो सारा दिमागी सफर है,
इस तरक्की में भी एक डर है

तरक्की में डर का होना कोई छोटी व्यथा नहीं है बल्कि मानव जाति के लिए एक चुनौती है एक प्रश्न है। इतने सरल शब्दों में ऐसी गंभीरता को लाना कोई सधा हुआ ग़ज़लकार ही कर सकता है।

विनय मिश्र उन विरले लेखकों में से हैं जिन्होंने सृजनात्मक लेखन के साथ–साथ गंभीर साहित्य चिंतन भी किया है। इनकी ग़ज़लों में हमारे समय की जटिलताएँ गुनगुनाते हुए आती हैं। अनुभव नए–नए रूपाकारों में चुनौती और सपने लेकर आता है। इन्होंने अपने समय, समाज और इतिहास की तमाम जटिलताओं को उसके अंतर्विरोधों और विसंगतियों को, विरोधाभासों विडंबनाओं को पर्त–दर–पर्त खोला है। इसके साथ ही इनकी ग़ज़लों में विविधता है क्योंकि इनमें गहराई से अनुभव करने की सामर्थ्य है जिसके पीछे विराट दृष्टि है। ग़ज़ल के लिए जिस वस्तु और रूप की विशिष्ट कथन–भंगिमा चाहिए होती है वह स्वतः ही इनके यहाँ दिखाई देता है। विनय ने अपनी भाषा को जनकाव्य भाषा और अपने समय की भाषा के रूप में विकसित किया है। इनकी ग़ज़लों में कथ्य और शिल्प के धरातल पर हिंदी ग़ज़लों की विकास यात्रा को देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों की भाषा संपदा लोकजीवन से ग्रहण की है और उसके माध्यम से ऐसी अंतर्वस्तु की संरचना की है, जो एक तरफ तो नाद–सौंदर्य को बढ़ाती है, दूसरी तरफ गंभीर अर्थ –सौंदर्य से अनुप्राणित है। प्रयोग करते हुए इस संदर्भ में उनकी ग़ज़लों के शेर देखें–

जहाँ धूप हँसती हो गाती हो शामें/मैं उस दिन को लाने की ज़िद पे अड़ा हूँ

निस्संदेह हिंदी ग़ज़ल की वास्तविक गरिमा जन–संवाद की भाषा में है, लेकिन सामान्य बोलचाल की भाषा देखने में जितनी सहज, स्पष्ट और सादगी भरी होती है; साहित्य विशेषकर ग़ज़ल में उसका प्रयोग उतना ही पेचीदा, तनावपूर्ण और जोखिम भरा होता है। सामान्य भाषा रोज के प्रयोग से जुड़ी होने के कारण बहुत घिसी–पिटी और सामान्य सी लगने लगती है। उसमें जब तक काव्य की चमत्कारी शक्तियाँ नहीं समाहित होतीं वह किसी योग्य नहीं रहती। अपनी भाषा को बहुत ज्यादा तराशने और माँजने के बाद रचनाकार इस स्तर पर पहुँच पाता है। जो लोग कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की भाषा की सादगी के कायल हैं, वे यह भी जानते होंगे कि उनकी सामान्य सी दिखने

वाली भाषा एक साथ कितने स्तरों पर चलने की सामर्थ्य रखती है। महान रचनाकारों की विशिष्ट प्रतिभा सामान्य भाषा को काव्य–भाषा में इतनी सहजता और बारीकी से रूपांतरित करती है कि पाठक परिवर्तन की इस प्रक्रिया को नहीं पकड़ पाता और काव्य की विशिष्ट सौंदर्यात्मक भाषा की सादगी और सरलता को सामान्य भाषा समझता है। शायरी की भाषा बोलचाल की भाषा से इस प्रकार भिन्न है कि वह अपनी बाह्य संरचना के साथ अंतःसंरचना और कई बार गूढ़ अंतःसंरचना से भी काम करती है; जिससे सीधे–सादे शब्द भी बहुआयामी और गंभीर भावों को प्रस्फुटित करने लगते हैं। 'लोग जिंदा हैं' संग्रह की ग़ज़लों में प्रभावशाली भाषा, बिंब और प्रतीक जो अपने समय के गतिशील यथार्थ को आधुनिक दृष्टि के साथ, अपने भाषा संस्कार को समेटे हुए है। सरल भाषा का एक उदाहरण देखें– *कुछ जीवन के प्रश्न बड़े हैं कुछ अपनी भी सीमाएँ/हाथ हवन करते जलते हैं कैसे दे हम समिधाएँ*– इस शेर की कला और इसका निखार इसकी व्यंजना में है जहाँ एक मुहावरा 'हवन करते हाथ जले' जीवन– यथार्थ के बीच से गुजरता है। और बहुत ही समरस भाषा में अपना अर्थ भी कह जाता है।

विनय मिश्र की ग़ज़लों में पानी और नदी, की खास जगह है। यह रूपक इंद्रियनिष्ठ कल्पना जगत की याद दिलाते हैं। साहित्य में मुक्त छंद की काव्य विधा के आने के बाद कविता में गेयता परंपरा बहुत कम हो गई है पर छांदस कविताओं और ग़ज़लों ने इस व्यवहार को अब भी जीवित रखा है। ग़ज़ल का सौंदर्यबोध उसे जीवित बनाए रखने की अपेक्षा भी करता है। इसका एक कारण है कि ग़ज़ल के तीव्र भावावेग का संगीत या राग से नैसर्गिक संबंध भी है। ग़ज़ल और संगीत का इतना गहरा रिश्ता है कि ग़ज़ल का जिक्र होते ही उसकी संगीतात्मक छवि मन में स्वतः उभर आती है। इसका यह अर्थ कदापि न लिया जाना चाहिए कि जिसे गाया न जा सके, वह ग़ज़ल नहीं हो सकती, बल्कि यह कि अतिशय भावोद्रेक तथा अनुभूतियों की गहनता ग़ज़ल को राग में परिवर्तित कर देती है।

भावात्मकता, संक्षिप्तता, मितभाषिता, कोमलकांत पदावली सें संपन्न भाषा तथा मुक्तक शैली किसी ग़ज़ल को गाए जाने योग्य बना देती है तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। वैसे भी अनुभूतियों की प्रबलता और सघनता से ही ग़ज़ल की गेयता अनुशासित व नियंत्रित होती है। ग़ज़ल में यह लयात्मकता उसकी छंद–योजना या बहरों के सौंदर्य पर आधारित होती है। इस संदर्भ में यह बताना उचित होगा कि विनय मिश्र की ग़ज़लें गाई भी जा रही है और लोकप्रिय भी हो रही हैं।

'लोग जिंदा हैं' संग्रह अनेक मायने में विशिष्ट और पढ़े जाने योग्य है। इसमें भारत की जातीय चेतना, मिथकों, विश्वासों, प्रतीकों की प्रतिष्ठा के साथ उनका पुनर्पाठ है और जो प्रत्यक्षवाद और वस्तुनिष्ठवाद से बहुत आगे है। प्रतीकों में अपनी बात रखने वाले ग़ज़लकार विनय मिश्र ग़ज़ल जैसे लोकप्रिय काव्य रूप को नए समय और उसकी समकालीन भाव–भंगिमाओं से जोड़ने का लगातार प्रयास करते हैं एक शेर का उदाहरण लेते हैं– *राम वन में हैं तो इक दिन राम लौटेंगे/ज़िंदगी तुम राम का वनवास ही तो हो*

इस शेर में विनय मिश्र लगभग भक्ति और विस्मय के रहस्यवादी कवि लगते हैं। भक्ति और विस्मय जो प्रकृति और आदमी को किसी सदाशयी वजूद से जोड़ता है।

हिंदी समकालीन ग़ज़ल के संदर्भ में आजकल अक्सर देखने को आता है कि मानो ग़ज़ल रचना के लिए आशु बुद्धि और तेज कलम काफी है पर समकालीन हिंदी ग़ज़ल के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना है यह विनय मिश्र जानते हैं इसलिए इनके इस संग्रह की ग़ज़लों में शिल्प, भाषा – प्रयोग या कलात्मक शैली में कोई न कोई नयापन लगभग हर शेर में देखा जा सकता है। वे ग़ज़ल को काव्यशास्त्रीय संतुलन के साथ साधते हैं और अपने शेरों में शब्द चित्रों के अलग ही रंग भरते हैं। सच तो यह है कि कलात्मक सृजन में रचनाकार का व्यक्तित्व भी शामिल होता है। उनकी ग़ज़लों में आज की सियासत और उसके राजनीतिक चरित्र का भी सटीक वर्णन है।

सो रहे हैं लोग या पथरा गई संवेदना,/इन
सियासी तालियों में चीख की संगत नहीं"

'लोग जिंदा है' ग़ज़ल संग्रह के परिचय के आलोक में आज के महत्वपूर्ण युवा जनधर्मी आलोचक श्रीधर मिश्र ने जो लिखा है वह महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं कि– "विनय मिश्र की ग़ज़लों में भारतीय कविता परंपरा के सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। वे एक साथ परंपरावादी, परंपराभंजक व परंपराशोधी कवि हैं। परंपरा के संदर्भ में इतना बहुआयामी रचनाकर्म अन्यत्र दुर्लभ है। विनय मिश्र की संवेदना का आयतन परिसर वृहत्तर है, आलोचनात्मक चेतना प्रखर है, जिससे वे अपने समय–समाज की सघन समीक्षा करने में तो सफल होते ही हैं, साथ ही वे शेरों को उनके उसी आकार में रखते हुए उनमें अर्थ का स्पेस भी बढ़ा देते हैं। विनय मिश्र की ग़ज़लों में हमारी जातीय चेतना, विश्वासों, प्रतीकों, मिथकों की पुनर्प्रतिष्ठा तो हुई ही है, वे इन सबका समकालीन संदर्भों में पुनर्पाठ कर अतीत व वर्तमान के बीच एक पुल भी बनाते हैं। विनय मिश्र की ग़ज़लों में गुजरे समय के अनुभव हैं, वर्तमान को बेहतर बनाने की जद्दोजहद है और आने वाले समय के लिए एक बेहतर दुनिया का स्वप्न है। इस प्रकार वे एक साथ तीन कालों में हस्तक्षेप करने वाले निरंतर वर्तमान के कवि हैं।"

विनय मिश्र की रचनात्मक विकास यात्रा समसामयिक रचना दृष्टि से मौलिक और अलहदा नदी के द्वीप जैसी दिखाई देती है जो प्रेरणादायक ताजी और प्रगतिशील है। उनकी ग़ज़लें पढ़ने के साथ–साथ बोलती हुई लगती हैं, जो उनकी काव्योपलब्धि है। उनकी इस संग्रह की ग़ज़लें संरचना, संवेदना, वैचारिक अंतर्वस्तु, मुहावरे और अर्थ निर्माण की प्रक्रिया में गहराई लिए हुए बेचैन और प्रेरित करती हैं। इसके साथ ही इसमें अतीत की स्मृतियाँ, अपने समकाल की चुनौतियों व भविष्य के प्रति सघन आशालोक की छवियाँ व अनुगूँजे हैं। साहित्य के लिए विचारधारा का अपना महत्व है, परंतु किसी रचनाकार के लिए उससे महत्वपूर्ण होती है उसकी जीवन दृष्टि। किसी रचनाकार की परख करते समय यह देखना आवश्यक होता है कि रचना के सरोकारों में जीवन–बोध की सकारात्मक छवियाँ जागृत हैं अथवा नहीं। विनय मिश्र की ग़ज़लों की निर्मिति ही जीवनबोध की बेचैनियों के चलते है। उनका समूचा रचना–संसार ही जीवन सापेक्ष है और वे मानते हैं कि मानव जीवन का समूची सृष्टि से अन्योन्याश्रित संबंध है। अतः उनके यहाँ जीवनबोध की निहितार्थ समूची सत्ता से है और उनकी चिंताओं में मानव व मानवेतर जगत एक साथ समाहित है। नदी, पहाड़, फूल–पत्तियाँ, पेड़–पौधे, जीव, हवा मौसम, मिट्टी यदि सकुशल होंगे तभी मानव जीवन भी सुरक्षित है। यह एक भारतीय कवि का चिंतन है जो एक बेहतर दुनिया का सपना समेटे हैं। इस संग्रह की ग़ज़लें इसकी गवाह हैं कि विनय मिश्र कि यह ग़ज़लें सामाजिक सृजनशीलता से लेकर ऐतिहासिक नवीनता की परिधि तक फैली हैं। 'लोग जिंदा है' संग्रह अपने अंदर नए मोड़ के कई नाजुक कोण की लचक और थरथराहट समेटे हुए हिंदी ग़ज़ल का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसकी आवरण कलाकृति जानेमाने कलाकार कुँवर रवींद्र की है। 118 पृष्ठों वाली इस पुस्तक की साज–सज्जा आर्कषक है। आशा है कि यह ग़ज़ल संग्रह पाठकों के बीच अपनी उपस्थित दर्ज़ करा कर उनका आदर प्राप्त करेगा।

– सी–54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20–आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली–110092

❑❑❑

आधुनिक नारी का जीवन संघर्ष और जिजीविषा

डॉ. संतोष खन्ना

प्रसिद्ध कहानीकार उषा देव ने लेखन का प्रारंभ दिल्ली विश्वविद्यालय के माता सुंदरी कॉलेज में 32 वर्ष के अध्यापन के बाद सेवानिवृत्त होने पर प्रारंभ किया था और सबसे पहले लिखा एक उपन्यास 'स्त्री का संघर्ष' जो उनका एक आत्मकथात्मक उपन्यास है काफी चर्चित रहा। तत्पश्चात, उन्होंने कहानियों का सृजन प्रारंभ किया तो बस कहानियाँ ही लिखती चली गईं जो उनके बारह कहानी संग्रह में दर्ज हैं। फिर वर्ष 2019 के अंत में उनका एक नया उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक है 'लरकाई की वह प्रेम पिपासा'। इस उपन्यास में एक नए विषय के साथ आज की आधुनिक नारी के जीवन की संघर्ष गाथा का चित्रण किया गया है जो स्वयं ही अपने जीवन के पन्ने खोलती हुई यह बताने का प्रयास करती हैं कि कैसे उसके अपने जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आए। अनेक संघर्षों के माध्यम से वह एक सफल साहित्यकार और प्रगतिशील महिला अवश्य बन गई फिर भी उसकी आत्मा अतृप्त और असंतुष्ट ही रही।

वास्तव में डॉ. उषा देव का यह उपन्यास 'लरकाई की वह प्रेम पिपासा' मनोवैज्ञानिक भाव भूमि पर रचा गया उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका मृदुला अपने जीवन का पग–पग पर आत्म विश्लेषण करती चलती हैं। वह अपने आप को ईमानदारी की हद तक विश्लेषित और अपने हर कदम और गतिविधि का मूल्यांकन करती चलती हैं। इसमें वे स्वयं ही वकील भी हैं और स्वयं ही न्यायधीश भी हैं और वह अपने जीवन का मूल्यांकन कभी भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में करती हैं कभी प्रचलित परंपराओं के संदर्भ में और कभी परिस्थितियों के संदर्भ में। अपने जीवन की उपलब्धियों और असफलताओं का विश्लेषण करते हुए स्वयं को कभी सही ठहराती हैं और कई बार स्वयं को गलत। यही उसके चरित्र को परिभाषित और व्याख्यायित करता है और उसी के आईने में पाठक भी अपनी राय बना सकता है कि जिन स्थितियों और परिस्थितियों विशेष में मृदुला ने अपने जीवन के फैसले लिए, वे कहाँ तक जायज थे।

मृदुला एक ऐसी सुशिक्षित और जागरूक नायिका है जो आधुनिक काल की जमीन से पैदा होने वाली चेतना से बनी एक आधुनिक नारी है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उपन्यासकार ने मृदुला का मनोवैज्ञानिक आधार पर इतनी बारीकी और पारदर्शिता से चित्रण किया

(लरकाई की वह प्रेम पिपासा (उपन्यास)/ लेखिका – डॉ. उषा देव/ हेमाद्रि प्रकाशन, 1/1955, गली नं. – 22, ईस्ट राम नगर, शाहदरा–110032/प्रकाशन वर्ष – 2019/कुल पृष्ठ – 164/ मूल्य – ₹300/–

है कि उसे हर कर्म, भाव, मनोभाव और वैचारिकता से समाज को प्रत्यक्ष नहीं, अप्रत्यक्ष रूप से सही और सार्थक संदेश मिलता है।

भारत के हिंदी साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना का सूत्रपात जैनेंद्र कुमार ने किया था। उनके उपन्यास 'सुनीता', 'परख' और 'त्यागपत्र' उनके प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। अज्ञेय जी का 'शेखरः एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने–अपने अजनबी' भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। डॉ. उषा देव के इस उपन्यास से गुजरते हुए जैनेंद्र कुमार के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'त्यागपत्र' की बरबस याद हो आती है। दोनों ही उपन्यास मनोविज्ञान की भावभूमि पर रचित उपन्यास हैं और दोनों के मुख्य महिला पात्र मृदुला और मृणाल में कई प्रकार की समानता नजर आती है, अंतर काल विशेष का है। जैनेंद्र कुमार के 'त्याग पत्र' की महिला पात्र मृणाल बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध काल की नारी हैं जब महिलाओं को आजादी के नाम पर कोई सुविधा नहीं होती थी जबकि मृदुला के बारे में कह सकते हैं कि वह इक्कीसवीं शती में प्रवेश कर चुके काल विशेष की नारी हैं जब महिलाओं को आगे बढ़ने के प्रर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं बेशक समाज की सोच में नारी के बारे में अभी भी पूर्वाग्रह व्याप्त हैं।

उपन्यासकार अपने उपन्यास के साथ लिखे 'दो शब्द' में नायिका के बारे में स्वयं ही लिखती हैं, "बालक–बालिकाओं के युवावस्था में पदार्पण करते ही जो बायोलॉजिकल परिवर्तन होता है वह स्वयंमेव उनके भाव भंगिमा में उथल–पुथल मचा दिया करता है यह भी जरूरी या संभव नहीं कि वे अपने दिलो–दिमाग में उठने वाले भावों को पूर्णतया सन्यमित कर पाएँ। उपन्यास की नायिका इसका जीवंत उदाहरण है।" हाँ, मृदुला के साथ भी यही हुआ था कि उसके किशोरअवस्था में ही उसके पिता के पास टयूशन पढ़ने आने वाले शोभित से प्यार हो गया था। उसका परिणाम भी उसे भुगतना पड़ा था जब उसकी माँ को पता चला कि वह गर्भवती हो गई थी जिसके लिए माँ ने उसकी खूब पिटाई की थी और कोई दवा खिलाकर उसे उससे छुटकारा दिलाया।

'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल की भाभी को जब पता चला कि वह अपनी एक सहेली के भाई से प्यार करने लगी है तो उसकी खूब पिटाई की क्योंकि वह उसे आदर्श नारी बनाना चाहती थीं। उसके बाद उसका एक दहेजू व्यक्ति से विवाह कर दिया जाता है जो उसे बाद में छोड़ देता है। हाँ, मृदुला को अपनी पढ़ाई जारी रखने की इजाजत थी। मृदुला पढ़ाई कर रही थी और उसने एम. फिल कर लिया था और साथ में नौकरी भी करने लगी थी।

शोभित पढ़ाई पूरी कर नौकरी लगने पर विदेश चला गया था और जब वह वापस आया तो उसने अपने घर की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण अपने बॉस की बेटी से विवाह कर लिया।

मृदुला ने इतने वर्ष शोभित की प्रतीक्षा की किंतु वहाँ भी उसे छल का सामना करना पड़ा क्योंकि वह अपनी बॉस की बेटी से विवाह कर लेता है इसके बावजूद एक बार पुनः उसे अपनी चाल का शिकार बनाता है। उससे प्यार के नाम पर उससे पुनः दैहिक संबंध स्थापित करता है। ऐसी स्थिति को मृदुला ने अपने ही शब्दों में व्यक्त किया है, "एक समय मैं उसके प्यार में पागल थी तो मिलन हुआ और अब यह प्यार के कारण या तीव्र यौनइच्छा के कारण।" वह रात को सोते समय खुद से ही पूछ बैठी, "क्या आज के घटित इस सारे वाकये पर मुझे अफसोस या आत्मग्लानि थी" उसे अपनी आवाज सुनाई दी, 'नहीं'। इस प्रकार वह अपनी हरकतों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करती दिखाई देती है। फिर माँ–बाप उसका विवाह डॉ. चंद्रेश से कर देते हैं। वह यह विवाह करना क्यों स्वीकार करती है, उसी के शब्दों में "इस विवाह का मुख्य कारण तो यह था मम्मी–पापा का मेरे प्रति बेरूखापन और स्वयं मेरे भारतीय नारी के आदर्शों से स्खलित होना।" इन शब्दों से पता चलता है कि वह अवचेतन में अपने कैशोर वय के प्यार को सही नहीं ठहराती। चंद्रेश से विवाह को

वह जी जान से निभाने का प्रयास करती है। पहली संतान लड़की होती है जिसके पालन–पोषण की जिम्मेदारी उसकी सास संभाल लेती है। बाद में पुनः गर्भ ठहरने पर पति उसे कन्या भ्रूण हत्या के लिए बाध्य करता है। और वह पति के फैसले का विरोध नहीं करती चाहे इसके लिए वह अपराध बोध से भर उठती है। बाद में एक और बच्चा लड़का पैदा होता है।

वे पूरे मन से रिश्ते को निभाने का प्रयास करती है। उसके दोनों बच्चों एक लड़का और लड़की को उसकी सास पालती है। बच्चों के पालन–पोषण की जिम्मेदारी ना होने पर वह पति की हर इच्छा पूरी करने का प्रयास करती है यहाँ तक कि पति की इच्छा के कारण मद्यपान भी करती हे। नौकरों–चाकरों वाले उसके घर में समय ही समय है वह एक सुशिक्षित नारी है अतः वह अपने लेखन कार्य में व्यस्त हो जाती है और सफल लेखिका भी बन जाती है परंतु लेखन के क्षेत्र में उसकी उपलब्धियाँ पति को फूटी आँख नहीं भाती। इसके लिए पति से प्रशंसा की तो बात ही क्या उल्टे तिरस्कार के साथ–साथ एक अवसर पर उसे घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। वह अपने आत्मसम्मान को और आहत होते नहीं देखना चाहती। चाहे सास उसकी समस्या और पीड़ा को समझती है परंतु वह उसे यही कहती है कि तू पति के मन मुताबित बनने की थोड़ी और कोशिश कर। परंतु वह स्वाभिमानी स्त्री कह उठती है, "जो पुरुष वाक् वाण ही नहीं, हाथ उठाकर नारी का अपमान करने पर उतारू हो जाए, उसके साथ नारकीय जीवन जीना मुझे सहन नहीं हो सकेगा।" और वह जब तलाक़ देने की धमकी देता है तो वह उस से तलाक लेने के लिए तैयार हो जाती है और घर छोड़ देती है।

तत्पश्चात, वह अपनी एक सहेली ममता के घर रह कर लेखन और पब्लिशिंग हाउस में काम कर अपने को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने में जुट जाती है। लेखन के उद्देश्य से उसका नैनीताल में जा कर रहना भी उसे एक सफल लेखिका बनाता है परंतु यहाँ उसके संपर्क में आया सतीश उसके लेखन से और उसकी मन की सुंदरता और विचारों से प्रभावित होकर उसे प्रेम करने लगता है और वह भी उसे रोकती नहीं, बल्कि उसकी ओर आकर्षित हो उससे कोर्ट मैरिज कर लेती है। सतीश उसके अतीत के बारे में सब जानते हुए भी और उससे आयु में छोटा होने पर भी उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। यह संबंध भी केवल ग्यारह महीने ही चलता है। सतीश जब चाहता है कि उसे भी अपने बच्चे चाहिए क्योंकि बेशक मृदुला के दो बच्चे हैं परंतु वह कहता है "खुद खाने से पेट भरता है, दूसरे की थाली निहारने से नहीं।" मृदुला उसे बताती है कि यह संभव नहीं, क्योंकि उसने दो बच्चों के जन्म के बाद अपना ऑपरेशन करवा लिया था। वह उस पर सच्चाई छिपाने का इल्ज़ाम लगाता है। मृदुला उसे कहती है वह दूसरा विवाह कर ले, वह उसे मुक्त कर देगी।

बाद में वह स्वयं से बतियाती कहती है, मैंने अपने विषय में इस सबका खुलासा क्यों नहीं किया? प्रश्न उठना स्वाभाविक था पर सतीश ने तो मौका ही नहीं दिया था। वह तो शीघ्र अति शीघ्र मुझे मेरे शरीर को पाने की ललक में था।.... यदि मैं अपने ऑपरेशन की बात स्पष्ट कर देती तो .....तो नहीं ....नहीं। मैं स्वार्थी थी। सतीश की मम्मी ....आंटी ने भी तो कहा था कोई ठीक–ठाक व्यक्ति मिल जाए तो शादी कर लेना। .....क्या हम कई बातों को छिपाया नहीं करते? हाँ...हाँ छिपाते हैं और छुपाना भी पड़ता है मैंने कोई अपराध नहीं किया।

इस संबंध में 'त्यागपत्र' उपन्यास की नायिका मृणाल अपने चरित्र में एक ऊँचे पायदान पर खड़ी नजर आती है। उसने कोई छल नहीं किया। उसने अपने पति से झूठ नहीं बोला। वह विवाह पूर्व अपने संबंध के बारे में पति को बता कर अपने पति के प्रति समर्पित होना चाहती है पर उस समाज के पति परमेश्वर ने उसे चरित्रहीन और हरामजादी कह कर घर से निकाल बाहर कर

दिया था। क्या सच बोलना उसकी बेवकूफी थी?

मृणाल के संबंध में कह सकते हैं कि पति के परित्याग के बाद वह भी एक पुरुष कोयले वाले के संपर्क में आती है जो उसके रूप पर मोहित हो उसकी मदद करता है और वह भी उस से अपना संबंध ईमानदारी से निभाने का प्रयास करती है किंतु वह एक शादीशुदा व्यक्ति था जिसे उसके जीवन से देर सवेर जाना ही था। उससे उसकी एक लड़की पैदा होती है जिसका जीवन बचाया नहीं जा सका था।

इसके बाद वह एक संभ्रांत परिवार के संपर्क में आती है, वहाँ अन्य काम–काज के साथ वह बच्चों को पढ़ाती भी है। वहाँ वह सबसे प्रशंसा भी पाती है। किंतु परिस्थितियाँ देखिए, उसी परिवार की लड़की से उसके भतीजे प्रमोद का विवाह तय हो जाता है जिसके कारण वह वहाँ से गायब हो जाती है यह सोच कर कि कहीं उसके अतीत की काली छाया प्रमोद के रिश्ते पर ना पड़े। उसके बाद जो भी स्थितियाँ बनी वह एक ऐसे असभ्य समाज में पहुँचती है जहाँ किसी प्रकार के छल की आवश्यकता नहीं थी। उसी अशिष्ट समाज ने उसे शरण दी वरना शिष्ट समाज तो हमेशा उसे दुष्चरित्र ही तो देखता रहा था यहाँ तक खुद का परिवार उसे 'कुल बोरन' कहकर पुकारता था।

इधर सतीश दूसरा विवाह कर लेता है और उसके दो बच्चे हो जाते हैं परंतु इस उपन्यास की नायिका मृदुला के जीवन में अभी एक मोड़ और आने वाला है। पब्लिशिंग हॉउस का मालिक सुधांशु, जो उसके साहित्य के प्रकाशन में, उसके एक उपन्यास पर फिल्म बनवाने तथा उसे विदेश से पुरस्कार दिलाने में मदद करता है उसे दिल्ली बुलाता है और उसके सामने उसे अपनी जीवनसंगिनी बनाने का प्रस्ताव रखता है क्योंकि उसकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी है और बेटा विदेश में जाकर बस गया है की मदद करता है। सुधांशु के प्रस्ताव पर अभी वह कोई फैसला नहीं ले पा रही थी। पर जब वह अपने बड़े हो चुके बच्चों से मिलने जाती है तो उसे वहाँ पर तिरस्कार और भर्त्सना का सामना करना पड़ता है उसकी बेटी अनन्या कहती है, 'हाँ! हाँ! तुमने जो किया बस वही ठीक था। सारी दुनिया गलत और झूठी है। वहाँ चंद्रेश की बुआ भी उसे कह उठती है, "तुमने तो मेरे भाई के परिवार को मिट्टी में मिला कर रख दिया। सुना है तुमने दूसरी शादी भी कि और फिर वहाँ से भी तलाक ले लिया। चंद्रेश ने पुरुष होते हुए दूसरी शादी नहीं की। हमेशा बच्चों के हित की सोचता रहा। माँ हो कि क्या? अरे, किसी एक परेशानी के कारण पुरुष नाराज़ हो भी जाए तो क्या घर बच्चे छोड़कर निकल जाना उचित था? अब मुँह उठाकर बच्चों से मिलने आ जाती हो।"

जिस मोड़ पर अब मृदुला आ खड़ी होती है उसके संबंध में इस उपन्यास के प्राक्कथन में प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. प्रवेश सक्सेना ने विचार व्यक्त किया है, "इस उपन्यास की नायिका वस्तुतः एक शक्ति स्वरूपा है जो जीवन में आने वाले पुरुषों के संबंधों यहाँ तक कि अपने बच्चों के मोह से स्वयं को उबार कर एक नई शुरुआत कि लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर सकी है सच में भावनात्मक रूप से बहुत दृढ़ बनकर ही मृदुला यह सब कर सकी।" किंतु मृदुला अंत तक अब तक की अपनी जीवन यात्रा को इन शब्दों में कह उठती है, "जब कभी मेडिटेशन करने के लिए अपनी आँखें बंद करके बैठती हूँ तो पहले शोभित मम्मी, फिरोज पापा, चंद्रेश 760 अनन्या संचित ममता आंटी, अंकल और यह महाशय सतीश बस एक के बाद दूसरे पात्र दिमाग में उपस्थित होते हैं घबराकर आँखे खोलती हूँ और सोचती हूँ क्या मैं ही गलत थी या हूँ हर पात्र मुझसे मेरे कारण खफा था या फिर मैं उनके अनुरूप न बन सकी।" किंतु फिर भी उसने अपने बच्चों के प्रति ममता, मोह, लगाव छोड़कर अपने भूत पर मोटा, गहरा और काला कंबल डाल दिया और एक नई डगर पर चल निकली।

इस उपन्यास में मृदुला के माध्यम से वर्तमान की सामाजिक विसंगतियों और विद्रुपताओं से जुड़ी अनेक समस्याओं को उठाया गया है और उनके

समाधान भी सुझाए गए हैं। इस उपन्यास में प्रयुक्त भाषा बहुत सहज और सरल है तथा लेखिका ने पूरे उपन्यास में मर्यादित भाषा का इस्तेमाल किया है। रोमांटिक क्षणों को भी मर्यादित ढंग से प्रस्तुत किया है। संवाद बड़े रोचक, पर सारगर्भित और सुरुचिपूर्ण हैं।

इसमें नायिका कहती हैं कि स्वयं को असंतुष्ट और अतृप्त मान चुकी हूँ। इस संबंध में लेखिका ने अपनी और से उसके चरित्र पर कोई टिप्पणी नहीं की परंतु अपने दो शब्द के अंत में संस्कृत का एक श्लोक अवश्य उद्धृत किया है। वह है–

कामैः सत्ष्णस्य हि नास्ति
तृप्तिर्यथेन्धनैर्वातसखस्य वहनेः।

(बुद्धिचरितम 11.10)

अर्थात् जिसे विषयों की तृष्णा है, उसे उसी प्रकार तृप्ति नहीं होती जिस तरह हवा चलने पर अग्नि की इंधन से नहीं होती।

– बी–4/48, पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली–110088

❑❑❑

लता जी का जाना
जैसे संगीत के सर से साए का गुजर जाना

विनोद अनुपम

एक महान व्यक्ति किस तरह अपनी परंपरा को मजबूत करता है, इस संदर्भ में लता जी से संबंधित यह जानकारी गौरतलब है। कविता कृष्णमूर्ति आज तो पार्श्वगायिका के प्रतिष्ठित नामों में शुमार है, लेकिन 1982 में लता मंगेशकर के लिए एक फिल्म में इन्हें बतौर डबिंग आर्टिस्ट एक गाने को आवाज देने का अवसर मिलना ही बड़ी बात थी। कविता जी ने अपना काम किया, पेमेंट लिया और भूल गई, लेकिन उन्हें आश्चर्य हुआ, जब एक मैगजिन में उन्होंने पढ़ा कि लता मंगेशकर ने डबिंग आर्टिस्ट कविता कृष्णमूर्ति की रिकार्डिंग सुनने के बाद गाना डब करने से इनकार कर दिया। कविता जी उस समय नवोदित थी, उन्हें लगा मुख्य गायिका के रूप में तो मौके नहीं मिलते, अब डबिंग से भी गए। पर एक दूसरी मैगजिन में पूरी कहानी मिली तो सम्मान से उनका मन भावुक हो गया, सच कुछ ऐसा था कि लता जी अपनी रिकार्डिंग कराने स्टूडियो आईं, उन्होंने डबिंग वर्सन सुना, दोबारा सुना और अपना फैसला सुनाया, इस लडकी ने तो इतना अच्छा गाया है, फिर मुझसे क्यों गवाना चाहते हो। संगीतकार बप्पी लहरी और फिल्म निर्माता लता जी को मनाते रहे, लेकिन उन्होंने साफ कहा आपकी धुन और शब्दों की जो माँग है, वह सब तो इस लड़की ने दिया है, उसी की आवाज रहने दीजिए। अंत में उन्होंने पूछा लडकी का नाम क्या है। ...यह थी लता मंगेशकर, जो उस पार्श्व गायिका के लिए खड़ी थी जिसका नाम भी वे नहीं जानती थीं।

अपने गानों की रिमिक्स पर वे संगीत के एक अभिभावक के रूप में स्पष्ट शब्दों में कहती थीं, अगर मेरे नाम और काम से किसी का भला होता है तो मैं अपने आप को खुशकिस्मत समझती हूँ। लेकिन मैं यह भी महसूस करती हूँ कि नकल करने से आपको लंबे समय तक सफलता नहीं मिल सकती है। किशोर दा, मोहम्मद रफी, आशा भोसले और मुकेश के गाने गाकर आकाँक्षी गायकों को कुछ समय के लिए अटेंशन मिलती है लेकिन यह ज्यादा समय तक नहीं रहता है। टीवी पर म्यूजिक शो में आने वाले प्रतियोगियों के लिए भी चिंता जताते हुए वे कहती थीं– कई बच्चे मेरे गाने बहुत ही खूबसूरती से गाते हैं लेकिन कितनों को उनकी पहली सफलता के बाद याद रखा गया होगा। मैं सिर्फ सुनिधि चौहान और श्रेया घोषाल को जानती हूँ। आकाँक्षी गायकों को लता जी ने सलाह देते हुए कहा कि ऑरिजिनल रहो। सभी सिंगर्स के एवरग्रीन गाने गाओं लेकिन कुछ समय बाद गायक को अपना गाना ढूँढना चाहिए। उन्होंने अपनी बहन आशा भोसले का उदाहरण देते हुए कहा कि अगर आशा अपने स्टइल में गाने की जिद नहीं करती तो वह मेरी परछाई बनकर रह जाती। वह इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण है कि व्यक्ति की प्रतिभा उसे कितनी दूर तक ले जा सकती है।

वास्तव में भारत रत्न लता मंगेशकर जब यह कहती हैं तो उनके सामने हिंदी सिनेमा में गायकों की एक ऐसी पीढ़ी होती है, जिसके लिए गायन से अधिक महत्वपूर्ण सफलता है। लता मंगेशकर के पीछे उनकी साधना, उनका समर्पण और उनका संघर्ष बोल रहा होता है। आज भले ही लता जी की आवाज प्रकृति प्रदत्त लगती हो, सच यही है इस ऊँचाई तक पहुँचने के लिए उन्हें भी किसी सामान्य मनुष्य की तरह संघर्ष करना पड़ा था।

पाँच वर्ष की उम्र में लता ने अपने पिता के साथ नाटकों में अभिनय करना शुरू किया। इसके साथ ही वह पिता से संगीत की शिक्षा भी लेने लगी। वर्ष 1942 में तेरह वर्ष की छोटी उम्र में ही लता के सिर से पिता का साया उठ गया और परिवार की जिम्मेदारी उनके ऊपर आ गईं। इसके बाद उनका पूरा परिवार पुणे से मुंबई आ गया। हालाँकि लता को फिल्मों में अभिनय करना जरा भी पसंद नहीं था बावजूद इसके परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी को उठाते हुए लता ने फिल्मों में अभिनय करना शुरू कर दिया। कहते हैं उस समय के मशहूर फिल्मकार गुलाम हैदर ने उनके सुर की पहचान की, और निर्माता एस. मुखर्जी से अपनी फिल्म 'शहीद' में गाने के अवसर देने की बात कही, लेकिन यह कह कर उन्होंने हैदर साहब का आग्रह ठुकरा दिया कि लता की आवाज अच्छी नहीं है। बाद में जो हुआ वह इतिहास है। लता जी अपने अंतिम दिनों तक निःसंकोच कहती रहीं थी, मैं तो सामान्य लोगों की तरह अभी भी सीख रही हूँ।

फिल्मों में पार्श्वगायन का लता जी का सफर 1942 में शुरू हुआ और 1949 में उन्होंने हिंदी सिनेमा को 'आएगा आने वाला, आएगा.. 'जैसा गीत दिया जो आज ही नहीं सदियों तक उसी तन्मयता से सुना जाता रहेगा। 'महल' का यह गीत मधुबाला पर फिल्माया गया था, कहा जाता है मधुबाला लता मंगेशकर की आवाज की शर्तों के साथ ही फिल्म साइन करती थी। खेमचंद प्रकाश इस गीत में लता की गायिकी से संतुष्ट नहीं हो रहे थे, उन्होंने इसे बार–बार गवाया और उसमें लगातार सुधार करते रहे। उस समय चूँकि रिकार्डिंग की तकनीक आज की तरह उन्नत नहीं थी, इसीलिए दूर से आती आवाज के लिए लता को माइक से दूर से गाना पड़ता था। लेकिन इस गीत के साथ लता ने जो जादू जगाया कि पंडित कुमार गंधर्व जैसे महान गायक ने बेहिचक स्वीकार किया, तानपुरे से निकलने वाला गंधार शुद्ध रूप में सुनना चाहो तो लता का 'आएगा आने वाला..' गीत सुनो। लता की आवाज ने अल्लाह तेरो नाम, ईश्वर तेरो नाम के रूप में देश को एक ऐसा प्रार्थना दिया जो फिल्मों से परे सीधे जन–जन तक पहुँच गया। 1961 में आई 'हम दोनों' में साहिर लुधियानवी के लिखे और जयदेव के संगीतबद्ध किए इस गीत को मंदिर में श्रद्धालुओं के साथ प्रार्थना करते हुए नंदा पर फिल्माया गया था।

शायद सीखने की ललक ही होगी कि लता मंगेशकर 70 वर्षों से अधिक तक हिंदी सिनेमा गायन के शीर्ष पर बनी रही। उनके गायन की विविधता इसी से समझी जा सकती है कि बाल अभिनेताओं के लिए उनकी आवाज सबसे बेहतर मानी जाती थी। उन्होंने भजन भी गाए तो कैबरे नंबर गाने में भी संकोच नहीं किया। मीना कुमारी से लेकर करिश्मा कपूर और प्रीति जिंटा, काजोल तक वे हिंदी सिनेमा के नायिकाओं की प्रतिष्ठित आवाज बनी रहीं। आज लता जी की यह सफलता ही है कि वे अपने व्यक्तित्व के बजाय कृतित्व के माध्यम से याद आती हैं। फिल्मों के नाम हम भूल गए हैं, उनके गाने के बोल याद हैं। आज गाने के मतलब बदल चुके हैं, अब गाने देखे नहीं सुने जाते हैं। यह वह दौर था जब गाने पहले सुने जाते थे, फिल्म दर्शकों के सामने बाद में आती थी। गाने को प्रमोशन वीडियो के सहारे नहीं, वीडियो का प्रमोशन गाने के सहारे किया जाता था। कह सकते हैं उस दौर में फिल्मों के प्रमोशन का एकमात्र विकल्प गाने ही थे।

गानों की लोकप्रियता में किसी सितारे की भूमिका नहीं होती थी, बल्कि संगीतकार और गायक के बल पर लोकप्रिय गीत, अभिनेताओं की लोकप्रियता के लिए आधार तैयार करते थे। शायद यही कारण था कि उस दौर में अभिनेताओं द्वारा

खास गायकों को अपनी पहचान के रूप में स्थापित कर लिए जाने का प्रचलन था। गायकों से भी भरसक उम्मीद रखी जाती थी कि वे जिस अभिनेता के लिए आवाज दे रहे होंगे, उनके मैनरिज्म का निर्वाह करेंगे। लता जी जब मीना कुमारी के लिए गाती थीं तो कुछ और होती थीं, नूतन के लिए कुछ और हेमा मालिनी के तो अधिकांश गीत उन्होंने ही गाए, लेकिन रेखा पर फिल्माएँ उनके गीत सुने तो रेखा के अनुरूप एक अलग अंदाज स्पष्ट महसूस कर सकते हैं। 1977 में ओ. पी. रल्हन ने जीनत अमान को लेकर एक फिल्म बनाई थी, 'पापी', इस फिल्म में संगीत दिया था बप्पी लहरी ने। खास बात यह थी कि इस फिल्म के लिए अपने स्वभाव के विपरीत लता जी ने कैबरे गीत को आवाज दी थी, जो पद्मा खन्ना पर फिल्माया गया था। स्वाभाविक है लता जैसे कलाकार को अपनी जवाबदेही का अहसास था, उन्हें पता था उनकी आवाज से उनके सितारे को स्थापित होना है। इसके लिए वर्षों के रियाज के साथ एक–एक गीतों पर उनके द्वारा मेहनत की जाती थी। जाहिर है अभिनेत्रियों की पीढ़ियाँ गुजर रही थी, लेकिन लता मंगेशकर विकल्पहीन बनी रहीं।

लता जी की आवाज और सुर का ही जादू कहा जा सकता है कि 'ऐ मेरे वतन के लोगों की' धुन आज गणतंत्र दिवस के अवसर पर राजपथ पर सुनी जा रही है। 1962 के भारत चीन युद्ध के बाद जब देश हतप्रभ हताश सा था, लता जी के इस गीत ने राष्ट्रप्रेम की एक लहर सी खड़ी कर दी थी। यह गीत बलिदानी सैनिकों की याद में गाया था। प्रदीप के लिखे इस गीत को संगीत दिया था सी. रामचंद्र ने। पहली बार लता ने दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में 26 जनवरी, 1963 को गाया था, और फिर लता के हर कन्सर्ट के लिए अनिवार्य सा हो गया था यह गीत। उस कार्यक्रम में राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू भी मौजूद थे। कहते हैं गीत समाप्त होने के बाद फिल्मकार महबूब खान लता जी को पं. नेहरू के पास ले गए थे। नेहरू की आँखें छलछला रही थी, और उन्होंने कहा कि जो भी इस गीत से प्रेरित नहीं हुआ वो हिंदुस्तानी नहीं है।

लता की आवाज को दैवीय माना जाता है। उस्ताद बड़े गुलाम खान इन्हें अल्लाह की देन कहते थे। उनके गाए भजन में उनकी तन्मयता और लयता आज भी भावविभोर कर देती है। 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो' को सुन कर देखें। 1980 के आरंभिक दशक की बात थी गांधी जी पर एक फिल्म बन रही थी। तब लता मंगेशकर ने सोचा कि गांधी जी पर कुछ गाने रिकार्ड किए जाएँ। फिर म्युजिक इंडिया के लिए गांधी जी के प्रिय भजनों का एक अल्बम बनाने की बात हुई। गीतकार पंडित नरेंद्र शर्मा ने गांधी की प्रार्थना पुस्तक से चार भजन निकालकर दिए। और इस तरह से इस गाने का एक रिकार्ड बनाया गया। जब ये गाना रिकार्ड हो रहा था तो पंडित नरेंद्र शर्मा ने कहा था कि राम–राम की तुम मन से सेवा करो तो सारे कार्य सिद्ध होते हैं। नरेंद्र शर्मा ने कहा था कि तुम्हारा ये गीत सबसे अधिक चलेगा। लता ने बताया कि उनका रिकार्ड सबसे अधिक बिका। वो इसको रामजी का आशीर्वाद मानती हैं।

कतई आश्चर्य नहीं कि रियलिटी शो के माध्यम से 50 और 60 के दशक के लता जी के गानों के रिमिक्स के प्रचलन ने एक बार फिर जोर पकड़ा है। लता जी जब कहती थी, ओरिजनल रहो, तो उनका गायन की वर्तमान स्थिति के प्रति इस दर्द को महसूस किया जा सकता था।

लता जी को सच्ची श्रद्धांजली तब होगी जब पार्श्वगायन को एकबार फिर मशीनों से मुक्त कर सुर और लय की मौलिकता में बाँधने की कोशिश करेंगे। चुनौती कठिन है लेकिन लता की परंपरा जीवित रखने के लिए जरूरी भी।

– बी–53, सचिवालय कॉलोनी, कंकड़बाग, पटना–800020

❑❑❑

बप्पी लहरी : जिनके संगीत में थी सोने सी चमक–दमक

नीति सुधा

आलोकेश लहरी को दुनिया बप्पी लहरी के नाम से जानती है। सोने के गहनों से लदे, भड़कीले जैकेट, काला चश्मा और चेहरे पर मुस्कान लिए बप्पी दा के संगीत में यदि डिस्को की चमक थी, तो ग़ज़ल की सादगी और ठहराव भी था। दिलीप कुमार से लेकर रणवीर सिंह तक की फ़िल्मों के लिए संगीत दे चुके गायक–संगीतकार बप्पी दा को ट्रेंड–सेटर माना जाता है। उनके संगीत ने भारतीय फ़िल्मों को युवा बना दिया था। अपने करियर के चरम पर 80 के दशक में उन्होंने 33 फ़िल्मों के लिए 180 से अधिक गाने रचने का रिकॉर्ड कायम किया था।

'जिंदगी मेरा गाना, मैं इसी का दीवाना', बप्पी लहरी पर यह अंतरा सटीक बैठता है। वे कोलकाता के एक संगीत परिवार में जन्मे और संगीत में ही रच बस गए। उनके माता–पिता संगीतकार थे और पार्श्व–गायक किशोर कुमार उनके रिश्तेदार। तीन साल की उम्र से ही उन्होंने तबला बजाना शुरू कर दिया था और उन्नीस की उम्र तक उन्होंने सिनेमा जगत में दस्तक दे दी थी। कहा जाता है कि सचिन देव बर्मन की शास्त्रीय धुनों से प्रेरित होकर वह फ़िल्मों में आए थे। जब बप्पी लहरी ने हिंदी फ़िल्म उद्योग में कदम रखा, तब शंकर जयकिशन, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, एसडी बर्मन, ओपी नैय्यर और कल्याणजी–आनंदजी जैसे दिग्गजों की धूम थी। ज़ाहिर है, इस युवा संगीतकार के लिए संभावनाएँ कठिन रही होंगी। लेकिन उन्होंने अपनी अलग राह बनाई। 1975 में आई फ़िल्म 'ज़ख्मी' के गीतों से बप्पी लहरी ने पहली बार युवा दिलों को छुआ, चाहे वो किशोर कुमार की आवाज़ में 'ज़ख्मी दिलों का बदला चुकाने' हो या आशा भोसले, किशोर कुमार द्वारा गाया गया 'जलता है जिया मेरा भीगी–भीगी रातों में'। इस फ़िल्म के गीत इतने लोकप्रिय हुए कि फ़िल्म उद्योग में हलचल मच गई। इसके बाद बप्पी दा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। 'ज़ख्मी' के बाद आई फ़िल्में 'चलते–चलते', "आप की खातिर" अपने गीतों को लेकर आज भी याद की जाती हैं।

बप्पी लहरी युवाओं की नब्ज़ को समझते थे और कहा जाता है कि वे फटाफट धुनें बनाते थे। उनका संगीत सिंथेसाइज़र, ड्रम्स, स्ट्रिंग स्टैब्स और वोकल्स पर बहुत अधिक केंद्रित था। उनके संगीत की खासियत ही कहेंगे कि कई फ़िल्में जिन्हें दर्शकों ने नकार दिया था, सिर्फ़ गीतों की वजह से आज भी सिनेमा प्रेमियों की यादों में हैं। 1978 में आई फ़िल्म 'कॉलेज गर्ल' में भी बप्पी दा ने 'प्यार माँगा है तुम्ही से' जैसा मधुर सरप्राइज़ दिया था।

80 का दशक बप्पी लहरी की धुनों पर नाचा। हिंदी फ़िल्मों में अपने डाँस मूव्स के लिए लोकप्रिय दो मेगा–स्टार मिथुन चक्रवर्ती और गोविंदा,

बप्पी दा की रचनाओं के पर्याय बन गए। 1982 में फ़िल्म 'डिस्को डांसर' के साथ बप्पी युग की शुरुआत हुई। इस फ़िल्म के गाने 'आई एम ए डिस्को डांसर', 'जिमी जिमी जिमी आ जा आ जा', 'कोई यहाँ हाँ नाचे नाचे', 'गोरों की ना कालों की' और 'याद आ रहा है तेरा प्यार' ने सफलता के सभी रिकॉर्ड तोड़ दिए। इन गीतों का जादू देश की सीमा लाँघकर रूस और चीन तक पहुँचा। इसके बाद भारत में डिस्को संगीत और डिस्को थीम वाली फ़िल्मों में गजब का उछाल दिखा था। गोविंदा ने बप्पी लहरी के निधन के बाद इंस्टाग्राम पर लिखा कि उनके संगीत के बिना वह स्टार नहीं बनते। 'आई एम ए स्ट्रीट डांसर', 'लाल दुप्पटे वाली', 'अंगना में बाबा' जैसे गीत आज भी गोविंदा के सबसे चर्चित गीतों में शामिल हैं।

मिथुन चक्रवर्ती के साथ डिस्को लहर के बीच, जीतेंद्र के करियर को पुनर्जीवित करने का श्रेय भी बप्पी लहरी को दिया जाता है। उन्होंने 1983 से 85 के बीच जीतेंद्र अभिनीत 12 सुपरहिट फ़िल्मों के गीत रचने का रिकॉर्ड बनाया था, जिनमें हिम्मतवाला, मकसद, जानी दोस्त, जस्टिस चौधरी, मवाली, तोहफ़ा जैसे नाम शामिल हैं। उन्होंने अमिताभ बच्चन अभिनीत फ़िल्मों 'नमक हलाल' (1982) और 'शराबी' (1984) के गीतों को नया कलेवर दिया था। 'जिमी जिमी' की गूँज के बीच 'पग घुंघरू बाँध', 'रात बाकी', और 'इंतिहा हो गई इंतज़ार की' का जादू भी सिर चढ़कर बोला था।

बप्पी लहरी के संगीत में पाश्चात्य धमक थी, तो देसी सुर भी थे। 'कोई यहाँ अहा नचे नचे', 'रंभा हो', 'झूम झूम बाबा', 'जवानी जानेमन', 'ज़ूबी ज़ूबी' जैसे गीतों से बप्पी लहरी की डिस्को बीट्स की ऊर्जा ने युवाओं को आकर्षित किया था। एक ओर जहाँ उन्हें डिस्को किंग की उपाधि दी जा रही थी, तो दूसरी ओर वो 'किसी नज़र को तेरा इंतज़ार आज भी है', 'मंज़िलें अपनी जगह हैं', 'ज़िद ना करो अब तो रूको' जैसे सुकुन भरे गीत भी दे रहे थे।

उनका संगीत समय के बँधन से बँधा नहीं था। यही वजह है कि ना सिर्फ़ 80 और 90 के दशक में बल्कि आज भी फ़िल्मों की कहानी में उनके गानों को रीमिक्स संस्करण के रूप में ज़ोर–शोर से शामिल किया जा रहा है। और आज भी युवा उनके गीतों से जुड़ाव महसूस कर रहे हैं। संजय दत्त और माधुरी दीक्षित पर फ़िल्माए गाने "तम्मा तम्मा" पर 2017 में वरुण धवन और आलिया भटट् भी थिरकते दिखे। वहीं, बागी 3 में 'भंकस' सुनने को मिला। फ़िल्म उद्योग में पाँच दशक गुज़ारने के बाद भी, बप्पी दा की आवाज़ में 'ऊ ला ला' (द डर्टी पिक्चर), 'तूने मारी एंट्रियाँ' (गुंडे), 'बंबई नगरिया' (टैक्सी नंबर 9211) जैसे गाने चार्टबस्टर हुए। वह उन संगीतकारों की पसंद बने रहे जो अपने गीतों में नॉस्टेलजिया चाहते थे। मोहम्मद रफ़ी, किशोर कुमार, लता मंगेशकर, आशा भोसले संग युगल गीत गाने के साथ–साथ वह अलीशा चिनाई और उषा उत्थुप के साथ काम करने में भी समान रूप से सहज थे।

बप्पी दा का करियर हिंदी फ़िल्मों के साउंडट्रैक बनाने तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने कई तेलुगु, तमिल, गुजराती और बंगाली फ़िल्मों के लिए संगीत भी लिखा। वे अपनी बंगाली जड़ों के प्रति सच्चे रहे और नियमित रूप से बांग्ला एल्बम रिलीज़ करते थे। मुख्यधारा के संगीतकार के रूप में साल 2000 से उनका काम भले ही कम हो गया, लेकिन टीवी रियलिटी शो में बतौर जज और अतिथि भूमिकाओं से वह प्रासंगिक बने रहे। बप्पी लहरी के बेटे बप्पा लहरी भी संगीतकार हैं और बेटी रीमा गायिका। साल 2021 में बप्पी लहरी ने अपने नाती स्वास्तिक बंसल को भी एक म्यूजिक वीडियो के साथ लॉन्च किया था और कई मौकों पर दोनों साथ सुर छेड़ते भी दिखे। नाना और नाती की जुगलबंदी देखकर आभास होता जैसे जाते–जाते वे अपने संगीत की विरासत आने वाली पीढ़ी को सौंप देना चाहते हों।

15 फरवरी, 2022 को 69 की उम्र में बप्पी लहरी ने दुनिया को अलविदा कह दिया। लेकिन बप्पी दा को हमेशा उस खुशी और उत्साह के लिए याद किया जाएगा, जो उन्होंने हिंदी फ़िल्म संगीत प्रेमियों को दिया। 'चलते–चलते मेरे गीत याद रखना...' जैसे कालातीत धुनों के साथ बप्पी दा को श्रद्धांजलि।

– सी–204, जासमीन पूनम कॉम्प्लेक्स, आशा नगर, कांदिवली (पूर्व), मुंबई–400101

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय, 8/29 ए, शिवपुरी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश–202001
2. डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर
3. डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल, प्रीति भवन, संस्कृति विहार (निकट मैक्स इंटरनेशनल स्कूल), टी एस्टेट बंजारावाला, देहरादून, उत्तराखंड–248001
4. डॉ. विनोद कुमार सिन्हा , ग्राम+पो. – बेलाही नीलकंठ भाया–अथरी, जिला–सीतामढ़ी, बिहार–843311
5. डॉ. जिनाक्षी चुतीया, सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग, बी. एच. कॉलेज, हाउली, बरपेटा, असम
6. श्री रिपुंजय कुमार ठाकुर, मकान नं. 677, ब्लॉक–ए जी, शालीमार बाग, नई दिल्ली–110088
7. श्री उमर बशीर, शोधार्थी, हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (जम्मू और कश्मीर)–190008
8. डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षा संकाय), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
9. श्री सुरेंद्र कुमार, शोधार्थी, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
10. श्री कुमार सौरभ, शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर असम–784028 एवं डॉ. अनुशब्द, सी. 93 असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, नपाम, असम–784028
11. डॉ. अनूप प्रसाद, सी/ओ भूपाल सिंह कंडारी, आम्रकुंज, श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखंड–246174
12. डॉ. विजय कुमार मिश्र, यू–89, परिवार अपार्टमेंट, अपर ग्राउंड फ्लोर, सुभाष पार्क, उत्तम नगर, दिल्ली–110059
13. श्री संजय सिंह यादव, मकान नं. ए–57, राठ नगर, अलवर, राजस्थान–301001
14. प्रो. फूलचंद मानव, 239, दशमेश एन्क्लेव, ढकौली, जीरकपुर, जिला मोहाली, पंजाब–160104
15. श्री देवेंद्र कुमार मिश्रा, पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदन गाँव, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश–480001
16. श्री मनीष कुमार सिंह, एफ–2, 4/273, वैशाली, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश–201010
17. श्री रमेशचंद्र पंत, विद्यापुर, द्वाराहाट, अल्मोड़ा, उत्तराखंड–263653
18. श्री हेमंत गुप्ता, ए-101, जयश्री विहार, घेगड़ा पुलिया के पास, कैथून रोड़, कोटा (राज़)–324003
19. श्री राम जैसवाल, 'कला–लक्ष्मी सदन' न्यू कॉलोनी, रामगंज, अजमेर–305003

20. श्री तरुणकांति मिश्र, 137, लेविस रोड, बी जे बी नगर, भुवनेश्वर–751014
21. एनी राय, 46, गुलमोहर एन्क्लेव, नई दिल्ली–110049
22. श्री कंचन लाल मेहता, मलयानील, ए–81, राधा कृष्ण पार्क, अकोटा गार्डन समीप अकोटा, वडोदरा, गुजरात–20
23. प्रो. (डॉ.) नलिनी पुरोहित, ए–81, राधा कृष्ण पार्क, अकोटा गार्डन समीप अकोटा, वडोदरा, गुजरात–20
24. डॉ. फनी महांति, पुष्पधानु, प्लॉट नं.–220/2039, बोमीशाली, भुवनेश्वर–751010
25. डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु, ओड़िया अध्यापिका, सरकारी एस. एस. डी. एच. एस. एस. विज्ञान महाविद्यालय, बालिशंकरा, सुंदरगढ़, ओडिशा
26. प्रो. सौ. कांचन थोरात, 'श्रीदत्त प्लाझा' रूम नं.–20, तिसरा मजला, आगाशिव नगर, मलकापूर, ता. कराड, जि. सातारा, महाराष्ट्र–415539
27. प्रो. शौकात आतार, हिंदी विभाग प्रमुख, आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज, नागठाणे, ता.जि. सातारा, महाराष्ट्र–415519
28. डॉ. वांमती रामचंद्रन, सी–2–16, सह्याद्रि प्लॉट–5, सैक्टर–12, द्वारका, नई दिल्ली–78
29. सुश्री कुसुमलता सिंह, सी–54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20–आई.पी.एक्सटेंशन, दिल्ली–110092
30. डॉ. संतोष खन्ना, बी–4/48, पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली–110088
31. श्री विनोद अनुपम, बी–53, सचिवालय कॉलोनी, कंकड़बाग, पटना–800020
32. सुश्री नीति सुधा, सी–204, जासमीन पूनम कॉम्प्लेक्स, आशा नगर, कांदिवली (पूर्व), मुंबई–400101

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।